1629

॥ श्रीहरिः ॥

स्तोत्ररत्नावली

(सजिल्द)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

महाकवि कालिदासके '**स्तोत्रं कस्य न तुष्टये**' इस वचनके अनुसार विश्वमें ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जो स्तुतिसे प्रसन्न न हो जाता हो। राजनीतिके ग्रन्थोंमें कहा गया है कि 'साम' या स्तुतिके द्वारा राक्षस आदि भयंकर सत्त्व भी वशीभूत हो जाते हैं। इसीलिये दण्ड, भेद, दान आदि नीतियोंमें 'साम' या स्तुति-प्रशंसाको ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अतएव वेदोंसे लेकर इतिहास, पुराण एवं काव्योंतकमें सर्वत्र सूक्त एवं स्तोत्र भरे पड़े हैं, जिनका संग्रह एक महासमुद्रके समान होगा। प्रस्तुत ग्रन्थमें केवल गणेश, शिव, शक्ति, विष्णु, राम, कृष्ण एवं सूर्य आदि प्रमुख देवताओंके प्रसिद्ध स्तोत्रोंका संग्रह किया गया है। अन्तमें प्रकीर्णस्तोत्रोंमें देवताओंके प्रातःस्मरण तथा कुछ ज्ञानप्रद आध्यात्मिक स्तोत्र भी दिये गये हैं। इस उनतीसवें संस्करणमें अकालमृत्यु-रोगादिसे रक्षा करनेवाला परम उपयोगी एवं अनुभूत मृत्युंजयस्तोत्र भी संलग्न कर दिया गया है। इन स्तोत्रोंके द्वारा आराधना किये जानेपर सभी देवता प्रसन्न होकर उपासकका परम कल्याण करते हैं। आशा है, पाठक-पाठिकाएँ इससे लाभ उठानेका प्रयास करेंगे।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ-संख्या

विनयस्तोत्राणि

शिवस्तोत्राणि

पृष्ठ-संख्या

शक्तिस्तोत्राणि

विष्णुस्तोत्राणि

रामस्तोत्राणि

पृष्ठ-संख्या

श्रीकृष्णस्तोत्राणि

पृष्ठ-संख्या

विविधदेवस्तोत्राणि

प्रकीर्णस्तोत्राणि

पृष्ठ-संख्या

ॐ

सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः

स्तोत्ररत्नावली

[विनयस्तोत्राणि]

१—मङ्गलम्

स जयति सिन्धुरवदनो देवो यत्पादपङ्कजस्मरणम्।
वासरमणिरिव तमसां राशीन्नाशयति विघ्नानाम्॥ १॥

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः॥ २॥

धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि॥ ३॥

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥ ४॥

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये॥ ५॥

उन गजवदन देवदेवकी जय हो, जिनके चरणकमलका स्मरण सम्पूर्ण विघ्नसमूहको इस प्रकार नष्ट कर देता है जैसे सूर्य अन्धकारराशिको॥ १॥ जो पुरुष विद्यारम्भ, विवाह, गृहप्रवेश, निर्गमन (घरसे बाहर जाने), संग्राम अथवा संकटके समय सुमुख, एकदन्त, कपिल, गजकर्ण, लम्बोदर, विकट, विघ्ननाशन, विनायक, धूम्रकेतु, गणाध्यक्ष, भालचन्द्र और गजानन—इन बारह नामोंका पाठ या श्रवण भी करता है, उसे किसी प्रकारका विघ्न नहीं होता॥ २—४॥ जो श्वेत वस्त्र धारण किये हैं, चन्द्रमाके समान जिनका वर्ण

व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम्।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम्॥ ६॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे।
नमो वै ब्रह्मनिधये वासिष्ठाय नमो नमः॥ ७॥
अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः।
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् बादरायणः॥ ८॥

इति मङ्गलं सम्पूर्णम्।

२—श्रीविष्णोरष्टाविंशतिनामस्तोत्रम्

अर्जुन उवाच

किं नु नाम सहस्राणि जपते च पुनः पुनः।
यानि नामानि दिव्यानि तानि चाचक्ष्व केशव॥ १॥

है तथा जो प्रसन्नवदन हैं, उन देवदेव चतुर्भुज भगवान् विष्णुका सब विघ्नोंकी निवृत्तिके लिये ध्यान करना चाहिये॥ ५॥ जो वसिष्ठजीके नाती (प्रपौत्र), शक्तिके पौत्र, पराशरजीके पुत्र तथा शुकदेवजीके पिता हैं, उन निष्पाप, तपोनिधि व्यासजीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ६॥ विष्णुरूप व्यास अथवा व्यासरूप श्रीविष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। वसिष्ठवंशज ब्रह्मनिधि श्रीव्यासजीको बारम्बार नमस्कार है॥ ७॥ भगवान् वेदव्यासजी बिना चार मुखके ब्रह्मा हैं, दो भुजावाले दूसरे विष्णु हैं और ललाटलोचन (तीसरे नेत्र) से रहित साक्षात् महादेवजी हैं॥ ८॥

अर्जुनने पूछा—केशव! मनुष्य बार-बार एक हजार नामोंका जप क्यों करता है? आपके जो दिव्य नाम हों, उनका वर्णन कीजिये॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

मत्स्यं कूर्मं वराहं च वामनं च जनार्दनम्।
गोविन्दं पुण्डरीकाक्षं माधवं मधुसूदनम्॥ २॥
पद्मनाभं सहस्राक्षं वनमालिं हलायुधम्।
गोवर्धनं हृषीकेशं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम्॥ ३॥
विश्वरूपं वासुदेवं रामं नारायणं हरिम्।
दामोदरं श्रीधरं च वेदाङ्गं गरुडध्वजम्॥ ४॥
अनन्तं कृष्णगोपालं जपतो नास्ति पातकम्।
गवां कोटिप्रदानस्य अश्वमेधशतस्य च॥ ५॥
कन्यादानसहस्राणां फलं प्राप्नोति मानवः।
अमायां वा पौर्णमास्यामेकादश्यां तथैव च॥ ६॥
सन्ध्याकाले स्मरेन्नित्यं प्रातःकाले तथैव च।
मध्याह्ने च जपन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ७॥

इति श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रीविष्णोरष्टाविंशतिनामस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन! मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, जनार्दन, गोविन्द, पुण्डरीकाक्ष, माधव, मधुसूदन, पद्मनाभ, सहस्राक्ष, वनमाली, हलायुध, गोवर्धन, हृषीकेश, वैकुण्ठ, पुरुषोत्तम, विश्वरूप, वासुदेव, राम, नारायण, हरि, दामोदर, श्रीधर, वेदाङ्ग, गरुडध्वज, अनन्त और कृष्णगोपाल—इन नामोंका जप करनेवाले मनुष्यके भीतर पाप नहीं रहता। वह एक करोड़ गो-दान, एक सौ अश्वमेधयज्ञ और एक हजार कन्यादानका फल प्राप्त करता है। अमावस्या, पूर्णिमा तथा एकादशी तिथिको और प्रतिदिन सायं-प्रातः एवं मध्याह्नके समय इन नामोंका स्मरणपूर्वक जप करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ २—७॥

३—षट्पदी

अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम्।
भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः॥ १॥
दिव्यधुनीमकरन्दे परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे।
श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे॥ २॥
सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥ ३॥
उद्धृतनग नगभिदनुज दनुजकुलामित्र मित्रशशिदृष्टे।
दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः॥ ४॥
मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवतावता सदा वसुधाम्।
परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम्॥ ५॥

हे विष्णुभगवान्! मेरी उद्दण्डता दूर कीजिये, मेरे मनका दमन कीजिये और विषयोंकी मृगतृष्णाको शान्त कर दीजिये, प्राणियोंके प्रति मेरा दयाभाव बढ़ाइये और इस संसार-समुद्रसे मुझे पार लगाइये॥ १॥ भगवान् लक्ष्मीपतिके उन चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ, जिनका मकरन्द गंगा और सौरभ सच्चिदानन्द है तथा जो संसारके भय और खेदका छेदन करनेवाले हैं॥ २॥ हे नाथ! [मुझमें और आपमें] भेद न होनेपर भी, मैं ही आपका हूँ, आप मेरे नहीं; क्योंकि तरंग ही समुद्रकी होती है, तरंगका समुद्र कहीं नहीं होता॥ ३॥

हे गोवर्धनधारिन्! हे इन्द्रके अनुज (वामन)! हे राक्षसकुलके शत्रु! हे सूर्य-चन्द्ररूपी नेत्रवाले! आप-जैसे प्रभुके दर्शन होनेपर क्या संसारके प्रति उपेक्षा नहीं हो जाती? [अपितु अवश्य ही हो जाती है]॥ ४॥ हे परमेश्वर! मत्स्यादि अवतारोंसे अवतरित होकर पृथ्वीकी सर्वदा रक्षा करनेवाले आपके द्वारा संसारके त्रिविध तापोंसे भयभीत हुआ मैं रक्षा करनेके योग्य हूँ॥ ५॥

दामोदर गुणमन्दिर सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द।
भवजलधिमथनमन्दर परमं दरमपनय त्वं मे॥ ६॥
नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ।
इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु॥ ७॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं षट्पदीस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

४—श्रीहरिशरणाष्टकम्

ध्येयं वदन्ति शिवमेव हि केचिदन्ये
शक्तिं गणेशमपरे तु दिवाकरं वै।
रूपैस्तु तैरपि विभासि यतस्त्वमेव
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो*॥ १॥

हे गुणमन्दिर दामोदर! हे मनोहर मुखारविन्द गोविन्द! हे संसारसमुद्रका मन्थन करनेके लिये मन्दराचलरूप! मेरे महान् भयको आप दूर कीजिये॥ ६॥ हे करुणामय नारायण! मैं सब प्रकारसे आपके चरणोंकी शरण लूँ। यह पूर्वोक्त षट्पदी (छः पदोंकी स्तुतिरूपिणी भ्रमरी) सर्वदा मेरे मुख-कमलमें निवास करे॥ ७॥

कोई शिवको ही ध्येय बताते हैं तथा कोई शक्तिको, कोई गणेशको और कोई भगवान् भास्करको ध्येय कहते हैं; उन सब रूपोंमें आप ही भास रहे हैं,

* 'शङ्खपाणे' इति पाठान्तरम्।

नो सोदरो न जनको जननी न जाया
नैवात्मजो न च कुलं विपुलं बलं वा।
सन्दृश्यते न किल कोऽपि सहायको मे। तस्मा० ॥ २ ॥

नोपासिता मदमपास्य मया महान्त-
स्तीर्थानि चास्तिकधिया न हि सेवितानि।
देवार्चनं च विधिवन्न कृतं कदापि। तस्मा० ॥ ३ ॥

दुर्वासना मम सदा परिकर्षयन्ति
चित्तं शरीरमपि रोगगणा दहन्ति।
सञ्जीवनं च परहस्तगतं सदैव। तस्मा० ॥ ४ ॥

पूर्वं कृतानि दुरितानि मया तु यानि
स्मृत्वाखिलानि हृदयं परिकम्पते मे।
ख्याता च ते पतितपावनता तु यस्मात्। तस्मा० ॥ ५ ॥

इसलिये हे दीनबन्धो! मेरी शरण तो एकमात्र आप ही हैं॥ १॥ भ्राता, पिता, माता, स्त्री, पुत्र, कुल एवं प्रचुर बल—इनमेंसे कोई भी मुझे अपना सहायक नहीं दीखता; अतः हे दीनबन्धो! आप ही मेरी एकमात्र शरण हैं॥ २॥ मैंने न तो अभिमानको छोड़कर महात्माओंकी आराधना की, न आस्तिकबुद्धिसे तीर्थोंका सेवन किया है और न कभी विधिपूर्वक देवताओंका पूजन ही किया है; अतः हे दीनबन्धो! अब आप ही मेरी एकमात्र शरण हैं॥ ३॥ दुर्वासनाएँ मेरे चित्तको सदा खींचती रहती हैं, रोगसमूह सर्वदा शरीरको तपाते रहते हैं और जीवन तो सदैव परवश ही है; अतः हे दीनबन्धो! आप ही मेरी एकमात्र शरण हैं॥ ४॥ पहले मुझसे जो-जो पाप बने हैं, उन सबको याद कर-करके मेरा हृदय काँपता है; किन्तु तुम्हारी पतितपावनता तो प्रसिद्ध ही है, अतः हे दीनबन्धो! अब आप ही मेरी एकमात्र शरण हैं॥ ५॥

दुःखं जराजननजं विविधाश्च रोगाः
काकश्वसूकरजनिर्निरये च पातः।
ते विस्मृतेः फलमिदं विततं हि लोके। तस्मा० ॥ ६ ॥
नीचोऽपि पापवलितोऽपि विनिन्दितोऽपि
ब्रूयात्तवाहमिति यस्तु किलैकवारम्।
तं यच्छसीश निजलोकमिति व्रतं ते। तस्मा० ॥ ७ ॥
वेदेषु धर्मवचनेषु तथागमेषु
रामायणेऽपि च पुराणकदम्बके वा।
सर्वत्र सर्वविधिना गदितस्त्वमेव। तस्मा० ॥ ८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं श्रीहरिशरणाष्टकं सम्पूर्णम्।

५—न्यासदशकम्

अहं मद्रक्षणभरो मद्रक्षणफलं तथा।
न मम श्रीपतेरेवेत्यात्मानं निक्षिपेद् बुधः ॥ १ ॥
न्यस्याम्यकिञ्चनः श्रीमन्ननुकूलोऽन्यवर्जितः।

प्रभो! आपको भूलनेसे जरा-जन्मादिसम्भूत दुःख, नाना व्याधियाँ, काक, कुत्ता, शूकरादि योनियाँ तथा नरकादिमें पतन—ये ही फल संसारमें विस्तृत हैं, अतः हे दीनबन्धो! अब आप ही मेरी एकमात्र गति हैं॥ ६ ॥ नीच, महापापी अथवा निन्दित ही क्यों न हो; किन्तु जो एक बार भी यह कह देता है कि 'मैं आपका हूँ', उसीको आप अपना धाम दे देते हैं, हे नाथ! आपका यही व्रत है; अतः हे दीनबन्धो! अब आप ही मेरी एकमात्र गति हैं॥ ७ ॥ वेद, धर्मशास्त्र, आगम, रामायण तथा पुराणसमूहमें भी सर्वत्र सब प्रकार आपहीका कीर्तन है; अतः हे दीनबन्धो! अब आप ही मेरी एकमात्र गति हैं॥ ८ ॥

'मैं, मेरी रक्षाका भार और उसका फल मेरा नहीं श्रीविष्णुभगवान्‌का ही

विश्वासप्रार्थनापूर्वमात्मरक्षाभरं त्वयि॥ २॥
स्वामी स्वशेषं स्ववशं स्वभरत्वेन निर्भरम्।
स्वदत्तस्वधिया स्वार्थं स्वस्मिन्न्यस्यति मां स्वयम्॥ ३॥
श्रीमन्नभीष्टवरद त्वामस्मि शरणं गतः।
एतद्देहावसाने मां त्वत्पादं प्रापय स्वयम्॥ ४॥
त्वच्छेषत्वे स्थिरधियं त्वत्प्राप्त्येकप्रयोजनम्।
निषिद्धकाम्यरहितं कुरु मां नित्यकिङ्करम्॥ ५॥
देवीभूषणहेत्यादिजुष्टस्य भगवंस्तव।
नित्यं निरपराधेषु कैङ्कर्येषु नियुङ्क्ष्व माम्॥ ६॥
मां मदीयं च निखिलं चेतनाचेतनात्मकम्।
स्वकैङ्कर्योपकरणं वरद स्वीकुरु स्वयम्॥ ७॥

है'—ऐसा विचारकर विद्वान् पुरुष अपनेको भगवान्पर छोड़ दे॥ १॥ हे भगवन्! मैं अकिंचन अपनी रक्षाका भार अनन्य और अनुकूल (प्रणत) होकर विश्वास और प्रार्थनापूर्वक आपको सौंपता हूँ॥ २॥ मेरे स्वामी अपने शेष, वशीभूत और अपनी ही रक्षकतापर अवलम्बित हुए मुझको अपनी निजकी दी हुई बुद्धिसे स्वयं अपने लिये अपनेमें ही समर्पित करते हैं [अर्थात् परम पुरुषार्थको सिद्ध करनेके लिये स्वयं ही अपनी शरणमें ले लेते हैं]॥ ३॥ हे अभीष्टवरदायक स्वामिन्! मैं आपकी शरण हूँ। इस देहका अन्त होनेपर आप मुझे स्वयं अपने चरणकमलोंतक पहुँचा दें॥ ४॥ आपका शेष होनेमें स्थिरबुद्धिवाले, आपकी प्राप्तिका ही एकमात्र प्रयोजन रखनेवाले, निषिद्ध और काम्य कर्मोंसे रहित मुझको आप अपना नित्य सेवक बनाइये॥ ५॥ देवी (श्रीलक्ष्मीजी), भूषण (कौस्तुभादि) और शस्त्रादि (गदा, शार्ङ्गादि) से युक्त अपनी निर्दोष सेवाओंमें, हे भगवन्! आप मुझे नित्य नियुक्त रखिये॥ ६॥ हे वरदायक प्रभो! मुझको और चेतन-अचेतनरूप मेरी समस्त वस्तुओंको,

त्वमेव रक्षकोऽसि मे त्वमेव करुणाकरः।
न प्रवर्तय पापानि प्रवृत्तानि निवारय॥ ८ ॥
अकृत्यानां च करणं कृत्यानां वर्जनं च मे।
क्षमस्व निखिलं देव प्रणतार्तिहर प्रभो॥ ९ ॥
श्रीमन्नियतपञ्चाङ्गं मद्रक्षणभरार्पणम्।
अचीकरत्स्वयं स्वस्मिन्नतोऽहमिह निर्भरः॥ १० ॥

इति श्रीवेङ्कटनाथकृतं न्यासदशकं सम्पूर्णम्।

६—परमेश्वरस्तोत्रम्

जगदीश सुधीश भवेश विभो
परमेश परात्पर पूत पितः।
प्रणतं पतितं हतबुद्धिबलं
जनतारण तारय तापितकम्॥ १ ॥

अपनी सेवाकी सामग्रीके रूपमें स्वीकार कीजिये॥ ७॥ हे प्रभो! मेरे एकमात्र आप ही रक्षक हैं, आप ही मुझपर दया करनेवाले हैं; अतः पापोंको मेरी ओर प्रवृत्त न कीजिये और प्रवृत्त हुए पापोंका निवारण कीजिये॥ ८॥ हे देव! हे दीनदुःखहारी भगवन्! मेरा न करनेयोग्य कार्योंका करना और करने योग्योंको न करना आप क्षमा करें॥ ९॥ श्रीमन्! आपने स्वयं ही मेरी पाँचों इन्द्रियोंको नियन्त्रित करके मेरी रक्षाका भार अपने ऊपर ले लिया; अतः अब मैं निर्भर हो गया॥ १०॥

हे जगदीश! हे सुमतियोंके स्वामी! हे विश्वेश! हे सर्वव्यापिन्! हे परमेश्वर! हे प्रकृति आदिसे अतीत! हे परमपावन! हे पितः! हे जीवोंका निस्तार करनेवाले! इस शरणागत, पतित और बुद्धि-बलसे हीन संसारसन्तप्त

गुणहीनसुदीनमलीनमतिं
त्वयि पातरि दातरि चापरतिम्।
तमसा रजसावृतवृत्तिमिमं । जन० ॥ २ ॥
मम जीवनमीनमिमं पतितं
मरुघोरभुवीह सुवीहमहो।
करुणाब्धिचलोर्मिजलानयनं । जन० ॥ ३ ॥
भववारण कारण कर्मततौ
भवसिन्धुजले शिव मग्नमतः।
करुणाञ्च समर्प्य तरिं त्वरितं। जन० ॥ ४ ॥
अतिनाश्य जनुर्मम पुण्यरुचे
दुरितौघभरैः परिपूर्णभुवः।
सुजघन्यमगण्यमपुण्यरुचिं । जन० ॥ ५ ॥

दासका उद्धार कीजिये॥ १॥ जो सर्वथा गुणहीन, अत्यन्त दीन और मलिनमति है तथा अपने रक्षक और दाता आपसे पराङ्मुख है, हे जीवोंका निस्तार करनेवाले! इस संसारसन्तप्त उस तामस-राजसवृत्तिवाले दासका आप उद्धार कीजिये॥ २॥ हे जीवोंका निस्तार करनेवाले! इस भयानक मरुभूमिमें पड़कर नितान्त निश्चेष्ट हुए मेरे इस अति सन्तप्त जीवनरूप मीनका अपने करुणावारिधिकी चंचल तरंगोंका जल लाकर उद्धार कीजिये॥ ३॥ अतः हे संसारकी निवृत्ति करनेवाले! हे कर्मविस्तारके कारणस्वरूप! हे कल्याणमय! हे जीवोंका निस्तार करनेवाले! संसारसमुद्रके जलमें डूबकर सन्तप्त होते हुए इस दासको अपनी करुणारूप नौका समर्पण करके यहाँसे तुरंत उद्धार कीजिये॥ ४॥ हे पुण्यरुचे! हे जीवोद्धारक! जिसकी पापराशिके भारसे पृथ्वी परिपूर्ण है, ऐसे मुझ नीचके जन्मको सदाके लिये मिटाकर मुझ अत्यन्त निन्दनीय, नगण्य, पापमें रुचि रखनेवाले और संसारके दुःखोंसे

भवकारक नारकहारक हे
भवतारक पातकदारक हे।
हर शङ्कर किङ्करकर्मचयं ।जन०॥ ६॥
तृषितश्चिरमस्मि सुधां हित मे-
ऽच्युत चिन्मय देहि वदान्यवर।
अतिमोहवशेन विनष्टकृतं ।जन०॥ ७॥
प्रणमामि नमामि नमामि भवं
भवजन्मकृतिप्रणिषूदनकम्।
गुणहीनमनन्तमितं शरणं ।जन०॥ ८॥

इति परमेश्वरस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

दु:खितका उद्धार कीजिये॥ ५॥ हे जगत्कर्ता! हे नारकीय यन्त्रणाओंका अपहरण करनेवाले! हे संसारका उद्धार करनेवाले! हे पापराशिको विदीर्ण करनेवाले! हे शंकर! इस दासकी कर्मराशिका हरण कीजिये और हे जीवोंका निस्तार करनेवाले! इस संसारसन्तप्त जनका उद्धार कीजिये॥ ६॥ हे अच्युत! हे चिन्मय! हे उदारचूडामणि! हे कल्याणस्वरूप! मैं अत्यन्त तृषित हूँ, मुझे ज्ञानरूप अमृतका पान कराइये। मैं अत्यन्त मोहके वशीभूत होकर नष्ट हो रहा हूँ। हे जीवोंका उद्धार करनेवाले! मुझ संसारसन्तप्तको पार लगाइये॥ ७॥ संसारमें जन्मप्राप्तिके कारणभूत कर्मोंका नाश करनेवाले आपको मैं बारंबार प्रणाम और नमस्कार करता हूँ। हे जीवोंका उद्धार करनेवाले! आप निर्गुण और अनन्तकी शरणको प्राप्त हुए इस संसारसन्तप्त जनका उद्धार कीजिये॥ ८॥

ॐ

शिवस्तोत्राणि

७—शिवमानसपूजा

रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं
नानारत्नविभूषितं मृगमदामोदाङ्कितं चन्दनम्।
जातीचम्पकबिल्वपत्ररचितं पुष्पं च धूपं तथा
दीपं देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम्॥ १॥
सौवर्णे नवरत्नखण्डरचिते पात्रे घृतं पायसं
भक्ष्यं पञ्चविधं पयोदधियुतं रम्भाफलं पानकम्।
शाकानामयुतं जलं रुचिकरं कर्पूरखण्डोज्ज्वलं
ताम्बूलं मनसा मया विरचितं भक्त्या प्रभो स्वीकुरु॥ २॥
छत्रं चामरयोर्युगं व्यजनकं चादर्शकं निर्मलं
वीणाभेरिमृदङ्गकाहलकला गीतं च नृत्यं तथा।
साष्टाङ्गं प्रणतिः स्तुतिर्बहुविधा ह्येतत्समस्तं मया
सङ्कल्पेन समर्पितं तव विभो पूजां गृहाण प्रभो॥ ३॥

हे दयानिधे! हे पशुपते! हे देव! यह रत्ननिर्मित सिंहासन, शीतल जलसे स्नान, नाना रत्नावलिविभूषित दिव्य वस्त्र, कस्तूरिकागन्धसमन्वित चन्दन, जुही, चम्पा और बिल्वपत्रसे रचित पुष्पांजलि तथा धूप और दीप यह सब मानसिक [पूजोपहार] ग्रहण कीजिये॥ १॥ मैंने नवीन रत्नखण्डोंसे खचित सुवर्णपात्रमें घृतयुक्त खीर, दूध और दधिसहित पाँच प्रकारका व्यञ्जन, कदलीफल, शर्बत, अनेकों शाक, कपूरसे सुवासित और स्वच्छ किया हुआ मीठा जल और ताम्बूल—ये सब मनके द्वारा ही बनाकर प्रस्तुत किये हैं; प्रभो! कृपया इन्हें स्वीकार कीजिये॥ २॥

छत्र, दो चँवर, पंखा, निर्मल दर्पण, वीणा, भेरी, मृदंग, दुन्दुभीके वाद्य, गान और नृत्य, साष्टांग प्रणाम, नानाविधि स्तुति—ये सब मैं संकल्पसे ही

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥ ४॥
करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो॥ ५॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचिता शिवमानसपूजा समाप्ता।

८—श्रीशिवापराधक्षमापनस्तोत्रम्

आदौ कर्मप्रसङ्गात् कलयति कलुषं मातृकुक्षौ स्थितं मां
विण्मूत्रामेध्यमध्ये क्वथयति नितरां जाठरो जातवेदाः।

आपको समर्पण करता हूँ; प्रभो! मेरी यह पूजा ग्रहण कीजिये॥ ३॥ हे शम्भो! मेरी आत्मा तुम हो, बुद्धि पार्वतीजी हैं, प्राण आपके गण हैं, शरीर आपका मन्दिर है, सम्पूर्ण विषय-भोगकी रचना आपकी पूजा है, निद्रा समाधि है, मेरा चलना-फिरना आपकी परिक्रमा है तथा सम्पूर्ण शब्द आपके स्तोत्र हैं; इस प्रकार मैं जो-जो भी कर्म करता हूँ, वह सब आपकी आराधना ही है॥ ४॥ प्रभो! मैंने हाथ, पैर, वाणी, शरीर, कर्म, कर्ण, नेत्र अथवा मनसे जो भी अपराध किये हों; वे विहित हों अथवा अविहित, उन सबको आप क्षमा कीजिये। हे करुणासागर श्रीमहादेव शंकर! आपकी जय हो॥ ५॥

पहले कर्मप्रसंगसे किया हुआ पाप मुझे माताकी कुक्षिमें ला बिठाता है, फिर उस अपवित्र विष्ठा-मूत्रके बीच जठराग्नि खूब सन्तप्त करता है। वहाँ जो-जो

यद्यद्वै तत्र दुःखं व्यथयति नितरां शक्यते केन वक्तुं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भो श्रीमहादेव शम्भो॥ १॥
बाल्ये दुःखातिरेको मललुलितवपुः स्तन्यपाने पिपासा
नो शक्तश्चेन्द्रियेभ्यो भवगुणजनिता जन्तवो मां तुदन्ति।
नानारोगादिदुःखाद्रुदनपरवशः शङ्करं न स्मरामि। क्षन्तव्यो०॥ २॥
प्रौढोऽहं यौवनस्थो विषयविषधरैः पंचभिर्मर्मसन्धौ
दष्टो नष्टो विवेकः सुतधनयुवतिस्वादसौख्ये निषण्णः।
शैवीचिन्ताविहीनं मम हृदयमहो मानगर्वाधिरूढं। क्षन्तव्यो०॥ ३॥
वार्द्धक्ये चेन्द्रियाणां विगतगतिमतिश्चाधिदैवादितापैः
पापै रोगैर्वियोगैस्त्वनवसितवपुः प्रौढिहीनं च दीनम्।
मिथ्यामोहाभिलाषैर्भ्रमति मम मनो धूर्जटेर्ध्यानशून्यं। क्षन्तव्यो०॥ ४॥

दुःख निरन्तर व्यथित करते रहते हैं उन्हें कौन कह सकता है? हे शिव! हे शिव! हे शंकर! हे महादेव! हे शम्भो! अब मेरा अपराध क्षमा करो! क्षमा करो!॥ १॥ बाल्यावस्थामें दुःखकी अधिकता रहती थी, शरीर मल-मूत्रसे लिथड़ा रहता था और निरन्तर स्तनपानकी लालसा रहती थी; इन्द्रियोंमें कोई कार्य करनेकी सामर्थ्य न थी; शैवी मायासे उत्पन्न हुए नाना जन्तु मुझे काटते थे; नाना रोगादि दुःखोंके कारण मैं रोता ही रहता था, (उस समय भी) मुझसे शंकरका स्मरण नहीं बना, इसलिये हे शिव! हे शिव! हे शंकर! हे महादेव! हे शम्भो! अब मेरा अपराध क्षमा करो! क्षमा करो!॥ २॥ जब मैं युवा-अवस्थामें आकर प्रौढ़ हुआ तो पाँच विषयरूपी सर्पोंने मेरे मर्मस्थानोंमें डँसा, जिससे मेरा विवेक नष्ट हो गया और मैं धन, स्त्री और सन्तानके सुख भोगनेमें लग गया। उस समय भी आपके चिन्तनको भूलकर मेरा हृदय बड़े घमण्ड और अभिमानसे भर गया। अतः हे शिव! हे शिव! हे शंकर! हे महादेव! हे शम्भो! अब मेरा अपराध क्षमा करो! क्षमा करो!॥ ३॥ वृद्धावस्थामें भी, जब इन्द्रियोंकी गति शिथिल हो गयी है, बुद्धि मन्द पड़ गयी है और आधिदैविकादि तापों, पापों, रोगों और वियोगोंसे शरीर जर्जरित हो गया है, मेरा मन मिथ्या मोह और अभिलाषाओंसे दुर्बल और दीन होकर (आप) श्रीमहादेवजीके चिन्तनसे शून्य ही भ्रम रहा है।

नो शक्यं स्मार्तकर्म प्रतिपदगहनप्रत्यवायाकुलाख्यं
श्रौते वार्ता कथं मे द्विजकुलविहिते ब्रह्ममार्गे सुसारे।
नास्था धर्मे विचारः श्रवणमननयोः किं निदिध्यासितव्यं। क्षन्तव्यो० ॥ ५ ॥
स्नात्वा प्रत्यूषकाले स्नपनविधिविधौ नाहृतं गाङ्गतोयं
पूजार्थं वा कदाचिद्बहुतरगहनात्खण्डबिल्वीदलानि।
नानीता पद्ममाला सरसि विकसिता गन्धपुष्पे त्वदर्थं। क्षन्तव्यो० ॥ ६ ॥
दुग्धैर्मध्वाज्ययुक्तैर्दधिसितसहितैः स्नापितं नैव लिङ्गं
नो लिप्तं चन्दनाद्यैः कनकविरचितैः पूजितं न प्रसूनैः।
धूपैः कर्पूरदीपैर्विविधरसयुतैर्नैव भक्ष्योपहारैः। क्षन्तव्यो० ॥ ७ ॥

अतः हे शिव! हे शिव! हे शंकर! हे महादेव! हे शम्भो! अब मेरा अपराध क्षमा करो! क्षमा करो!॥ ४॥ पद-पदपर अति गहन प्रायश्चित्तोंसे व्याप्त होनेके कारण मुझसे तो स्मार्तकर्म भी नहीं हो सकते, फिर जो द्विजकुलके लिये विहित हैं, उन ब्रह्मप्राप्तिके मार्गस्वरूप श्रौतकर्मोंकी तो बात ही क्या है? धर्ममें आस्था नहीं है और श्रवण-मननके विषयमें विचार ही नहीं होता, निदिध्यासन (ध्यान) भी कैसे किया जाय ? अतः हे शिव! हे शिव! हे शंकर! हे महादेव! हे शम्भो! अब मेरा अपराध क्षमा करो! क्षमा करो!॥ ५॥ प्रातःकाल स्नान करके आपका अभिषेक करनेके लिये मैं गंगाजल लेकर प्रस्तुत नहीं हुआ, न कभी आपकी पूजाके लिये वनसे बिल्वपत्र ही लाया और न आपके लिये तालाबमें खिले हुए कमलोंकी माला तथा गन्ध-पुष्प ही लाकर अर्पण किये। अतः हे शिव! हे शिव! हे शंकर! हे महादेव! हे शम्भो! अब मेरा अपराध क्षमा करो! क्षमा करो!॥ ६॥ मधु, घृत, दधि और शर्करायुक्त दूध (पंचामृत) से मैंने आपके लिंगको स्नान नहीं कराया, चन्दन आदिसे अनुलेपन नहीं किया, धतूरेके फूल, धूप, दीप, कपूर तथा नाना रसोंसे युक्त नैवेद्योंद्वारा पूजन भी नहीं किया। अतः हे शिव! हे शिव! हे शंकर! हे महादेव! हे शम्भो! अब मेरे अपराधोंको क्षमा

ध्यात्वा चित्ते शिवाख्यं प्रचुरतरधनं नैव दत्तं द्विजेभ्यो
हव्यं ते लक्षसंख्यैर्हुतवहवदने नार्पितं बीजमन्त्रैः।
नो तप्तं गाङ्गतीरे व्रतजपनियमै रुद्रजाप्यैर्न वेदैः। क्षन्तव्यो० ॥ ८ ॥
स्थित्वा स्थाने सरोजे प्रणवमयमरुत्कुण्डले सूक्ष्ममार्गे
शान्ते स्वान्ते प्रलीने प्रकटितविभवे ज्योतिरूपे पराख्ये।
लिङ्गज्ञे ब्रह्मवाक्ये सकलतनुगतं शङ्करं न स्मरामि। क्षन्तव्यो० ॥ ९ ॥
नग्नो निःसङ्गशुद्धस्त्रिगुणविरहितो ध्वस्तमोहान्धकारो
नासाग्रे न्यस्तदृष्टिर्विदितभवगुणो नैव दृष्टः कदाचित्।
उन्मन्यावस्थया त्वां विगतकलिमलं शंकरं न स्मरामि। क्षन्तव्यो० ॥ १० ॥

करो! क्षमा करो!॥ ७॥ मैंने चित्तमें शिव नामक आपका स्मरण करके ब्राह्मणोंको प्रचुर धन नहीं दिया, न आपके एक लक्ष बीजमन्त्रोंद्वारा अग्निमें आहुतियाँ दीं और न व्रत एवं जपके नियमसे तथा रुद्रजाप और वेदविधिसे गंगातटपर कोई साधना ही की। अतः हे शिव! हे शिव! हे शंकर! हे महादेव! हे शम्भो! अब मेरे अपराधोंको क्षमा करो! क्षमा करो!॥ ८॥ जिस सूक्ष्ममार्गप्राप्य सहस्रदल कमलमें पहुँचकर प्राणसमूह प्रणवनादमें लीन हो जाते हैं और जहाँ जाकर वेदके वाक्यार्थ तथा तात्पर्यभूत पूर्णतया आविर्भूत ज्योतिरूप शान्त परम तत्त्वमें लीन हो जाता है, उस कमलमें स्थित होकर मैं सर्वान्तर्यामी कल्याणकारी आपका स्मरण नहीं करता हूँ। अतः हे शिव! हे शिव! हे शंकर! हे महादेव! हे शम्भो! अब मेरे अपराधोंको क्षमा करो! क्षमा करो!॥ ९॥ नग्न, निःसंग, शुद्ध और त्रिगुणातीत होकर, मोहान्धकारका ध्वंस कर तथा नासिकाग्रमें दृष्टि स्थिरकर मैंने (आप) शंकरके गुणोंको जानकर कभी आपका दर्शन नहीं किया और न उन्मनी-अवस्थासे कलिमलरहित आप कल्याणस्वरूपका स्मरण ही करता हूँ। अतः हे शिव! हे शिव! हे शंकर! हे महादेव! हे शम्भो! अब मेरे अपराधोंको क्षमा करो! क्षमा करो!॥ १०॥

चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शंकरे
सर्पैर्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे।
दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमखिलामन्यैस्तु किं कर्मभिः॥ ११॥
किं वानेन धनेन वाजिकरिभिः प्राप्तेन राज्येन किं
किं वा पुत्रकलत्रमित्रपशुभिर्देहेन गेहेन किम्।
ज्ञात्वैतत्क्षणभङ्गुरं सपदि रे त्याज्यं मनो दूरतः
स्वात्मार्थं गुरुवाक्यतो भज भज श्रीपार्वतीवल्लभम्॥ १२॥
आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं यौवनं
प्रत्यायान्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः।
लक्ष्मीस्तोयतरङ्गभङ्गचपला विद्युच्चलं जीवितं
तस्मान्मां शरणागतं शरणद त्वं रक्ष रक्षाधुना॥ १३॥

चन्द्रकलासे जिनका ललाट–प्रदेश भासित हो रहा है, जो कन्दर्पदर्पहारी हैं, गंगाधर हैं, कल्याणस्वरूप हैं, सर्पोंसे जिनके कण्ठ और कर्ण भूषित हैं, नेत्रोंसे अग्नि प्रकट हो रहा है, हस्तिचर्मकी जिनकी कन्था है तथा जो त्रिलोकीके सार हैं, उन शिवमें मोक्षके लिये अपनी सम्पूर्ण चित्तवृत्तियोंको लगा दे; और कर्मोंसे क्या प्रयोजन है? ॥ ११ ॥ इस धन, घोड़े, हाथी और राज्यादिकी प्राप्तिसे क्या ? पुत्र, स्त्री, मित्र, पशु, देह और घरसे क्या ? इनको क्षणभंगुर जानकर रे मन! दूरहीसे त्याग दे और आत्मानुभवके लिये गुरुवचनानुसार पार्वतीवल्लभ श्रीशंकरका भजन कर॥ १२॥ देखते–देखते आयु नित्य नष्ट हो रही है, यौवन प्रतिदिन क्षीण हो रहा है; बीते हुए दिन फिर लौटकर नहीं आते; काल सम्पूर्ण जगत्को खा रहा है। लक्ष्मी जलकी तरंगमालाके समान चपल है; जीवन बिजलीके समान चंचल है; अतः मुझ शरणागतकी हे शरणागतवत्सल शंकर! अब रक्षा करो! रक्षा करो!॥ १३॥

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो॥ १४॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीशिवापराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

९—वेदसारशिवस्तवः

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं
गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम्।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गाङ्गवारिं
महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम्॥ १॥
महेशं सुरेशं सुरारार्तिनाशं
विभुं विश्वनाथं विभूत्यङ्गभूषम्।
विरूपाक्षमिन्द्वर्कवह्नित्रिनेत्रं
सदानन्दमीडे प्रभुं पञ्चवक्त्रम्॥ २॥

हाथोंसे, पैरोंसे, वाणीसे, शरीरसे, कर्मसे, कर्णोंसे, नेत्रोंसे अथवा मनसे भी जो अपराध किये हों, वे विहित हों अथवा अविहित, उन सबको हे करुणा-सागर महादेव शम्भो! क्षमा कीजिये। आपकी जय हो, जय हो॥ १४॥

जो सम्पूर्ण प्राणियोंके रक्षक हैं, पापका ध्वंस करनेवाले हैं, परमेश्वर हैं, गजराजका चर्म पहने हुए हैं तथा श्रेष्ठ हैं और जिनके जटाजूटमें श्रीगंगाजी खेल रही हैं, उन एकमात्र कामारि श्रीमहादेवजीका मैं स्मरण करता हूँ॥ १॥ चन्द्र, सूर्य और अग्नि—तीनों जिनके नेत्र हैं, उन विरूपनयन महेश्वर, देवेश्वर,

गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं
गवेन्द्राधिरूढं गणातीतरूपम्।
भवं भास्वरं भस्मना भूषिताङ्गं
भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम्॥ ३॥

शिवाकान्त शम्भो शशाङ्कार्धमौले
महेशान शूलिन् जटाजूटधारिन्।
त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूप
प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप॥ ४॥

परात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यं
निरीहं निराकारमोङ्कारवेद्यम्।
यतो जायते पाल्यते येन विश्वं
तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम्॥ ५॥

देवदुःखदलन, विभु, विश्वनाथ, विभूतिभूषण, नित्यानन्दस्वरूप, पंचमुख भगवान् महादेवकी मैं स्तुति करता हूँ॥ २॥ जो कैलासनाथ हैं, गणनाथ हैं, नीलकण्ठ हैं, बैलपर चढ़े हुए हैं, अगणित रूपवाले हैं, संसारके आदिकारण हैं, प्रकाशस्वरूप हैं, शरीरमें भस्म लगाये हुए हैं और श्रीपार्वतीजी जिनकी अर्द्धांगिनी हैं, उन पंचमुख महादेवजीको मैं भजता हूँ॥ ३॥

हे पार्वतीवल्लभ महादेव! हे चन्द्रशेखर! हे महेश्वर! हे त्रिशूलिन्! हे जटाजूटधारिन्! हे विश्वरूप! एकमात्र आप ही जगत्में व्यापक हैं। हे पूर्णरूप प्रभो! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये॥ ४॥ जो परमात्मा हैं, एक हैं, जगत्के आदिकारण हैं, इच्छारहित हैं, निराकार हैं और प्रणवद्वारा जाननेयोग्य हैं तथा जिनसे सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्ति और पालन होता है और फिर जिनमें

न भूमिर्न चापो न वह्निर्न वायु-
र्न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा।
न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वेषो
न यस्यास्ति मूर्तिस्त्रिमूर्तिं तमीडे॥ ६॥

अजं शाश्वतं कारणं कारणानां
शिवं केवलं भासकं भासकानाम्।
तुरीयं तमःपारमाद्यन्तहीनं
प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम्॥ ७॥

नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते
नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते।
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य
नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य॥ ८॥

उसका लय हो जाता है उन प्रभुको मैं भजता हूँ॥ ५॥ जो न पृथ्वी हैं, न जल हैं, न अग्नि हैं, न वायु हैं और न आकाश हैं; न तन्द्रा हैं, न निद्रा हैं, न ग्रीष्म हैं और न शीत हैं तथा जिनका न कोई देश है, न वेष है, उन मूर्तिहीन त्रिमूर्तिकी मैं स्तुति करता हूँ॥ ६॥

जो अजन्मा हैं, नित्य हैं, कारणके भी कारण हैं, कल्याणस्वरूप हैं, एक हैं, प्रकाशकोंके भी प्रकाशक हैं, अवस्थात्रयसे विलक्षण हैं, अज्ञानसे परे हैं, अनादि और अनन्त हैं, उन परमपावन अद्वैतस्वरूपको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ७॥ हे विश्वमूर्ते! हे विभो! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। हे चिदानन्दमूर्ते! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। हे तप तथा योगसे प्राप्तव्य प्रभो! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। हे वेदवेद्य भगवन्! आपको नमस्कार है, नमस्कार है॥ ८॥

प्रभो शूलपाणे विभो विश्वनाथ
महादेव शम्भो महेश त्रिनेत्र।
शिवाकान्त शान्त स्मरारे पुरारे
त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्यः॥ ९ ॥
शम्भो महेश करुणामय शूलपाणे
गौरीपते पशुपते पशुपाशनाशिन्।
काशीपते करुणया जगदेतदेक-
स्त्वं हंसि पासि विदधासि महेश्वरोऽसि॥ १० ॥
त्वत्तो जगद्भवति देव भव स्मरारे
त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड विश्वनाथ।
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश
लिङ्गात्मकं हर चराचरविश्वरूपिन्॥ ११ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतो वेदसारशिवस्तवः सम्पूर्णम्।

हे प्रभो! हे त्रिशूलपाणे! हे विभो! हे विश्वनाथ! हे महादेव! हे शम्भो! हे महेश्वर! हे त्रिनेत्र! हे पार्वतीप्राणवल्लभ! हे शान्त! हे कामारे! हे त्रिपुरारे! तुम्हारे अतिरिक्त न कोई श्रेष्ठ है, न माननीय है और न गणनीय है॥ ९ ॥

हे शम्भो! हे महेश्वर! हे करुणामय! हे त्रिशूलिन्! हे गौरीपते! हे पशुपते! हे पशुबन्धमोचन! हे काशीश्वर! एक तुम्हीं करुणावश इस जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और संहार करते हो; प्रभो! तुम ही इसके एकमात्र स्वामी हो॥ १० ॥ हे देव! हे शंकर! हे कन्दर्पदलन! हे शिव! हे विश्वनाथ! हे ईश्वर! हे हर! हे चराचरजगद्रूप प्रभो! यह लिंगस्वरूप समस्त जगत् तुम्हींसे उत्पन्न होता है, तुम्हींमें स्थित रहता है और तुम्हींमें लय हो जाता है॥ ११ ॥

१०—शिवाष्टकम्

तस्मै नमः परमकारणकारणाय
दीप्तोज्ज्वलज्ज्वलितपिङ्गललोचनाय।
नागेन्द्रहारकृतकुण्डलभूषणाय
ब्रह्मेन्द्रविष्णुवरदाय नमः शिवाय॥ १॥
श्रीमत्प्रसन्नशशिपन्नगभूषणाय
शैलेन्द्रजावदनचुम्बितलोचनाय।
कैलासमन्दरमहेन्द्रनिकेतनाय
लोकत्रयार्तिहरणाय नमः शिवाय॥ २॥
पद्मावदातमणिकुण्डलगोवृषाय
कृष्णागरुप्रचुरचन्दनचर्चिताय।
भस्मानुषक्तविकचोत्पलमल्लिकाय
नीलाब्जकण्ठसदृशाय नमः शिवाय॥ ३॥

जो कारणके भी परम कारण हैं, (अग्निशिखाके समान) अति देदीप्यमान उज्ज्वल और पिंगल नेत्रोंवाले हैं, सर्पराजोंके हार–कुण्डलादिसे भूषित हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादिको भी वर देनेवाले हैं, उन श्रीशंकरको नमस्कार करता हूँ॥ १॥ शोभायमान एवं निर्मल चन्द्रकला तथा सर्प ही जिनके भूषण हैं, गिरिराजकुमारी अपने मुखसे जिनके लोचनोंका चुम्बन करती हैं, कैलास और महेन्द्रगिरि जिनके निवासस्थान हैं तथा जो त्रिलोकीके दुःखको दूर करनेवाले हैं, उन श्रीशंकरको नमस्कार करता हूँ॥ २॥ जो स्वच्छ पद्मरागमणिके कुण्डलोंसे किरणोंकी वर्षा करनेवाले, अगरु और बहुत–से चन्दनसे चर्चित तथा भस्म, प्रफुल्लित कमल और जूहीसे सुशोभित हैं, ऐसे नीलकमलसदृश कण्ठवाले शिवको नमस्कार है॥ ३॥

लम्बत्सपिङ्गलजटामुकुटोत्कटाय
दंष्ट्राकरालविकटोत्कटभैरवाय।
व्याघ्राजिनाम्बरधराय मनोहराय
त्रैलोक्यनाथनमिताय नमः शिवाय॥ ४॥

दक्षप्रजापतिमहामखनाशनाय
क्षिप्रं महात्रिपुरदानवघातनाय।
ब्रह्मोर्जितोर्ध्वगकरोटिनिकृन्तनाय
योगाय योगनमिताय नमः शिवाय॥ ५॥

संसारसृष्टिघटनापरिवर्तनाय
रक्षः पिशाचगणसिद्धसमाकुलाय।
सिद्धोरगग्रहगणेन्द्रनिषेविताय
शार्दूलचर्मवसनाय नमः शिवाय॥ ६॥

लटकती हुई पिंगलवर्ण जटाओंके सहित मुकुट धारण करनेसे जो उत्कट जान पड़ते हैं, तीक्ष्ण दाढ़ोंके कारण जो अति विकट और भयानक प्रतीत होते हैं, व्याघ्रचर्म धारण किये हुए हैं, अति मनोहर हैं तथा तीनों लोकोंके अधीश्वर भी जिनके चरणोंमें झुकते हैं, उन श्रीशंकरको प्रणाम है॥ ४॥ दक्षप्रजापतिके महायज्ञको ध्वंस करनेवाले, महान् त्रिपुरासुरको शीघ्र मार डालनेवाले, दर्पयुक्त ब्रह्माके ऊर्ध्वमुख पंचम सिरका छेदन करनेवाले, योगस्वरूप, योगसे नमस्कृत शिवको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ५॥ जो कल्प-कल्पमें संसाररचनाका परिवर्तन करनेवाले हैं; राक्षस, पिशाच और सिद्धगणोंसे घिरे रहते हैं; सिद्ध, सर्प, ग्रहगण तथा इन्द्रादिसे सेवित हैं तथा जो व्याघ्रचर्म धारण किये हुए हैं, उन श्रीशंकरको नमस्कार करता हूँ॥ ६॥

भस्माङ्गरागकृतरूपमनोहराय
सौम्यावदातवनमाश्रितमाश्रिताय।
गौरीकटाक्षनयनार्धनिरीक्षणाय
गोक्षीरधारधवलाय नमः शिवाय॥ ७॥
आदित्यसोमवरुणानिलसेविताय
यज्ञाग्निहोत्रवरधूमनिकेतनाय।
ऋक्सामवेदमुनिभिः स्तुतिसंयुताय
गोपाय गोपनमिताय नमः शिवाय॥ ८॥
शिवाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते॥ ९॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिवाष्टकं सम्पूर्णम्।

भस्मरूपी अंगरागसे जिन्होंने अपने रूपको अत्यन्त मनोहर बनाया है, जो अति शान्त और सुन्दर वनका आश्रय करनेवालोंके आश्रित हैं, श्रीपार्वतीजीके कटाक्षकी ओर जो बाँकी चितवनसे निहार रहे हैं और गोदुग्धकी धाराके समान जिनका श्वेत वर्ण है, उन श्रीशंकरको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ७॥ सूर्य, चन्द्र, वरुण और पवनसे जो सेवित हैं, यज्ञ और अग्निहोत्रके धूममें जिनका निवास है, ऋक्सामादि वेद और मुनिजन जिनकी स्तुति करते हैं, उन नन्दीश्वरपूजित गौओंका पालन करनेवाले महादेवजीको नमस्कार करता हूँ॥ ८॥ जो इस पवित्र शिवाष्टकको श्रीमहादेवजीके समीप पढ़ता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है और शंकरजीके साथ आनन्द प्राप्त करता है॥ ९॥

११—श्रीशिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय
भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय
तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय॥ १॥
मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय
नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय
तस्मै 'म' काराय नमः शिवाय॥ २॥
शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द-
सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय
तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय॥ ३॥

जिनके कण्ठमें साँपोंका हार है, जिनके तीन नेत्र हैं, भस्म ही जिनका अंगराग (अनुलेपन) है; दिशाएँ ही जिनका वस्त्र हैं [अर्थात् जो नग्न हैं], उन शुद्ध अविनाशी महेश्वर 'न' कारस्वरूप शिवको नमस्कार है॥ १॥ गंगाजल और चन्दनसे जिनकी अर्चा हुई है, मन्दार-पुष्प तथा अन्यान्य कुसुमोंसे जिनकी सुन्दर पूजा हुई है, उन नन्दीके अधिपति प्रमथगणोंके स्वामी महेश्वर 'म' कारस्वरूप शिवको नमस्कार है॥ २॥ जो कल्याणस्वरूप हैं, पार्वतीजीके मुखकमलको विकसित (प्रसन्न) करनेके लिये जो सूर्यस्वरूप हैं, जो दक्षके यज्ञका नाश करनेवाले हैं, जिनकी ध्वजामें बैलका चिह्न है, उन शोभाशाली नीलकण्ठ 'शि' कारस्वरूप शिवको नमस्कार है॥ ३॥

वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्य-
मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय
तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय॥ ४॥

यक्षस्वरूपाय जटाधराय
पिनाकहस्ताय सनातनाय।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय
तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय॥ ५॥

पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते॥ ६॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

वसिष्ठ, अगस्त्य और गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियोंने तथा इन्द्र आदि देवताओंने जिनके मस्तककी पूजा की है, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं, उन 'व' कारस्वरूप शिवको नमस्कार है॥ ४॥ जिन्होंने यक्षरूप धारण किया है, जो जटाधारी हैं, जिनके हाथमें पिनाक है, जो दिव्य सनातन पुरुष हैं, उन दिगम्बर देव 'य' कारस्वरूप शिवको नमस्कार है॥ ५॥ जो शिवके समीप इस पवित्र पञ्चाक्षरका पाठ करता है, वह शिवलोकको प्राप्त करता और वहाँ शिवजीके साथ आनन्दित होता है॥ ६॥

१२—द्वादशज्योतिर्लिङ्गानि

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारममलेश्वरम्॥ १॥
परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशङ्करम्।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने॥ २॥

(१) सौराष्ट्रप्रदेश (काठियावाड़) में श्रीसोमनाथ,[1] (२) श्रीशैल[2] पर श्रीमल्लिकार्जुन, (३) उज्जयिनी (उज्जैन) में श्रीमहाकाल[3], (४) ॐकारेश्वर[4] अथवा अमलेश्वर॥ १॥ (५) परलीमें वैद्यनाथ[5], (६) डाकिनी नामक स्थानमें श्रीभीमशंकर[6], (७) सेतुबन्धपर

---

१. श्रीसोमनाथ काठियावाड़ प्रदेशके अन्तर्गत प्रभासक्षेत्रमें विराजमान है। २. यह पर्वत मद्रास प्रान्तके कृष्णा जिलेमें कृष्णा नदीके तटपर है, इसे दक्षिणका कैलास कहते हैं। ३. श्रीमहाकालेश्वर मालवा प्रदेशमें क्षिप्रा नदीके तटपर उज्जैननगरमें विराजमान है, उज्जैनको अवन्तिकापुरी भी कहते हैं। ४. ॐकारेश्वरका स्थान मालवा प्रान्तमें नर्मदा नदीके तटपर है। उज्जैनसे खण्डवा जानेवाली रेलवे लाइनपर मोरटक्का नामक स्टेशन है, वहाँसे यह स्थान १० मील दूर है। यहाँ ॐकारेश्वर और अमलेश्वरके दो पृथक्-पृथक् लिंग हैं, परन्तु ये एक ही लिंगके दो स्वरूप हैं। ५. आन्ध्र प्रदेशके हैदराबाद नगरसे पहले परभनी नामक जंकशन है, वहाँसे परलीतक एक ब्रांच लाइन गयी है, इस परली स्टेशनसे थोड़ी दूरपर परली ग्रामके निकट श्रीवैद्यनाथ नामक ज्योतिर्लिंग है। शिवपुराणमें 'वैद्यनाथं चिताभूमौ' ऐसा पाठ है, इसके अनुसार संथाल परगनेमें ई० आई० रेलवेके जैसीडीह स्टेशनके पासवाला वैद्यनाथ-शिवलिंग ही वास्तविक वैद्यनाथज्योतिर्लिंग सिद्ध होता है; क्योंकि यही चिताभूमि है। ६. श्रीभीमशंकरका स्थान बम्बईसे पूर्व और पूनासे उत्तर भीमा नदीके किनारे सह्यपर्वतपर है। यह स्थान लारीके रास्तेसे नासिकसे लगभग १२० मील दूर है। सह्यपर्वतके एक शिखरका नाम डाकिनी है। इससे अनुमान होता है कि कभी यहाँ डाकिनी और भूतोंका निवास था। शिवपुराणकी एक कथाके आधारपर भीमशंकर ज्योतिर्लिंग आसामके कामरूप जिलेमें ए० बी० रेलवेपर गोहाटीके पास ब्रह्मपुर पहाड़ीपर स्थित बतलाया जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि नैनीताल जिलेके उज्जनक

वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे।
हिमालये तु केदारं घुश्मेशं च शिवालये॥ ३॥
एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायं प्रातः पठेन्नरः।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति॥ ४॥

श्रीरामेश्वर[1], (८) दारुकावनमें श्रीनागेश्वर[2]॥ २॥ (९) वाराणसी (काशी) में श्रीविश्वनाथ[3], (१०) गौतमी (गोदावरी) के तटपर श्रीत्र्यम्बकेश्वर,[4] (११) हिमालयपर केदारखण्डमें श्रीकेदारनाथ[5] और (१२) शिवालयमें श्रीघुश्मेश्वरको[6] स्मरण करे॥ ३॥ जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल और सन्ध्याके समय इन बारह ज्योतिर्लिंगोंका नाम लेता है, उसके सात जन्मोंका किया हुआ पाप इन लिंगोंके स्मरणमात्रसे मिट जाता है॥ ४॥

नामक स्थानमें एक विशाल शिवमन्दिर है, वही भीमशङ्करका स्थान है। १. श्रीरामेश्वर तीर्थ प्रसिद्ध है, यह तमिलनाडु (मद्रास) प्रान्तके रामनद जिलेमें है। २. यह स्थान बड़ौदा राज्यान्तर्गत गोमतीद्वारकासे ईशानकोणमें बारह-तेरह मीलकी दूरीपर है। कोई-कोई निजाम हैदराबाद राज्यके अन्तर्गत औढ़ाग्राममें स्थित शिवलिंगको ही 'नागेश्वर' ज्योतिर्लिंग मानते हैं। कुछ लोगोंके मतसे अल्मोड़ासे १७ मील उत्तर-पूर्वमें यागेश (जागेश्वर) शिवलिंग ही नागेश ज्योतिर्लिंग है। ३. काशीके श्रीविश्वनाथजी प्रसिद्ध ही हैं। ४. यह ज्योतिर्लिंग महाराष्ट्र प्रान्तके नासिक जिलेमें नासिक-पंचवटीसे (जहाँ शूर्पणखाकी नाक कटी थी) १८ मीलकी दूरीपर ब्रह्मगिरिके निकट गोदावरीके किनारे है। ५. श्रीकेदारनाथ हिमालयके केदार नामक शृंगपर स्थित हैं। शिखरके पूर्वकी ओर अलकनन्दाके तटपर श्रीबदरीनाथ अवस्थित हैं और पश्चिममें मन्दाकिनीके किनारे श्रीकेदारनाथ विराजमान हैं। यह स्थान हरद्वारसे १५० मील और ऋषिकेशसे १३२ मील दूर है। ६. श्रीघुश्मेश्वरको घुसृणेश्वर या घृष्णेश्वर भी कहते हैं। इनका स्थान दौलताबाद स्टेशनसे बारह मील दूर बेरूल गाँवके पास है।

१३—द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्रम्

सौराष्ट्रदेशे विशदेऽतिरम्ये
ज्योतिर्मयं चन्द्रकलावतंसम्।
भक्तिप्रदानाय कृपावतीर्णं
तं सोमनाथं शरणं प्रपद्ये॥ १॥

श्रीशैलशृङ्गे विबुधातिसङ्गे
तुलाद्रितुङ्गेऽपि मुदा वसन्तम्।
तमर्जुनं मल्लिकपूर्वमेकं
नमामि संसारसमुद्रसेतुम्॥ २॥

अवन्तिकायां विहितावतारं
मुक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम्।
अकालमृत्योः परिरक्षणार्थं
वन्दे महाकालमहासुरेशम्॥ ३॥

जो अपनी भक्ति प्रदान करनेके लिये अत्यन्त रमणीय तथा निर्मल सौराष्ट्र प्रदेश (काठियावाड़) में दयापूर्वक अवतीर्ण हुए हैं, चन्द्रमा जिनके मस्तकका आभूषण है, उन ज्योतिर्लिंगस्वरूप भगवान् श्रीसोमनाथकी शरणमें मैं जाता हूँ॥ १॥ जो ऊँचाईके आदर्शभूत पर्वतोंसे भी बढ़कर ऊँचे श्रीशैलके शिखरपर, जहाँ देवताओंका अत्यन्त समागम होता रहता है, प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं तथा जो संसार-सागरसे पार करानेके लिये पुलके समान हैं, उन एकमात्र प्रभु मल्लिकार्जुनको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २॥ संतजनोंको मोक्ष देनेके लिये जिन्होंने अवन्तिपुरी (उज्जैन) में अवतार धारण किया है, उन महाकाल नामसे विख्यात महादेवजीको मैं अकालमृत्युसे बचनेके लिये

कावेरिकानर्मदयोः पवित्रे
समागमे सज्जनतारणाय।
सदैव मान्धातृपुरे वसन्त-
मोङ्कारमीशं शिवमेकमीडे॥ ४॥
पूर्वोत्तरे प्रज्वलिकानिधाने
सदा वसन्तं गिरिजासमेतम्।
सुरासुराराधितपादपद्मं
श्रीवैद्यनाथं तमहं नमामि॥ ५॥
याम्ये सदङ्गे नगरेऽतिरम्ये
विभूषिताङ्गं विविधैश्च भोगैः।
सद्भक्तिमुक्तिप्रदमीशमेकं
श्रीनागनाथं शरणं प्रपद्ये॥ ६॥
महाद्रिपार्श्वे च तटे रमन्तं
सम्पूज्यमानं सततं मुनीन्द्रैः।

नमस्कार करता हूँ॥ ३॥ जो सत्पुरुषोंको संसारसागरसे पार उतारनेके लिये कावेरी और नर्मदाके पवित्र संगमके निकट मान्धाताके पुरमें सदा निवास करते हैं, उन अद्वितीय कल्याणमय भगवान् ॐकारेश्वरका मैं स्तवन करता हूँ॥ ४॥ जो पूर्वोत्तर दिशामें चिताभूमि (वैद्यनाथ-धाम) के भीतर सदा ही गिरिजाके साथ वास करते हैं, देवता और असुर जिनके चरण-कमलोंकी आराधना करते हैं, उन श्रीवैद्यनाथको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ५॥ जो दक्षिणके अत्यन्त रमणीय सदंग नगरमें विविध भोगोंसे सम्पन्न होकर सुन्दर आभूषणोंसे भूषित हो रहे हैं, जो एकमात्र सद्भक्ति और मुक्तिको देनेवाले हैं, उन प्रभु श्रीनागनाथकी मैं शरणमें जाता हूँ॥ ६॥ जो महागिरि हिमालयके पास केदारशृंगके तटपर सदा निवास करते हुए मुनीश्वरोंद्वारा पूजित होते हैं तथा

सुरासुरैर्यक्षमहोरगाद्यैः
केदारमीशं शिवमेकमीडे॥ ७ ॥

सह्याद्रिशीर्षे विमले वसन्तं
गोदावरीतीरपवित्रदेशे।
यद्दर्शनात्पातकमाशु नाशं
प्रयाति तं त्र्यम्बकमीशमीडे॥ ८ ॥

सुताम्रपर्णीजलराशियोगे
निबध्य सेतुं विशिखैरसंख्यैः।
श्रीरामचन्द्रेण समर्पितं तं
रामेश्वराख्यं नियतं नमामि॥ ९ ॥

यं डाकिनीशाकिनिकासमाजे
निषेव्यमाणं पिशिताशनैश्च ।
सदैव भीमादिपदप्रसिद्धं
तं शङ्करं भक्तहितं नमामि॥ १० ॥

देवता, असुर, यक्ष और महान् सर्प आदि भी जिनकी पूजा करते हैं, उन एक कल्याणकारक भगवान् केदारनाथका मैं स्तवन करता हूँ॥ ७ ॥ जो गोदावरीतटके पवित्र देशमें सह्यपर्वतके विमल शिखरपर वास करते हैं, जिनके दर्शनसे तुरंत ही पातक नष्ट हो जाता है, उन श्रीत्र्यम्बकेश्वरका मैं स्तवन करता हूँ॥ ८ ॥ जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा ताम्रपर्णी और सागरके संगममें अनेक बाणोंद्वारा पुल बाँधकर स्थापित किये गये, उन श्रीरामेश्वरको मैं नियमसे प्रणाम करता हूँ॥ ९ ॥ जो डाकिनी और शाकिनीवृन्दमें प्रेतोंद्वारा सदैव सेवित होते हैं, उन भक्तहितकारी भगवान् भीमशंकरको मैं प्रणाम करता

सानन्दमानन्दवने वसन्त-
मानन्दकन्दं हतपापवृन्दम्।
वाराणसीनाथमनाथनाथं
श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये॥ ११॥

इलापुरे रम्यविशालकेऽस्मिन्
समुल्लसन्तं च जगद्वरेण्यम्।
वन्दे महोदारतरस्वभावं
घृष्णेश्वराख्यं शरणं प्रपद्ये॥ १२॥

ज्योतिर्मयद्वादशलिङ्गकानां
शिवात्मनां प्रोक्तमिदं क्रमेण।
स्तोत्रं पठित्वा मनुजोऽतिभक्त्या
फलं तदालोक्य निजं भजेच्च॥ १३॥

इति श्रीद्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

हूँ॥ १०॥ जो स्वयं आनन्दकन्द हैं और आनन्दपूर्वक आनन्दवन (काशीक्षेत्र) में वास करते हैं, जो पापसमूहके नाश करनेवाले हैं, उन अनाथोंके नाथ काशीपति श्रीविश्वनाथकी शरणमें मैं जाता हूँ॥ ११॥ जो इलापुरके सुरम्यमन्दिरमें विराजमान होकर समस्त जगत्के आराधनीय हो रहे हैं, जिनका स्वभाव बड़ा ही उदार है, उन घृष्णेश्वर नामक ज्योतिर्मय भगवान् शिवकी शरणमें मैं जाता हूँ॥ १२॥ यदि मनुष्य क्रमशः कहे गये इन द्वादश ज्योतिर्मय शिवलिंगोंके स्तोत्रका भक्तिपूर्वक पाठ करे तो इनके दर्शनसे होनेवाला फल प्राप्त कर सकता है॥ १३॥

१४—शिवताण्डवस्तोत्रम्

जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले
गलेऽवलम्ब्य लम्बितां भुजङ्गतुङ्गमालिकाम्।
डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवड्डमर्वयं
चकार चण्डताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम्॥ १॥
जटाकटाहसम्भ्रमभ्रमन्निलिम्पनिर्झरी-
विलोलवीचिवल्लरीविराजमानमूर्द्धनि।
धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाटपट्टपावके
किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम॥ २॥
धराधरेन्द्रनन्दिनीविलासबन्धुबन्धुर-
स्फुरद्दिगन्तसन्ततिप्रमोदमानमानसे।
कृपाकटाक्षधोरणीनिरुद्धदुर्धरापदि
क्वचिद्दिगम्बरे मनो विनोदमेतु वस्तुनि॥ ३॥

जिन्होंने जटारूपी अटवी (वन) से निकलती हुई गंगाजीके गिरते हुए प्रवाहोंसे पवित्र किये गये गलेमें सर्पोंकी लटकती हुई विशाल मालाको धारणकर, डमरूके डम-डम शब्दोंसे मण्डित प्रचण्ड ताण्डव (नृत्य) किया, वे शिवजी हमारे कल्याणका विस्तार करें॥ १॥ जिनका मस्तक जटारूपी कड़ाहमें वेगसे घूमती हुई गंगाकी चंचल तरंग-लताओंसे सुशोभित हो रहा है, ललाटाग्नि धक्-धक् जल रही है, सिरपर बाल चन्द्रमा विराजमान हैं, उन (भगवान् शिव) में मेरा निरन्तर अनुराग हो॥ २॥ गिरिराजकिशोरी पार्वतीके विलासकालोपयोगी शिरोभूषणसे समस्त दिशाओंको प्रकाशित होते देख जिनका मन आनन्दित हो रहा है, जिनकी निरन्तर कृपादृष्टिसे कठिन आपत्तिका भी निवारण हो जाता है, ऐसे किसी दिगम्बर तत्त्वमें मेरा मन विनोद करे॥ ३॥

जटाभुजङ्गपिङ्गलस्फुरत्फणामणिप्रभा-
कदम्बकुङ्कुमद्रवप्रलिप्तदिग्वधूमुखे।
मदान्धसिन्धुरस्फुरत्त्वगुत्तरीयमेदुरे
मनो विनोदमद्भुतं बिभर्तु भूतभर्तरि॥ ४॥
सहस्रलोचनप्रभृत्यशेषलेखशेखर-
प्रसूनधूलिधोरणीविधूसराङ्घ्रिपीठभूः।
भुजङ्गराजमालया निबद्धजाटजूटकः
श्रियै चिराय जायतां चकोरबन्धुशेखरः॥ ५॥
ललाटचत्वरज्वलद्धनञ्जयस्फुलिङ्गभा-
निपीतपञ्चसायकं नमन्निलिम्पनायकम्।
सुधामयूखलेखया विराजमानशेखरं
महाकपालि सम्पदे शिरो जटालमस्तु नः॥ ६॥

जिनके जटाजूटवर्ती भुजंगमोंके फणोंकी मणियोंका फैलता हुआ पिंगल प्रभापुञ्ज दिशारूपिणी अंगनाओंके मुखपर कुंकुमरागका अनुलेप कर रहा है, मतवाले हाथीके हिलते हुए चमड़ेका उत्तरीय वस्त्र (चादर) धारण करनेसे स्निग्धवर्ण हुए उन भूतनाथमें मेरा चित्त अद्भुत विनोद करे॥ ४॥ जिनकी चरणपादुकाएँ इन्द्र आदि समस्त देवताओंके [प्रणाम करते समय] मस्तकवर्ती कुसुमोंकी धूलिसे धूसरित हो रही हैं; नागराज (शेष) के हारसे बँधी हुई जटावाले वे भगवान् चन्द्रशेखर मेरे लिये चिरस्थायिनी सम्पत्तिके साधक हों॥ ५॥ जिसने ललाट-वेदीपर प्रज्वलित हुई अग्निके स्फुलिंगोंके तेजसे कामदेवको नष्ट कर डाला था, जिसे इन्द्र नमस्कार किया करते हैं, सुधाकरकी कलासे सुशोभित मुकुटवाला वह [श्रीमहादेवजीका] उन्नत विशाल ललाटवाला जटिल मस्तक हमारी सम्पत्तिका साधक हो॥ ६॥

करालभालपट्टिकाधगद्धगद्धगज्ज्वल-
द्धनञ्जयाहुतीकृतप्रचण्डपञ्चसायके।
धराधरेन्द्रनन्दिनीकुचाग्रचित्रपत्रक-
प्रकल्पनैकशिल्पिनि त्रिलोचने रतिर्मम॥ ७॥
नवीनमेघमण्डलीनिरुद्धदुर्धरस्फुर-
त्कुहूनिशीथिनीतमःप्रबन्धबद्धकन्धरः।
निलिम्पनिर्झरीधरस्तनोतु कृत्तिसिन्धुरः
कलानिधानबन्धुरः श्रियं जगद्धुरन्धरः॥ ८॥
प्रफुल्लनीलपङ्कजप्रपञ्चकालिमप्रभा-
वलम्बिकण्ठकन्दलीरुचिप्रबद्धकन्धरम्।
स्मरच्छिदं पुरच्छिदं भवच्छिदं मखच्छिदं
गजच्छिदान्धकच्छिदं तमन्तकच्छिदं भजे॥ ९॥

जिन्होंने अपने विकराल भालपट्टपर धक्-धक् जलती हुई अग्निमें प्रचण्ड कामदेवको हवन कर दिया था, गिरिराजकिशोरीके स्तनोंपर पत्रभंगरचना करनेके एकमात्र कारीगर उन भगवान् त्रिलोचनमें मेरी धारणा लगी रहे॥ ७॥ जिनके कण्ठमें नवीन मेघमालासे घिरी हुई अमावस्याकी आधी रातके समय फैलते हुए दुरूह अन्धकारके समान श्यामता अंकित है; जो गजचर्म लपेटे हुए हैं, वे संसारभारको धारण करनेवाले चन्द्रमा [के सम्पर्क] से मनोहर कान्तिवाले भगवान् गंगाधर मेरी सम्पत्तिका विस्तार करें॥ ८॥ जिनका कण्ठदेश खिले हुए नील कमलसमूहकी श्याम प्रभाका अनुकरण करनेवाली हरिणीकी-सी छविवाले चिह्नसे सुशोभित है तथा जो कामदेव, त्रिपुर, भव (संसार), दक्ष-यज्ञ, हाथी, अन्धकासुर और यमराजका भी उच्छेदन करनेवाले हैं उन्हें मैं भजता हूँ॥ ९॥

अखर्वसर्वमङ्गलाकलाकदम्बमञ्जरी-
रसप्रवाहमाधुरीविजृम्भणामधुव्रतम्।
स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकं
गजान्तकान्धकान्तकं तमन्तकान्तकं भजे॥ १०॥
जयत्वदभ्रविभ्रमभ्रमद्भुजङ्गमश्वस-
द्विनिर्गमत्क्रमस्फुरत्करालभालहव्यवाट्।
धिमिद्धिमिद्धिमिद्ध्वनन्मृदङ्गतुङ्गमङ्गल-
ध्वनिक्रमप्रवर्तितप्रचण्डताण्डवः शिवः॥ ११॥
दृषद्विचित्रतल्पयोर्भुजङ्गमौक्तिकस्त्रजो-
र्गरिष्ठरत्नलोष्ठयोः सुहृद्विपक्षपक्षयोः।
तृणारविन्दचक्षुषोः प्रजामहीमहेन्द्रयोः
समप्रवृत्तिकः कदा सदाशिवं भजाम्यहम्॥ १२॥
कदा निलिम्पनिर्झरीनिकुञ्जकोटरे वसन्
विमुक्तदुर्मतिः सदा शिरःस्थमञ्जलिं वहन्।

जो अभिमानरहित पार्वतीकी कलारूप कदम्बमञ्जरीके मकरन्दस्त्रोतकी बढ़ती हुई माधुरीके पान करनेवाले मधुप हैं तथा कामदेव, त्रिपुर, भव, दक्ष-यज्ञ, हाथी, अन्धकासुर और यमराजका भी अन्त करनेवाले हैं, उन्हें मैं भजता हूँ॥ १०॥ जिनके मस्तकपर बड़े वेगके साथ घूमते हुए भुजंगके फुफकारनेसे ललाटकी भयंकर अग्नि क्रमशः धधकती हुई फैल रही है, धिमि-धिमि बजते हुए मृदंगके गम्भीर मंगल घोषके क्रमानुसार जिनका प्रचण्ड ताण्डव हो रहा है, उन भगवान् शंकरकी जय हो॥ ११॥ पत्थर और सुन्दर बिछौनोंमें, साँप और मुक्ताकी मालामें, बहुमूल्य रत्न तथा मिट्टीके ढेलेमें, मित्र या शत्रुपक्षमें, तृण अथवा कमललोचना तरुणीमें, प्रजा और पृथ्वीके महाराजमें समान भाव रखता हुआ मैं कब सदाशिवको भजूँगा॥ १२॥ सुन्दर ललाटवाले भगवान् चन्द्रशेखरमें दत्तचित्त हो अपने कुविचारोंको त्यागकर गंगाजीके तटवर्ती

विलोललोललोचनो ललामभाललग्नकः
शिवेति मन्त्रमुच्चरन् कदा सुखी भवाम्यहम्॥ १३॥
इमं हि नित्यमेवमुक्तमुत्तमोत्तमं स्तवं
पठन्स्मरन्ब्रुवन्नरो विशुद्धिमेति सन्ततम्।
हरे गुरौ सुभक्तिमाशु याति नान्यथा गतिं
विमोहनं हि देहिनां सुशङ्करस्य चिन्तनम्॥ १४॥
पूजावसानसमये दशवक्त्रगीतं
यः शम्भुपूजनपरं पठति प्रदोषे।
तस्य स्थिरां रथगजेन्द्रतुरङ्गयुक्तां
लक्ष्मीं सदैव सुमुखीं प्रददाति शम्भुः॥ १५॥

इति श्रीरावणकृतं शिवताण्डवस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

निकुंजके भीतर रहता हुआ सिरपर हाथ जोड़ डबडबायी हुई विह्वल आँखोंसे 'शिव' मन्त्रका उच्चारण करता हुआ मैं कब सुखी होऊँगा?॥ १३॥ जो मनुष्य इस प्रकारसे उक्त इस उत्तमोत्तम स्तोत्रका नित्य पाठ, स्मरण और वर्णन करता रहता है, वह सदा शुद्ध रहता है और शीघ्र ही सुरगुरु श्रीशंकरजीकी अच्छी भक्ति प्राप्त कर लेता है, वह विरुद्धगतिको नहीं प्राप्त होता; क्योंकि श्रीशिवजीका अच्छी प्रकारका चिन्तन प्राणिवर्गके मोहका नाश करनेवाला है॥ १४॥ सायंकालमें पूजा समाप्त होनेपर रावणके गाये हुए इस शम्भुपूजनसम्बन्धी स्तोत्रका जो पाठ करता है, भगवान् शंकर उस मनुष्यको रथ, हाथी, घोड़ोंसे युक्त सदा स्थिर रहनेवाली अनुकूल सम्पत्ति देते हैं॥ १५॥

१५—श्रीरुद्राष्टकम्

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं॥ १॥
निराकारमोङ्कारमूलं तुरीयं
गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।
करालं महाकाल कालं कृपालं
गुणागार संसारपारं नतोऽहं॥ २॥
तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं
मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं।
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा
लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा॥ ३॥

हे ईशान! मैं मुक्तिस्वरूप, समर्थ, सर्वव्यापक, ब्रह्म, वेदस्वरूप, निजस्वरूपमें स्थित, निर्गुण, निर्विकल्प, निरीह, अनन्त ज्ञानमय और आकाशके समान सर्वत्र व्याप्त प्रभुको प्रणाम करता हूँ॥ १॥ जो निराकार हैं, ओंकाररूप आदिकारण हैं, तुरीय हैं, वाणी, बुद्धि और इन्द्रियोंके पथसे परे हैं, कैलासनाथ हैं, विकराल और महाकालके भी काल, कृपाल, गुणोंके आगार और संसारसे तारनेवाले हैं, उन भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ॥ २॥ जो हिमालयके समान श्वेतवर्ण, गम्भीर और करोड़ों कामदेवके समान कान्तिमान् शरीरवाले हैं, जिनके मस्तकपर मनोहर गंगाजी लहरा रही हैं, भालदेशमें बालचन्द्रमा सुशोभित होते हैं और

चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं
प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं।
मृगाधीशचर्माम्बरं मुंडमालं
प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि॥ ४॥
प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं
अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं।
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं
भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं॥ ५॥
कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी
सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी।
चिदानंद संदोह मोहापहारी
प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी॥ ६॥
न यावद् उमानाथ पादारविन्दं
भजंतीह लोके परे वा नराणाम्।

गलेमें सर्पोंकी माला शोभा देती है॥ ३॥ जिनके कानोंमें कुण्डल हिल रहे हैं, जिनके नेत्र एवं भृकुटी सुन्दर और विशाल हैं, जिनका मुख प्रसन्न और कण्ठ नील है, जो बड़े ही दयालु हैं, जो बाघकी खालका वस्त्र और मुण्डोंकी माला पहनते हैं, उन सर्वाधीश्वर प्रियतम शिवका मैं भजन करता हूँ॥ ४॥ जो प्रचण्ड, सर्वश्रेष्ठ, प्रगल्भ, परमेश्वर, पूर्ण, अजन्मा, कोटि सूर्यके समान प्रकाशमान, त्रिभुवनके शूलनाशक और हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाले हैं, उन भावगम्य भवानीपतिका मैं भजन करता हूँ॥ ५॥ हे प्रभो! आप कलारहित, कल्याणकारी और कल्पका अन्त करनेवाले हैं। आप सर्वदा सत्पुरुषोंको आनन्द देते हैं, आपने त्रिपुरासुरका नाश किया था, आप मोहनाशक और ज्ञानानन्दघन परमेश्वर हैं, कामदेवके आप शत्रु हैं, आप मुझपर प्रसन्न हों, प्रसन्न हों॥ ६॥ मनुष्य जबतक उमाकान्त महादेवजीके चरणारविन्दोंका भजन नहीं करते, उन्हें इहलोक या परलोकमें कभी सुख और

न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं
प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं॥ ७॥
न जानामि योगं जपं नैव पूजां
नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं।
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं
प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो॥ ८॥
रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति॥ ९॥

इति श्रीगोस्वामितुलसीदासकृतं श्रीरुद्राष्टकं सम्पूर्णम्।

१६—श्रीपशुपत्यष्टकम्

ध्यानम्

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।

शान्तिकी प्राप्ति नहीं होती और न उनका सन्ताप ही दूर होता है। हे समस्त भूतोंके निवासस्थान भगवान् शिव! आप मुझपर प्रसन्न हों॥ ७॥ हे प्रभो! हे शम्भो! हे ईश! मैं योग, जप और पूजा कुछ भी नहीं जानता, हे शम्भो! मैं सदा-सर्वदा आपको नमस्कार करता हूँ। जरा, जन्म और दुःखसमूहसे सन्तप्त होते हुए मुझ दुःखीकी दुःखसे आप रक्षा कीजिये॥ ८॥

जो मनुष्य भगवान् शंकरकी तुष्टिके लिये ब्राह्मणद्वारा कहे हुए इस रुद्राष्टकका भक्तिपूर्वक पाठ करते हैं, उनपर शंकरजी प्रसन्न होते हैं॥ ९॥

चाँदीके पर्वतसमान जिनकी श्वेत कान्ति है, जो सुन्दर चन्द्रमाको आभूषणरूपसे धारण करते हैं, रत्नमय अलंकारोंसे जिनका शरीर उज्ज्वल है,

पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥ १ ॥

स्तोत्रम्

पशुपतिं द्युपतिं धरणीपतिं भुजगलोकपतिं च सतीपतिम्।
प्रणतभक्तजनार्तिहरं परं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्॥ १ ॥
न जनको जननी न च सोदरो न तनयो न च भूरिबलं कुलम्।
अवति कोऽपि न कालवशं गतं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्॥ २ ॥
मुरजडिण्डिमवाद्यविलक्षणं मधुरपञ्चमनादविशारदम्।
प्रमथभूतगणैरपि सेवितं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्॥ ३ ॥
शरणदं सुखदं शरणान्वितं शिव शिवेति शिवेति नतं नृणाम्।
अभयदं करुणावरुणालयं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्॥ ४॥

जिनके हाथोंमें परशु, मृग, वर और अभय है, जो प्रसन्न हैं, पद्मके आसनपर विराजमान हैं, देवतागण जिनके चारों ओर खड़े होकर स्तुति करते हैं, जो बाघकी खाल पहनते हैं, जो विश्वके आदि, जगत्‌की उत्पत्तिके बीज और समस्त भयोंको हरनेवाले हैं, जिनके पाँच मुख और तीन नेत्र हैं, उन महेश्वरका प्रतिदिन ध्यान करे।

अरे मनुष्यो! जो समस्त प्राणियों, स्वर्ग, पृथ्वी और नागलोकके पति हैं, दक्षकन्या सतीके स्वामी हैं, शरणागत प्राणियों और भक्तजनोंकी पीड़ा दूर करनेवाले हैं, उन परमपुरुष पार्वती-वल्लभ शंकरजीको भजो॥ १ ॥ ऐ मनुष्यो! कालके वशमें पड़े हुए जीवको पिता, माता, भाई, बेटा, अत्यन्त बल और कुल—इनमेंसे कोई भी नहीं बचा सकता, इसलिये तुम गिरिजापतिको भजो॥ २ ॥ रे मनुष्यो! जो मृदंग और डमरू बजानेमें निपुण हैं, मधुर पंचम स्वरके गायनमें कुशल हैं, प्रमथ और भूतगण जिनकी सेवामें रहते हैं, उन गिरिजापतिको भजो॥ ३ ॥ हे मनुष्यो! 'शिव! शिव! शिव!' कहकर मनुष्य जिनको प्रणाम करते हैं, जो शरणागतोंको शरण, सुख और अभय देनेवाले हैं,

नरशिरोरचितं मणिकुण्डलं भुजगहारमुदं वृषभध्वजम्।
चितिरजोधवलीकृतविग्रहं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्॥ ५॥
मखविनाशकरं शशिशेखरं सततमध्वरभाजि फलप्रदम्।
प्रलयदग्धसुरासुरमानवं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्॥ ६॥
मदमपास्य चिरं हृदि संस्थितं मरणजन्मजराभयपीडितम्।
जगदुदीक्ष्य समीपभयाकुलं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्॥ ७॥
हरिविरञ्चिसुराधिपपूजितं यमजनेशधनेशनमस्कृतम्।
त्रिनयनं भुवनत्रितयाधिपं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्॥ ८॥
पशुपतेरिदमष्टकमद्भुतं विरचितं पृथिवीपतिसूरिणा।
पठति संश्रृणुते मनुजः सदा शिवपुरीं वसते लभते मुदम्॥ ९॥

इति श्रीपृथिवीपतिसूरिविरचितं श्रीपशुपत्यष्टकं सम्पूर्णम्।

उन दयासागर गिरिजापतिका भजन करो॥ ४॥ अरे मनुष्यो! जो नरमुण्डरूपी मणियोंका कुण्डल और साँपोंका हार पहनते हैं, जिनका शरीर चिताकी धूलिसे धूसर है, उन वृषभध्वज गिरिजापतिको भजो॥ ५॥ अरे मनुष्यो! जिन्होंने दक्ष-यज्ञका विध्वंस किया था; जिनके मस्तकपर चन्द्रमा सुशोभित हैं, जो यज्ञ करनेवालोंको सदा ही फल देनेवाले हैं और जो प्रलयकी अग्निमें देवता, दानव और मानवोंको दग्ध करनेवाले हैं, उन गिरिजापतिको भजो॥ ६॥ अरे मनुष्यो! जगत्‌को जन्म, जरा और मरणके भयसे पीड़ित, सामने उपस्थित भयसे व्याकुल देखकर बहुत दिनोंसे हृदयमें संचित मदका त्याग कर उन गिरिजापतिको भजो॥ ७॥ अरे मनुष्यो! विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र जिनकी पूजा करते हैं, यम और कुबेर जिनको प्रणाम करते हैं, जिनके तीन नेत्र हैं तथा जो त्रिभुवनके स्वामी हैं, उन गिरिजापतिको भजो॥ ८॥ जो मनुष्य पृथ्वीपति सूरिके बनाये हुए इस अद्भुत पशुपति-अष्टकका सदा पाठ और श्रवण करता है, वह शिवपुरीमें निवास करता और आनन्दित होता है॥ ९॥

१७—श्रीविश्वनाथाष्टकम्

गङ्गातरङ्गरमणीयजटाकलापं
गौरीनिरन्तरविभूषितवामभागम्।
नारायणप्रियमनङ्गमदापहारं
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्॥ १ ॥

वाचामगोचरमनेकगुणस्वरूपं
वागीशविष्णुसुरसेवितपादपीठम्।
वामेन विग्रहवरेण कलत्रवन्तं। वाराणसी०॥ २ ॥

भूताधिपं भुजगभूषणभूषिताङ्गं
व्याघ्राजिनाम्बरधरं जटिलं त्रिनेत्रम्।
पाशाङ्कुशाभयवरप्रदशूलपाणिं। वाराणसी०॥ ३ ॥

जिनकी जटाएँ गंगाजीकी लहरोंसे सुन्दर प्रतीत होती हैं, जिनका वामभाग सदा पार्वतीजीसे सुशोभित रहता है, जो नारायणके प्रिय और कामदेवके मदका नाश करनेवाले हैं, उन काशीपति विश्वनाथको भज॥ १ ॥ वाणीद्वारा जिनका वर्णन नहीं हो सकता, जिनके अनेक गुण और अनेक स्वरूप हैं, ब्रह्मा, विष्णु और अन्य देवता जिनकी चरणपादुकाका सेवन करते हैं, जो अपने सुन्दर वामांगके द्वारा ही सपत्नीक हैं, उन काशीपति विश्वनाथको भज॥ २ ॥ जो भूतोंके अधिपति हैं, जिनका शरीर सर्परूपी गहनोंसे विभूषित है, जो बाघकी खालका वस्त्र पहनते हैं, जिनके हाथोंमें पाश, अंकुश, अभय, वर और शूल हैं, उन जटाधारी त्रिनेत्र काशीपति विश्वनाथको भज॥ ३ ॥

शीतांशुशोभितकिरीटविराजमानं
भालेक्षणानलविशोषितपञ्चबाणम्।
नागाधिपारचितभासुरकर्णपूरं । वाराणसी० ॥ ४ ॥
पञ्चाननं दुरितमत्तमतङ्गजानां
नागान्तकं दनुजपुङ्गवपन्नगानाम्।
दावानलं मरणशोकजराटवीनां । वाराणसी० ॥ ५ ॥
तेजोमयं सगुणनिर्गुणमद्वितीय-
मानन्दकन्दमपराजितमप्रमेयम्।
नागात्मकं सकलनिष्कलमात्मरूपं । वाराणसी० ॥ ६ ॥
रागादिदोषरहितं स्वजनानुरागं
वैराग्यशान्तिनिलयं गिरिजासहायम्।
माधुर्यधैर्यसुभगं गरलाभिरामं । वाराणसी० ॥ ७ ॥

जो चन्द्रमाद्वारा प्रकाशित किरीटसे शोभित हैं, जिन्होंने अपने भालस्थ नेत्रकी अग्निसे कामदेवको दग्ध कर दिया, जिनके कानोंमें बड़े-बड़े साँपोंके कुण्डल चमक रहे हैं, उन काशीपति विश्वनाथको भज॥ ४॥ जो पापरूपी मतवाले हाथियोंके मारनेवाले सिंह हैं, दैत्यसमूहरूपी साँपोंका नाश करनेवाले गरुड़ हैं तथा जो मरण, शोक और बुढ़ापारूपी भीषण वनको जलानेवाले दावानल हैं, ऐसे काशीपति विश्वनाथको भज॥ ५॥ जो तेजपूर्ण, सगुण, निर्गुण, अद्वितीय, आनन्दकन्द, अपराजित और अतुलनीय हैं, जो अपने शरीरपर साँपोंको धारण करते हैं, जिनका रूप ह्रास-वृद्धिरहित है, ऐसे आत्मस्वरूप काशीपति विश्वनाथको भज॥ ६॥ जो रागादि दोषोंसे रहित हैं; अपने भक्तोंपर कृपा रखते हैं, वैराग्य और शान्तिके स्थान हैं, पार्वतीजी सदा जिनके साथ रहती हैं, जो धीरता और मधुर स्वभावसे सुन्दर जान पड़ते हैं तथा जो कण्ठमें गरलके चिह्नसे सुशोभित हैं, उन काशीपति विश्वनाथको

आशां विहाय परिहृत्य परस्य निन्दां
पापे रतिं च सुनिवार्य मनः समाधौ।
आदाय हृत्कमलमध्यगतं परेशं। वाराणसी०॥ ८ ॥

वाराणसीपुरपतेः स्तवनं शिवस्य
व्याख्यातमष्टकमिदं पठते मनुष्यः।
विद्यां श्रियं विपुलसौख्यमनन्तकीर्तिं
सम्प्राप्य देहविलये लभते च मोक्षम्॥ ९ ॥

विश्वनाथाष्टकमिदं यः पठेच्छिवसन्निधौ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते॥ १० ॥

इति श्रीमहर्षिव्यासप्रणीतं श्रीविश्वनाथाष्टकं सम्पूर्णम्।

भज॥ ७॥ सब आशाओंको छोड़कर, दूसरोंकी निन्दा त्यागकर और पाप-कर्मसे अनुराग हटाकर, चित्तको समाधिमें लगाकर, हृदयकमलमें प्रकाशमान परमेश्वर काशीपति विश्वनाथको भज॥ ८॥ जो मनुष्य काशीपति शिवके इस आठ श्लोकोंके स्तवनका पाठ करता है, वह विद्या, धन, प्रचुर सौख्य और अनन्त कीर्ति प्राप्तकर देहावसान होनेपर मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है॥ ९ ॥ जो शिवके समीप इस विश्वनाथाष्टकका पाठ करता है, वह शिवलोक प्राप्त करता और शिवके साथ आनन्दित होता है॥ १० ॥

ॐ

शक्तिस्तोत्राणि

१८—ललितापञ्चकम्

प्रातः स्मरामि ललितावदनारविन्दं
विम्बाधरं पृथुलमौक्तिकशोभिनासम्।
आकर्णदीर्घनयनं मणिकुण्डलाढ्यं
मन्दस्मितं मृगमदोज्ज्वलभालदेशम्॥ १ ॥

प्रातर्भजामि ललिताभुजकल्पवल्लीं
रक्ताङ्गुलीयलसदङ्गुलिपल्लवाढ्याम्।
माणिक्यहेमवलयाङ्गदशोभमानां
पुण्ड्रेक्षुचापकुसुमेषुसृणीदधानाम्॥ २ ॥

मैं प्रातःकाल श्रीललितादेवीके उस मनोहर मुखकमलका स्मरण करता हूँ, जिनके बिम्बसमान रक्तवर्ण अधर, विशाल मौक्तिक (मोतीके बुलाक) से सुशोभित नासिका और कर्णपर्यन्त फैले हुए विस्तीर्ण नयन हैं, जो मणिमय कुण्डल और मन्द मुसकानसे युक्त हैं तथा जिनका ललाट कस्तूरिकातिलकसे सुशोभित है॥ १ ॥ मैं श्रीललितादेवीकी भुजारूपिणी कल्पलताका प्रातःकाल स्मरण करता हूँ जो लाल अँगूठीसे सुशोभित सुकोमल अंगुलिरूप पल्लवोंवाली तथा रत्नखचित सुवर्णकंकण और अंगदादिसे भूषित है एवं जिसने पुण्ड्र-ईखके धनुष, पुष्पमय बाण और अंकुश धारण किये हैं॥ २ ॥

प्रातर्नमामि ललिताचरणारविन्दं
भक्तेष्टदाननिरतं भवसिन्धुपोतम्।
पद्मासनादिसुरनायकपूजनीयं
पद्माङ्कुशध्वजसुदर्शनलाञ्छनाढ्यम्॥ ३॥
प्रातः स्तुवे परशिवां ललितां भवानीं
त्रय्यन्तवेद्यविभवां करुणानवद्याम्।
विश्वस्य सृष्टिविलयस्थितिहेतुभूतां
विद्येश्वरीं निगमवाङ्मनसातिदूराम्॥ ४॥
प्रातर्वदामि ललिते तव पुण्यनाम
कामेश्वरीति कमलेति महेश्वरीति।
श्रीशाम्भवीति जगतां जननी परेति
वाग्देवतेति वचसा त्रिपुरेश्वरीति॥ ५॥

मैं श्रीललितादेवीके चरणकमलोंको, जो भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाले और संसारसागरके लिये सुदृढ़ जहाजरूप हैं तथा कमलासन श्रीब्रह्माजी आदि देवेश्वरोंसे पूजित और पद्म, अंकुश, ध्वज एवं सुदर्शनादि मंगलमय चिह्नोंसे युक्त हैं, प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ॥ ३॥ मैं प्रातःकाल परमकल्याणरूपिणी श्रीललिता भवानीकी स्तुति करता हूँ जिनका वैभव वेदान्तवेद्य है, जो करुणामयी होनेसे शुद्धस्वरूपा हैं, विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और लयकी मुख्य हेतु हैं, विद्याकी अधिष्ठात्री देवी हैं तथा वेद, वाणी और मनकी गतिसे अति दूर हैं॥ ४॥ हे ललिते! मैं तेरे पुण्यनाम कामेश्वरी, कमला, महेश्वरी, शाम्भवी, जगज्जननी, परा, वाग्देवी तथा त्रिपुरेश्वरी आदिका प्रातःकाल अपनी वाणीद्वारा उच्चारण करता हूँ॥ ५॥

यः श्लोकपञ्चकमिदं ललिताम्बिकायाः
सौभाग्यदं सुललितं पठति प्रभाते।
तस्मै ददाति ललिता झटिति प्रसन्ना
विद्यां श्रियं विमलसौख्यमनन्तकीर्तिम्॥ ६॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं ललितापञ्चकं सम्पूर्णम्।

१९—मीनाक्षीपञ्चरत्नम्

उद्यद्भानुसहस्रकोटिसदृशां केयूरहारोज्ज्वलां
बिम्बोष्ठीं स्मितदन्तपङ्क्तिरुचिरां पीताम्बरालङ्कृताम्।
विष्णुब्रह्मसुरेन्द्रसेवितपदां तत्त्वस्वरूपां शिवां
मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम्॥ १॥

माता ललिताके अति सौभाग्यप्रद और सुललित इन पाँच श्लोकोंको जो पुरुष प्रातःकाल पढ़ता है, उसे शीघ्र ही प्रसन्न होकर ललितादेवी विद्या, धन, निर्मल सुख और अनन्त कीर्ति देती हैं॥ ६॥

जो उदय होते हुए सहस्रकोटि सूर्योंके सदृश आभावाली हैं, केयूर और हार आदि आभूषणोंसे भव्य प्रतीत होती हैं, बिम्बाफलके समान अरुण ओठोंवाली हैं, मधुर मुसकानयुक्त दन्तावलिसे जो सुन्दरी मालूम होती हैं तथा पीताम्बरसे अलंकृता हैं; ब्रह्मा, विष्णु आदि देवनायकोंसे सेवित चरणोंवाली उन तत्त्वस्वरूपिणी कल्याणकारिणी करुणावरुणालया श्रीमीनाक्षीदेवीका मैं निरन्तर वन्दन करता हूँ॥ १॥

मुक्ताहारलसत्किरीटरुचिरां पूर्णेन्दुवक्त्रप्रभां
शिञ्जन्नूपुरकिङ्किणीमणिधरां पद्मप्रभाभासुराम्।
सर्वाभीष्टफलप्रदां गिरिसुतां वाणीरमासेवितां। मीनाक्षीं० ॥ २ ॥

श्रीविद्यां शिववामभागनिलयां ह्रीङ्कारमन्त्रोज्ज्वलां
श्रीचक्राङ्कितबिन्दुमध्यवसतिं श्रीमत्सभानायिकाम्।
श्रीमत्षण्मुखविघ्नराजजननीं श्रीमज्जगन्मोहिनीं। मीनाक्षीं० ॥ ३ ॥

श्रीमत्सुन्दरनायिकां भयहरां ज्ञानप्रदां निर्मलां
श्यामाभां कमलासनार्चितपदां नारायणस्यानुजाम्।
वीणावेणुमृदङ्गवाद्यरसिकां नानाविधामम्बिकां। मीनाक्षीं० ॥ ४ ॥

जो मोतीकी लड़ियोंसे सुशोभित मुकुट धारण किये सुन्दर मालूम होती हैं, जिनके मुखकी प्रभा पूर्णचन्द्रके समान है, जो झनकारते हुए नूपुर (पायजेब), किंकिणी (करधनी) तथा अनेकों मणियाँ धारण किये हुए हैं, कमलकी-सी आभासे भासित होनेवाली, सबको अभीष्ट फल देनेवाली, सरस्वती और लक्ष्मी आदिसे सेविता उन गिरिराजनन्दिनी करुणावरुणालया श्रीमीनाक्षीदेवीका मैं निरन्तर वन्दन करता हूँ॥ २॥ जो श्रीविद्या हैं, भगवान् शंकरके वामभागमें विराजमान हैं, 'ह्रीं' बीजमन्त्रसे सुशोभिता हैं, श्रीचक्रांकित विन्दुके मध्यमें निवास करती हैं तथा देवसभाकी अधिनेत्री हैं, उन श्रीस्वामी कार्तिकेय और गणेशजीकी माता जगन्मोहिनी करुणावरुणालया श्रीमीनाक्षीदेवीका मैं निरन्तर वन्दन करता हूँ॥ ३॥ जो अति सुन्दर स्वामिनी हैं, भयहारिणी हैं, ज्ञानप्रदायिनी हैं, निर्मला और श्यामला हैं, कमलासन श्रीब्रह्माजीद्वारा जिनके चरणकमल पूजे गये हैं तथा श्रीनारायण (कृष्णचन्द्र) की जो अनुजा (छोटी बहन) हैं; वीणा, वेणु, मृदंगादि वाद्योंकी रसिका उन विचित्र लीलाविहारिणी करुणावरुणालया

नानायोगिमुनीन्द्रहृत्सुवसतिं नानार्थसिद्धिप्रदां
नानापुष्पविराजिताङ्घ्रियुगलां नारायणेनार्चिताम्।
नादब्रह्ममयीं परात्परतरां नानार्थतत्त्वात्मिकां। मीनाक्षीं० ॥ ५ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं मीनाक्षीपञ्चरत्नं सम्पूर्णम्।

२०—देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम्॥ १ ॥
विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत्।

श्रीमीनाक्षीदेवीका मैं निरन्तर वन्दन करता हूँ॥ ४॥ जो अनेकों योगिजन और मुनीश्वरोंके हृदयमें निवास करनेवाली तथा नाना प्रकारके पदार्थोंकी प्राप्ति करानेवाली हैं, जिनके चरणयुगल विचित्र पुष्पोंसे सुशोभित हो रहे हैं, जो श्रीनारायणसे पूजिता हैं तथा जो नादब्रह्ममयी, परेसे भी परे और नाना पदार्थोंकी तत्त्वस्वरूपा हैं, उन करुणावरुणालया श्रीमीनाक्षीदेवीका मैं निरन्तर वन्दन करता हूँ॥ ५॥

हे मातः! मैं तुम्हारा मन्त्र, यन्त्र, स्तुति, आवाहन, ध्यान, स्तुतिकथा, मुद्रा तथा विलाप कुछ भी नहीं जानता; परन्तु सब प्रकारके क्लेशोंको दूर करनेवाला आपका अनुसरण करना (पीछे चलना) ही जानता हूँ॥ १॥ सबका उद्धार करनेवाली हे करुणामयी माता! तुम्हारी पूजाकी विधि न जाननेके कारण, धनके

तदेतत्क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥ २॥
पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥ ३॥
जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥ ४॥
परित्यक्ता देवा विविधविधिसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।

अभावमें, आलस्यसे और उन विधियोंको अच्छी तरह न कर सकनेके कारण, तुम्हारे चरणोंकी सेवा करनेमें जो भूल हुई हो उसे क्षमा करो, क्योंकि पूत तो कुपूत हो जाता है पर माता कुमाता नहीं होती॥ २॥ माँ! भूमण्डलमें तुम्हारे सरल पुत्र अनेकों हैं पर उनमें एक मैं विरला ही बड़ा चंचल हूँ, तो भी हे शिवे! मुझे त्याग देना तुम्हें उचित नहीं, क्योंकि पूत तो कुपूत हो जाता है पर माता कुमाता नहीं होती॥ ३॥ हे जगदम्ब! हे मातः! मैंने तुम्हारे चरणोंकी सेवा नहीं की अथवा तुम्हारे लिये प्रचुर धन भी समर्पण नहीं किया; तो भी मेरे ऊपर यदि तुम ऐसा अनुपम स्नेह रखती हो तो यह सच ही है कि पूत तो कुपूत हो जाता है पर माता कुमाता नहीं होती॥ ४॥ हे गणेशजननि! मैंने अपनी पचासी वर्षसे अधिक आयु बीत जानेपर

इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम्॥ ५॥
श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकैः।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ॥ ६॥
चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम्॥ ७॥
न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः।

विविध विधियोंद्वारा पूजा करनेसे घबड़ाकर सब देवोंको छोड़ दिया है, यदि इस समय तुम्हारी कृपा न हो तो मैं निराधार होकर किसकी शरणमें जाऊँ?॥ ५॥ हे माता अपर्णे! यदि तुम्हारे मन्त्राक्षरोंके कानमें पड़ते ही चाण्डाल भी मिठाईके समान सुमधुरवाणीसे युक्त बड़ा भारी वक्ता बन जाता है और महादरिद्र भी करोड़पति बनकर चिरकालतक निर्भय विचरता है तो उसके जपका अनुष्ठान करनेपर जपनेसे जो फल होता है, उसे कौन जान सकता है? ॥ ६॥ जो चिताका भस्म रमाये हैं, विष खाते हैं, नंगे रहते हैं, जटाजूट बाँधे हैं, गलेमें सर्पमाल पहने हैं, हाथमें खप्पर लिये हैं, पशुपति और भूतोंके स्वामी हैं, ऐसे शिवजीने भी जो एकमात्र जगदीश्वरकी पदवी प्राप्त की है, वह हे भवानि! तुम्हारे साथ विवाह होनेका ही फल है॥ ७॥ हे चन्द्रमुखी माता! मुझे मोक्षकी इच्छा नहीं है, सांसारिक वैभवकी भी लालसा नहीं है, विज्ञान

अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः॥ ८ ॥

नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रुक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः।
श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे
धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव॥ ९ ॥
आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं
करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः
क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति॥ १० ॥

जगदम्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि।
अपराधपरम्परावृतं न हि माता समुपेक्षते सुतम्॥ ११ ॥

तथा सुखकी भी अभिलाषा नहीं है; इसलिये मैं तुमसे यही माँगता हूँ कि मेरी सारी आयु मृडानी, रुद्राणी, शिव-शिव, भवानी आदि नामोंके जपते-जपते ही बीते॥ ८॥ हे श्यामे! मैंने अनेकों उपचारोंसे तुम्हारी सेवा नहीं की (यही नहीं, इसके विपरीत) अनिष्टचिन्तनमें तत्पर अपने वचनोंसे मैंने क्या नहीं किया? (अर्थात् अनेकों बुराइयाँ की हैं) फिर भी मुझ अनाथपर यदि तुम कुछ कृपा रखती हो तो यह तुम्हें बहुत ही उचित है, क्योंकि तुम मेरी माता हो॥ ९॥ हे दुर्गे! हे दयासागर महेश्वरी! जब मैं किसी विपत्तिमें पड़ता हूँ तो तुम्हारा ही स्मरण करता हूँ, इसे तुम मेरी दुष्टता मत समझना, क्योंकि भूखे-प्यासे बालक अपनी माँको ही याद किया करते हैं॥ १०॥ हे जगज्जननी! मुझपर तुम्हारी पूर्ण कृपा है, इसमें आश्चर्य ही क्या है? क्योंकि अनेक

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथा योग्यं तथा कुरु॥ १२॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्।

२१—भवान्यष्टकम्

न तातो न माता न बन्धुर्न दाता
न पुत्रो न पुत्री न भृत्यो न भर्ता।
न जाया न विद्या न वृत्तिर्ममैव
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि॥ १॥

भवाब्धावपारे महादुःखभीरुः
पपात प्रकामी प्रलोभी प्रमत्तः।
कुसंसारपाशप्रबद्धः सदाहं। गतिस्त्वं० ॥ २॥

अपराधोंसे युक्त पुत्रको भी माता त्याग नहीं देती॥ ११॥ हे महादेवि! मेरे समान कोई पापी नहीं है और तुम्हारे समान कोई पाप नाश करनेवाली नहीं है, यह जानकर जैसा उचित समझो, वैसा करो॥ १२॥

हे भवानि! पिता, माता, भाई, दाता, पुत्र, पुत्री, भृत्य, स्वामी, स्त्री, विद्या और वृत्ति—इनमेंसे कोई भी मेरा नहीं है, हे देवि! एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ १॥ मैं अपार भवसागरमें पड़ा हुआ हूँ, महान् दुःखोंसे भयभीत हूँ, कामी, लोभी, मतवाला तथा घृणायोग्य संसारके बन्धनोंमें बँधा हुआ हूँ, हे भवानि! अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो॥ २॥

न जानामि दानं न च ध्यानयोगं
न जानामि तन्त्रं न च स्तोत्रमन्त्रम्।
न जानामि पूजां न च न्यासयोगम्। गतिस्त्वं० ॥ ३ ॥

न जानामि पुण्यं न जानामि तीर्थं
न जानामि मुक्तिं लयं वा कदाचित्।
न जानामि भक्तिं व्रतं वापि मातर्गतिस्त्वं० ॥ ४ ॥

कुकर्मी कुसङ्गी कुबुद्धिः कुदासः
कुलाचारहीनः कदाचारलीनः।
कुदृष्टिः कुवाक्यप्रबन्धः सदाहम्। गतिस्त्वं० ॥ ५ ॥

प्रजेशं रमेशं महेशं सुरेशं
दिनेशं निशीथेश्वरं वा कदाचित्।
न जानामि चान्यत् सदाहं शरण्ये। गतिस्त्वं० ॥ ६ ॥

हे देवि! मैं न तो दान देना जानता हूँ और न ध्यानमार्गका ही मुझे पता है, तन्त्र और स्तोत्र–मन्त्रोंका भी मुझे ज्ञान नहीं है, पूजा तथा न्यास आदिकी क्रियाओंसे तो मैं एकदम कोरा हूँ अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो॥ ३ ॥ न पुण्य जानता हूँ न तीर्थ, न मुक्तिका पता है न लयका। हे मातः! भक्ति और व्रत भी मुझे ज्ञात नहीं है, हे भवानि! अब केवल तुम्हीं मेरा सहारा हो॥ ४॥ मैं कुकर्मी, बुरी संगतिमें रहनेवाला, दुर्बुद्धि, दुष्टदास, कुलोचित सदाचारसे हीन, दुराचारपरायण, कुत्सित दृष्टि रखनेवाला और सदा दुर्वचन बोलनेवाला हूँ, हे भवानि! मुझ अधमकी एकमात्र तुम्हीं गति हो॥ ५ ॥ मैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य किसी भी देवताको नहीं जानता, हे शरण देनेवाली भवानि! एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो॥ ६ ॥

विवादे विषादे प्रमादे प्रवासे
जले चानले पर्वते शत्रुमध्ये।
अरण्ये शरण्ये सदा मां प्रपाहि। गतिस्त्वं० ॥ ७ ॥
अनाथो दरिद्रो जरारोगयुक्तो
महाक्षीणदीनः सदा जाड्यवक्त्रः।
विपत्तौ प्रविष्टः प्रणष्टः सदाहं। गतिस्त्वं० ॥ ८ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं भवान्यष्टकं सम्पूर्णम्।

२२—आनन्दलहरी

भवानि स्तोतुं त्वां प्रभवति चतुर्भिर्न वदनैः
प्रजानामीशानस्त्रिपुरमथनः पञ्चभिरपि।
न षड्भिः सेनानीर्दशशतमुखैरप्यहिपति-
स्तदान्येषां केषां कथय कथमस्मिन्नवसरः॥ १ ॥

हे शरण्ये! तुम विवाद, विषाद, प्रमाद, परदेश, जल, अनल, पर्वत, वन तथा शत्रुओंके मध्यमें सदा ही मेरी रक्षा करो, हे भवानि! एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो॥ ७॥ हे भवानि! मैं सदासे ही अनाथ, दरिद्र, जरा-जीर्ण, रोगी, अत्यन्त दुर्बल, दीन, गूँगा, विपद्ग्रस्त और नष्ट हूँ, अब तुम्हीं एकमात्र मेरी गति हो॥ ८॥

हे भवानि! प्रजापति ब्रह्माजी अपने चार मुखोंसे भी तुम्हारी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं, त्रिपुरविनाशक महादेवजी पाँच मुखोंसे भी तुम्हारा स्तवन नहीं कर सकते, कार्तिकेयजी तो छः मुखोंके रहते हुए भी असमर्थ हैं, इने-गिने मुखवालोंकी तो बात ही क्या है, नागराज शेष हजार मुखोंसे भी तुम्हारा गुणगान नहीं कर पाते, फिर तुम्हीं बताओ, जब इनकी यह दशा है तो दूसरे

घृतक्षीरद्राक्षामधुमधुरिमा कैरपि पदै-
र्विशिष्यानाख्येयो भवति रसनामात्रविषयः।
तथा ते सौन्दर्यं परमशिवदृङ्मात्रविषयः
कथङ्कारं ब्रूमः सकलनिगमागोचरगुणे॥ २॥

मुखे ते ताम्बूलं नयनयुगले कज्जलकला
ललाटे काश्मीरं विलसति गले मौक्तिकलता।
स्फुरत्काञ्ची शाटी पृथुकटितटे हाटकमयी
भजामि त्वां गौरीं नगपतिकिशोरीमविरतम्॥ ३॥

विराजन्मन्दारद्रुमकुसुमहारस्तनतटी
नदद्वीणानादश्रवणविलसत्कुण्डलगुणा।

किसीको और किस प्रकार तुम्हारी स्तुतिका अवसर प्राप्त हो सकता है?॥ १॥ घी, दूध, दाख और मधुकी मधुरताको किसी भी शब्दसे विशेषरूपसे नहीं बताया जा सकता, उसे तो केवल रसना (जिह्वा) ही जानती है। इसी प्रकार तुम्हारा सौन्दर्य केवल महादेवजीके नेत्रोंका ही विषय है, उसे हम क्योंकर बतावें? हे देवि! तुम्हारे गुणोंका वर्णन तो सारे वेद भी नहीं कर सकते॥ २॥ तुम्हारे मुखमें पान है, नेत्रोंमें काजलकी पतली रेखा है, ललाटमें केसरकी बेंदी है, गलेमें मोतीका हार सुशोभित हो रहा है, कटिके निम्नभागमें सुनहली साड़ी है, जिसपर रत्नमयी मेखला (करधनी) चमक रही है, ऐसी वेष-भूषासे सजी हुई गिरिराज हिमालयकी गौरवर्णा कन्या तुमको मैं सदा ही भजता हूँ॥ ३॥ जहाँ पारिजात-पुष्पकी माला सुशोभित हो रही है, उन उरोजोंके समीप बजती हुई वीणाका मधुर नाद श्रवण करते हुए जिनके कानोंमें कुण्डल शोभा पा रहे हैं, जिनका अंग

नताङ्गी मातङ्गीरुचिरगतिभङ्गी भगवती
सती शम्भोरम्भोरुहचटुलचक्षुर्विजयते॥ ४॥

नवीनार्कभ्राजन्मणिकनकभूषापरिकरै-
र्वृताङ्गी सारङ्गीरुचिरनयनाङ्गीकृतशिवा।
तडित्पीता पीताम्बरललितमञ्जीरसुभगा
ममापर्णा पूर्णा निरवधिसुखैरस्तु सुमुखी॥ ५॥

हिमाद्रेः संभूता सुललितकरैः पल्लवयुता
सुपुष्पा मुक्ताभिर्भ्रमरकलिता चालकभरैः।
कृतस्थाणुस्थाना कुचफलनता सूक्तिसरसा
रुजां हन्त्री गन्त्री विलसति चिदानन्दलतिका॥ ६॥

झुका हुआ है, हथिनीकी भाँति जिनकी मन्द-मनोहर चाल है, जिनके नेत्र कमलके समान सुन्दर और चंचल हैं, वे शम्भुकी सती भार्या भगवती उमा सर्वत्र विजयिनी हो रही हैं॥ ४॥ जिनका अंग नवोदित बाल रविके समान देदीप्यमान मणि और सोनेके आभूषणोंसे अलंकृत है, मृगीके समान जिनके विशाल एवं सुन्दर नेत्र हैं, जिन्होंने शिवको पतिरूपसे स्वीकार किया है, बिजलीके समान जिनकी पीत प्रभा है, जो पीत वस्त्रकी प्रभा पड़नेसे और अधिक सुन्दर प्रतीत होनेवाले मंजीरको चरणोंमें धारण करके सुशोभित हो रही हैं, वे निरतिशय आनन्दसे पूर्ण भगवती अपर्णा मुझपर सुप्रसन्न हों॥ ५॥ समस्त रोगोंको नष्ट करनेवाली एक चलती-फिरती चिदानन्दमयी लता (उमा) सुशोभित हो रही है, वह हिमालयसे उत्पन्न हुई है, सुन्दर हाथ ही उसके पल्लव हैं, मुक्ताका हार ही सुन्दर फूल है, काली-काली अलकें भ्रमरोंकी भाँति उसे आच्छन्न किये हुई हैं, स्थाणु (शंकरजी अथवा ठूँठ वृक्ष) ही उसके रहनेका आश्रय है, उरोजरूपी फलोंके भारसे वह झुकी हुई है और

सपर्णामाकीर्णां कतिपयगुणैः सादरमिह
श्रयन्त्यन्ये वल्लीं मम तु मतिरेवं विलसति।
अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर्यत्परिवृतः
पुराणोऽपि स्थाणुः फलति किल कैवल्यपदवीम्॥ ७॥
विधात्री धर्माणां त्वमसि सकलाम्नायजननी
त्वमर्थानां मूलं धनदनमनीयाङ्घ्रिकमले।
त्वमादिः कामानां जननि कृतकन्दर्पविजये
सतां मुक्तेर्बीजं त्वमसि परमब्रह्ममहिषी॥ ८॥
प्रभूता भक्तिस्ते यदपि न ममालोलमनस-
स्त्वया तु श्रीमत्या सदयमवलोक्योऽहमधुना।
पयोदः पानीयं दिशति मधुरं चातकमुखे
भृशं शङ्के कैर्वा विधिभिरनुनीता मम मतिः॥ ९॥

सुन्दर वाणीरूपी रससे भरी है॥ ६॥ दूसरे लोग कुछ ही गुणोंसे युक्त सपर्णा (पत्तेवाली) लताका आदरपूर्वक सेवन करते हैं, परन्तु हमारी बुद्धि तो इस प्रकार स्फुरित होती है कि इस जगत्में सभी लोगोंको एकमात्र अपर्णा (पार्वती या बिना पत्तेकी लता) का ही सेवन करना चाहिये, जिससे आवृत होकर पुराना स्थाणु (ठूँठ वृक्ष अथवा शिव) भी कैवल्यपदवी (मोक्ष) रूप फल देता है॥ ७॥ सम्पूर्ण धर्मोंकी सृष्टि करनेवाली और समस्त आगमोंको जन्म देनेवाली तुम्हीं हो। हे देवि! कुबेर भी तुम्हारे चरणोंकी वन्दना करते हैं, तुम्हीं समस्त वैभवका मूल हो। हे कामदेवपर विजय पानेवाली माँ! कामनाओंकी आदि कारण भी तुम्हीं हो। तुम परब्रह्मस्वरूप महेश्वरकी पटरानी हो। अतः तुम्हीं संतोंके मोक्षका बीज हो॥ ८॥ मेरा मन चंचल है, इसलिये यद्यपि मैंने आपकी प्रचुर भक्ति नहीं की है तथापि आप

कृपापाङ्गालोकं वितर तरसा साधुचरिते
न ते युक्तोपेक्षा मयि शरणदीक्षामुपगते।
न चेदिष्टं दद्यादनुपदमहो कल्पलतिका
विशेषः सामान्यैः कथमितरवल्लीपरिकरैः॥ १०॥

महान्तं विश्वासं तव चरणपङ्केरुहयुगे
निधायान्यन्नैवाश्रितमिह मया दैवतमुमे।
तथापि त्वच्चेतो यदि मयि न जायेत सदयं
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम्॥ ११॥

अयः स्पर्शे लग्नं सपदि लभते हेमपदवीं
यथा रथ्यापाथः शुचि भवति गङ्गौघमिलितम्।

श्रीमतीको इस समय मुझपर अवश्य ही दया-दृष्टि करनी चाहिये। चातक चाहे प्रेम करे या न करे, पर मेघ तो उसके मुखमें मधुर जल गिराता ही है अथवा मुझे बड़ी शंका हो रही है कि मेरी बुद्धि किन-किन विधियोंसे आपमें अनुनीत हो, आपकी ओर लगे॥ ९॥ हे साधु चरित्रोंवाली मा! तुम बहुत शीघ्र अपनी कृपाकटाक्षयुक्त दृष्टिसे मुझे निहारो। मैं तुम्हारी शरणकी दीक्षा ले चुका हूँ, अब मेरी उपेक्षा करना उचित नहीं है। यदि कल्पलता पग-पगपर अभीष्ट कामनाओंकी पूर्ति न कर सके तो अन्य साधारण लताओंसे उसमें विशेषता ही कैसे रह सकती है?॥ १०॥ हे लम्बोदर गणेशको जन्म देनेवाली उमे! मैंने तुम्हारे युगल चरणारविन्दोंमें बहुत बड़ा विश्वास रखकर किसी अन्य देवताका आश्रय नहीं लिया, तथापि यदि तुम्हारा चित्त मुझपर सदय न हो तो अब मैं किसकी शरण जाऊँगा ?॥ ११॥ जिस प्रकार लोहा पारससे छू जानेपर तत्काल सोना बन जाता है और गलियों [के नाले] का जल गंगाजीमें

तथा तत्तत्पापैरतिमलिनमन्तर्मम यदि
त्वयि प्रेम्णासक्तं कथमिव न जायेत विमलम्॥ १२॥
त्वदन्यस्मादिच्छाविषयफललाभे न नियम-
स्त्वमर्थानामिच्छाधिकमपि समर्था वितरणे।
इति प्राहुः प्राञ्चः कमलभवनाद्यास्त्वयि मन-
स्त्वदासक्तं नक्तं दिवमुचितमीशानि कुरु तत्॥ १३॥
स्फुरन्नानारत्नस्फटिकमयभित्तिप्रतिफल-
त्त्वदाकारं चञ्चच्छशधरकलासौधशिखरम्।
मुकुन्दब्रह्मेन्द्रप्रभृतिपरिवारं विजयते
तवागारं रम्यं त्रिभुवनमहाराजगृहिणि॥ १४॥
निवासः कैलासे विधिशतमखाद्याः स्तुतिकराः
कुटुम्बं त्रैलोक्यं कृतकरपुटः सिद्धिनिकरः।

पड़कर पवित्र हो जाता है उसी प्रकार भिन्न-भिन्न पापोंसे मलिन हुआ मेरा अन्तःकरण यदि प्रेमपूर्वक तुममें आसक्त हो गया तो वह कैसे निर्मल नहीं होगा?॥ १२॥ हे ईशानि! तुमसे अन्य किसी देवतासे मनोवांछित फल प्राप्त हो ही जाय, ऐसा नियम नहीं है, परन्तु तुम तो पुरुषोंको उनकी इच्छासे अधिक वस्तु भी देनेमें समर्थ हो—इस प्रकार ब्रह्मादि प्राचीन पुरुष कहा करते हैं। इसलिये अब मेरा मन रात-दिन तुममें ही लगा रहता है, अब तुम जो उचित समझो करो॥ १३॥ हे त्रिभुवनमहाराज शिवकी गृहिणी शिवे! जहाँ नाना प्रकारके रत्न और स्फटिकमणिकी भीतपर तुम्हारा आकार प्रतिबिम्बित हो रहा है, जिसकी अट्टालिकाके शिखरपर प्रतिबिम्बित होकर चन्द्रमाकी कला सुशोभित हो रही है, विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवता जिसे घेरकर खड़े रहते हैं, वह तुम्हारा रमणीय भवन विजयी हो रहा है॥ १४॥ हे गिरिराजनन्दिनि! तुम्हारा कैलासमें निवास है, ब्रह्मा और इन्द्र आदि तुम्हारी

महेशः प्राणेशस्तदवनिधराधीशतनये
न ते सौभाग्यस्य क्वचिदपि मनागस्ति तुलना॥ १५॥
वृषो वृद्धो यानं विषमशनमाशा निवसनं
श्मशानं क्रीडाभूर्भुजगनिवहो भूषणविधिः।
समग्रा सामग्री जगति विदितैवं स्मररिपो-
र्यदेतस्यैश्वर्यं तव जननि सौभाग्यमहिमा॥ १६॥
अशेषब्रह्माण्डप्रलयविधिनैसर्गिकमतिः
श्मशानेष्वासीनः कृतभसितलेपः पशुपतिः।
दधौ कण्ठे हालाहलमखिलभूगोलकृपया
भवत्याः संगत्याः फलमिति च कल्याणि कलये॥ १७॥
त्वदीयं सौन्दर्यं निरतिशयमालोक्य परया
भियैवासीद्गङ्गा जलमयतनुः शैलतनये।

स्तुति किया करते हैं, समस्त त्रिभुवन ही तुम्हारा कुटुम्ब है, आठों सिद्धियोंका समुदाय तुम्हारे सामने हाथ जोड़कर खड़ा रहता है और महेश्वर तुम्हारे प्राणनाथ हैं; तुम्हारे सौभाग्यकी कहीं अल्प भी तुलना नहीं हो सकती॥ १५॥ हे जननि! कामारि शिवका बूढ़ा बैल ही वाहन है, विष ही भोजन है, दिशाएँ ही वस्त्र हैं; श्मशान ही रंगभूमि है और साँप ही आभूषणका काम देते हैं; उनकी यह सारी सामग्री संसारमें प्रसिद्ध ही है, फिर भी जो उनके पास ऐश्वर्य है, वह तुम्हारे ही सौभाग्यकी महिमा है॥ १६॥ हे कल्याणि! जिनकी बुद्धि स्वभावतः समस्त ब्रह्माण्डका संहार करनेमें ही प्रवृत्त होती है, जो अंगोंमें राख पोतकर श्मशानमें बैठे रहते हैं, [ऐसे निठुर स्वभाववाले] पशुपतिने जो समस्त भूमण्डलपर दया करके कण्ठमें हालाहल विष धारण कर लिया, उसे मैं आपके सत्संगका ही फल समझता हूँ॥ १७॥ हे शैलनन्दिनि! आपके सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्यको देखकर अत्यन्त भयके

तदेतस्यास्तस्माद्वदनकमलं वीक्ष्य कृपया
प्रतिष्ठामातन्वन्निजशिरसिवासेन गिरिशः॥ १८॥
विशालश्रीखण्डद्रवमृगमदाकीर्णघुसृण-
प्रसूनव्यामिश्रं भगवति तवाभ्यङ्गसलिलम्।
समादाय स्त्रष्टा चलितपदपांसून्निजकरैः
समाधत्ते सृष्टिं विबुधपुरपङ्केरुहदृशाम्॥ १९॥
वसन्ते सानन्दे कुसुमितलताभिः परिवृते
स्फुरन्नानापद्मे सरसि कलहंसालिसुभगे।
सखीभिः खेलन्तीं मलयपवनान्दोलितजले
स्मरेद्यस्त्वां तस्य ज्वरजनितपीडापसरति॥ २०॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचिता आनन्दलहरी सम्पूर्णा।

कारण ही गंगाजीने जलमय शरीर धारण कर लिया, इससे गंगाजीके दीन मुखकमलको देखकर दयावश शंकरजी उन्हें अपने सिरपर निवास देकर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाते हैं॥ १८॥ हे भगवति! जिसमें विशाल चन्दनके रस, कस्तूरी और केसरके फूल मिले हुए हैं ऐसे तुम्हारे अनुलेपनके जलको और चलते हुए तुम्हारे चरणोंकी धूलिको ही लेकर ब्रह्माजी सुरपुरकी कमलनयनी वनिताओं (अप्सराओं) की सृष्टि करते हैं॥ १९॥ हे देवि! वसन्त ऋतुमें खिली हुई लताओंसे मण्डित, नाना कमलोंसे सुशोभित एवं हंसोंकी मण्डलीसे अलंकृत सरोवरके भीतर, जहाँका जल मलयानिलसे आन्दोलित हो रहा है, [उसमें] सखियोंके साथ क्रीडा करती हुई आपका जो पुरुष ध्यान करता है, उसकी ज्वर-रोगजनित पीड़ा दूर हो जाती है॥ २०॥

२३—श्रीभगवतीस्तोत्रम्

जय भगवति देवि नमो वरदे, जय पापविनाशिनि बहुफलदे।
जय शुम्भनिशुम्भकपालधरे, प्रणमामि तु देवि नरार्तिहरे॥ १॥
जय चन्द्रदिवाकरनेत्रधरे, जय पावकभूषितवक्त्रवरे।
जय भैरवदेहनिलीनपरे, जय अन्धकदैत्यविशोषकरे॥ २॥
जय महिषविमर्दिनि शूलकरे, जय लोकसमस्तकपापहरे।
जय देवि पितामहविष्णुनते, जय भास्करशक्रशिरोऽवनते॥ ३॥
जय षण्मुखसायुधईशनुते, जय सागरगामिनि शम्भुनुते।
जय दुःखदरिद्रविनाशकरे, जय पुत्रकलत्रविवृद्धिकरे॥ ४॥

हे वरदायिनी देवि! हे भगवति! तुम्हारी जय हो। हे पापोंको नष्ट करनेवाली और अनन्त फल देनेवाली देवि! तुम्हारी जय हो! हे शुम्भ-निशुम्भके मुण्डोंको धारण करनेवाली देवि! तुम्हारी जय हो। हे मनुष्योंकी पीड़ा हरनेवाली देवि! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ॥ १॥ हे सूर्य-चन्द्रमारूपी नेत्रोंको धारण करनेवाली! तुम्हारी जय हो। हे अग्निके समान देदीप्यमान मुखसे शोभित होनेवाली! तुम्हारी जय हो। हे भैरव-शरीरमें लीन रहनेवाली और अन्धकासुरका शोषण करनेवाली देवि! तुम्हारी जय हो, जय हो॥ २॥ हे महिषासुरका मर्दन करनेवाली, शूलधारिणी और लोकके समस्त पापोंको दूर करनेवाली भगवति! तुम्हारी जय हो। ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और इन्द्रसे नमस्कृत होनेवाली हे देवि! तुम्हारी जय हो, जय हो॥ ३॥ सशस्त्र शंकर और कार्तिकेयजीके द्वारा वन्दित होनेवाली देवि! तुम्हारी जय हो। शिवके द्वारा प्रशंसित एवं सागरमें मिलनेवाली गंगारूपिणी देवि! तुम्हारी जय हो। दुःख और दरिद्रताका नाश तथा पुत्र-कलत्रकी वृद्धि करनेवाली हे देवि! तुम्हारी जय हो, जय हो॥ ४॥

जय देवि समस्तशरीरधरे, जय नाकविदर्शिनि दुःखहरे।
जय व्याधिविनाशिनि मोक्षकरे, जय वाञ्छितदायिनि सिद्धिवरे॥ ५॥
एतद्व्यासकृतं स्तोत्रं यः पठेन्नियतः शुचिः।
गृहे वा शुद्धभावेन प्रीता भगवती सदा॥ ६॥

इति व्यासकृतं श्रीभगवतीस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

२४—महालक्ष्म्यष्टकम्

इन्द्र उवाच

नमस्तेऽस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते।
शङ्खचक्रगदाहस्ते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ १॥
नमस्ते गरुडारूढे कोलासुरभयङ्करि।
सर्वपापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ २॥

हे देवि! तुम्हारी जय हो। तुम समस्त शरीरोंको धारण करनेवाली, स्वर्गलोकका दर्शन करानेवाली और दुःखहारिणी हो। हे व्याधिनाशिनी देवि! तुम्हारी जय हो। मोक्ष तुम्हारे करतलगत है, हे मनोवांछित फल देनेवाली अष्ट सिद्धियोंसे सम्पन्न परा देवि! तुम्हारी जय हो॥ ५॥ जो कहीं भी रहकर पवित्र भावसे नियमपूर्वक इस व्यासकृत स्तोत्रका पाठ करता है अथवा शुद्ध भावसे घरपर ही पाठ करता है, उसके ऊपर भगवती सदा ही प्रसन्न रहती हैं॥ ६॥

इन्द्र बोले—श्रीपीठपर स्थित और देवताओंसे पूजित होनेवाली हे महामाये। तुम्हें नमस्कार है। हाथमें शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाली हे महालक्ष्मि! तुम्हें प्रणाम है॥ १॥ गरुड़पर आरूढ़ हो कोलासुरको भय

सर्वज्ञे सर्ववरदे सर्वदुष्टभयङ्करि।
सर्वदुःखहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ३॥
सिद्धिबुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि।
मन्त्रपूते सदा देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ४॥
आद्यन्तरहिते देवि आद्यशक्तिमहेश्वरि।
योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ५॥
स्थूलसूक्ष्ममहारौद्रे महाशक्तिमहोदरे।
महापापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ६॥
पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्मस्वरूपिणि।
परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ७॥
श्वेताम्बरधरे देवि नानालङ्कारभूषिते।
जगत्स्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ८॥

देनेवाली और समस्त पापोंको हरनेवाली हे भगवति महालक्ष्मि! तुम्हें प्रणाम है॥ २॥ सब कुछ जाननेवाली, सबको वर देनेवाली, समस्त दुष्टोंको भय देनेवाली और सबके दुःखोंको दूर करनेवाली, हे देवि महालक्ष्मि! तुम्हें नमस्कार है॥ ३॥ सिद्धि, बुद्धि, भोग और मोक्ष देनेवाली हे मन्त्रपूत भगवति महालक्ष्मि! तुम्हें सदा प्रणाम है॥ ४॥ हे देवि! हे आदि-अन्त-रहित आदिशक्ते! हे महेश्वरि! हे योगसे प्रकट हुई भगवति महालक्ष्मि! तुम्हें नमस्कार है॥ ५॥ हे देवि! तुम स्थूल, सूक्ष्म एवं महारौद्ररूपिणी हो, महाशक्ति हो, महोदरा हो और बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाली हो। हे देवि महालक्ष्मि! तुम्हें नमस्कार है॥ ६॥ हे कमलके आसनपर विराजमान परब्रह्मस्वरूपिणी देवि! हे परमेश्वरि! हे जगदम्ब! हे महालक्ष्मि! तुम्हें मेरा प्रणाम है॥ ७॥ हे देवि! तुम श्वेत वस्त्र धारण करनेवाली और नाना प्रकारके

महालक्ष्म्यष्टकं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिमान्नरः।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति राज्यं प्राप्नोति सर्वदा॥ ९ ॥
एककाले पठेन्नित्यं महापापविनाशनम्।
द्विकालं यः पठेन्नित्यं धनधान्यसमन्वितः॥ १० ॥
त्रिकालं यः पठेन्नित्यं महाशत्रुविनाशनम्।
महालक्ष्मीर्भवेन्नित्यं प्रसन्ना वरदा शुभा॥ ११ ॥

इतीन्द्रकृतं महालक्ष्म्यष्टकं सम्पूर्णम्।

२५—श्रीसरस्वतीस्तोत्रम्

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।

आभूषणोंसे विभूषिता हो। सम्पूर्ण जगत्‌में व्याप्त एवं अखिल लोकको जन्म देनेवाली हो। हे महालक्ष्मि! तुम्हें मेरा प्रणाम है॥ ८॥ जो मनुष्य भक्तियुक्त होकर इस महालक्ष्म्यष्टक स्तोत्रका सदा पाठ करता है, वह सारी सिद्धियों और राज्यवैभवको प्राप्त कर सकता है॥ ९॥ जो प्रतिदिन एक समय पाठ करता है, उसके बड़े-बड़े पापोंका नाश हो जाता है। जो दो समय पाठ करता है, वह धन-धान्यसे सम्पन्न होता है॥ १०॥ जो प्रतिदिन तीन काल पाठ करता है उसके महान् शत्रुओंका नाश हो जाता है और उसके ऊपर कल्याणकारिणी वरदायिनी महालक्ष्मी सदा ही प्रसन्न होती हैं॥ ११॥

जो कुन्दके फूल, चन्द्रमा, बर्फ और हारके समान श्वेत हैं, जो शुभ्र कपड़े पहनती हैं, जिनके हाथ उत्तम वीणासे सुशोभित हैं, जो श्वेत कमलासनपर

या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥ १ ॥

आशासु राशीभवदङ्गवल्ली-
भासैव दासीकृतदुग्धसिन्धुम्।
मन्दस्मितैर्निन्दितशारदेन्दुं
वन्देऽरविन्दासनसुन्दरि त्वाम्॥ २ ॥

शारदा शारदाम्भोजवदना वदनाम्बुजे।
सर्वदा सर्वदास्माकं सन्निधिं सन्निधिं क्रियात्॥ ३ ॥
सरस्वतीं च तां नौमि वागधिष्ठातृदेवताम्।
देवत्वं प्रतिपद्यन्ते यदनुग्रहतो जनाः॥ ४ ॥
पातु नो निकषग्रावा मतिहेम्नः सरस्वती।
प्राज्ञेतरपरिच्छेदं वचसैव करोति या॥ ५ ॥

बैठती हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देव जिनकी सदा स्तुति करते हैं और जो सब प्रकारकी जड़ता हर लेती हैं, वे भगवती सरस्वती मेरा पालन करें॥ १ ॥ हे कमलपर बैठनेवाली सुन्दरी सरस्वति! तुम सब दिशाओंमें पुंजीभूत हुई अपनी देहलताकी आभासे ही क्षीर-समुद्रको दास बनानेवाली और मन्द मुसकानसे शरद्-ऋतुके चन्द्रमाको तिरस्कृत करनेवाली हो, तुमको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २॥ शरत्कालमें उत्पन्न कमलके समान मुखवाली और सब मनोरथोंको देनेवाली शारदा सब सम्पत्तियोंके साथ मेरे मुखमें सदा निवास करें॥ ३ ॥ उन वचनकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वतीको प्रणाम करता हूँ जिनकी कृपासे मनुष्य देवता बन जाता है॥ ४॥ बुद्धिरूपी सोनेके लिये कसौटीके समान सरस्वतीजी, जो केवल वचनसे ही विद्वान् और मूर्खोंकी परीक्षा कर देती हैं, हमलोगोंका पालन करें॥ ५॥

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्ते स्फाटिकमालिकां च दधतीं पद्मासने संस्थितां
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्॥ ६॥

वीणाधरे विपुलमङ्गलदानशीले
भक्तार्तिनाशिनि विरञ्चिहरीशवन्द्ये।
कीर्तिप्रदेऽखिलमनोरथदे महार्हे
विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम्॥ ७॥

श्वेताब्जपूर्णविमलासनसंस्थिते हे
श्वेताम्बरावृतमनोहरमञ्जुगात्रे।
उद्यन्मनोज्ञसितपङ्कजमञ्जुलास्ये
विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम्॥ ८॥

जिनका रूप श्वेत है, जो ब्रह्मविचारकी परम तत्त्व हैं, जो सब संसारमें फैल रही हैं, जो हाथोंमें वीणा और पुस्तक धारण किये रहती हैं, अभय देती हैं, मूर्खतारूपी अन्धकारको दूर करती हैं, हाथमें स्फटिकमणिकी माला लिये रहती हैं, कमलके आसनपर विराजमान होती हैं और बुद्धि देनेवाली हैं, उन आद्या परमेश्वरी भगवती सरस्वतीकी वन्दना करता हूँ॥ ६॥ हे वीणा धारण करनेवाली, अपार मंगल देनेवाली, भक्तोंके दुःख छुड़ानेवाली, ब्रह्मा, विष्णु और शिवसे वन्दित होनेवाली, कीर्ति तथा मनोरथ देनेवाली, पूज्यवरा और विद्या देनेवाली सरस्वति! तुमको नित्य प्रणाम करता हूँ॥ ७॥ हे श्वेत कमलोंसे भरे हुए निर्मल आसनपर विराजनेवाली, श्वेत वस्त्रोंसे ढके सुन्दर शरीरवाली, खुले हुए सुन्दर श्वेत कमलके समान मंजुल मुखवाली और विद्या

मातस्त्वदीयपदपङ्कजभक्तियुक्ता
ये त्वां भजन्ति निखिलानपरान्विहाय।
ते निर्जरत्वमिह यान्ति कलेवरेण
भूवह्निवायुगगनाम्बुविनिर्मितेन॥ ९ ॥

मोहान्धकारभरिते हृदये मदीये
मातः सदैव कुरु वासमुदारभावे।
स्वीयाखिलावयवनिर्मलसुप्रभाभिः
शीघ्रं विनाशय मनोगतमन्धकारम्॥ १० ॥

ब्रह्मा जगत् सृजति पालयतीन्दिरेशः
शम्भुर्विनाशयति देवि तव प्रभावैः।
न स्यात्कृपा यदि तव प्रकटप्रभावे
न स्युः कथञ्चिदपि ते निजकार्यदक्षाः॥ ११ ॥

देनेवाली सरस्वति! तुमको नित्य प्रणाम करता हूँ!॥ ८॥ हे मातः! जो (मनुष्य) तुम्हारे चरण-कमलोंमें भक्ति रखकर और सब देवताओंको छोड़कर तुम्हारा भजन करते हैं, वे पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश और जल—इन पाँच तत्त्वोंके बने शरीरसे ही देवता बन जाते हैं॥ ९॥ हे उदार बुद्धिवाली माँ! मोहरूपी अन्धकारसे भरे मेरे हृदयमें सदा निवास करो और अपने सब अंगोंकी निर्मल कान्तिसे मेरे मनके अन्धकारका शीघ्र नाश करो॥ १०॥ हे देवि! तुम्हारे ही प्रभावसे ब्रह्मा जगत्को बनाते हैं, विष्णु पालते हैं और शिव विनाश करते हैं; हे प्रकट प्रभावशाली! यदि इन तीनोंपर तुम्हारी कृपा न हो, तो वे किसी प्रकार अपना काम नहीं कर सकते॥ ११॥

लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टिर्गौरी तुष्टिः प्रभा धृतिः।
एताभिः पाहि तनुभिरष्टाभिर्मां सरस्वति॥ १२॥
सरस्वत्यै नमो नित्यं भद्रकाल्यै नमो नमः।
वेदवेदान्तवेदाङ्गविद्यास्थानेभ्य एव च॥ १३॥
सरस्वति महाभागे विद्ये कमललोचने।
विद्यारूपे विशालाक्षि विद्यां देहि नमोऽस्तु ते॥ १४॥
यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि॥ १५॥

इति श्रीसरस्वतीस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

२६—देव्या आरात्रिकम्

प्रवरातीरनिवासिनि निगमप्रतिपाद्ये
पारावारविहारिणि नारायणि हृद्ये।

हे सरस्वति! लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा, धृति—इन आठ मूर्तियोंसे मेरी रक्षा करो॥ १२॥ सरस्वतीको नित्य नमस्कार है, भद्रकालीको नमस्कार है और वेद, वेदान्त, वेदांग तथा विद्याओंके स्थानोंको प्रणाम है॥ १३॥ हे महाभाग्यवती ज्ञानस्वरूपा कमलके समान विशाल नेत्रवाली, ज्ञानदात्री सरस्वति! मुझको विद्या दो, मैं तुमको प्रणाम करता हूँ॥ १४॥ हे देवि! जो अक्षर, पद अथवा मात्रा छूट गयी हो, उसके लिये क्षमा करो और हे परमेश्वरि! प्रसन्न रहो॥ १५॥

हे प्रवरानदीतीरवासिनी, वेदोंसे प्रतिपादित, क्षीरसागरविहारिणी,

प्रपञ्चसारे जगदाधारे श्रीविद्ये
प्रपन्नपालननिरते मुनिवृन्दाराध्ये ॥ १ ॥
जय देवि जय देवि जय मोहनरूपे।
मामिह जननि समुद्धर पतितं भवकूपे ॥ ध्रुवपदम् ॥

दिव्यसुधाकरवदने कुन्दोज्ज्वलरदने
पदनखनिर्जितमदने मधुकैटभकदने।
विकसितपङ्कजनयने पन्नगपतिशयने
खगपतिवहने गहने सङ्कटवनदहने ॥ जय देवि० ॥ २ ॥

मञ्जीराङ्कितचरणे मणिमुक्ताभरणे
कञ्चुकिवस्त्रावरणे वक्त्राम्बुजधरणे।
शक्रामयभयहरणे भूसुरसुखकरणे
करुणां कुरु मे शरणे गजनक्रोद्धरणे ॥ जय देवि० ॥ ३ ॥

नारायणप्रिया, मनोहारिणी, संसारकी सार और आधाररूपिणी, लक्ष्मी और विद्यास्वरूपिणी, शरणागतकी रक्षामें तत्पर, मुनिगणोंसे आराधित हे देवि! तुम्हारी जय हो! जय हो! हे मनोहर रूपवाली! तुम्हारी जय हो! हे मातः! इस संसारकूपमें पड़े हुए मेरा उद्धार करो ॥ १ ॥ पूर्णचन्द्रके समान दिव्य मुखवाली, कुन्दपुष्पके-से स्वच्छ दाँतोंवाली, अपने पैरोंकी नख-ज्योतिसे मदनको पराजित करनेवाली, मधुकैटभका संहार करनेवाली, प्रफुल्लित कमल-समान नेत्रोंवाली, शेषशायिनी, गरुडवाहिनी, दुराराध्या, संकटवनको भस्म करनेवाली (हे देवि! तुम्हारी जय हो! जय हो!) ॥ २ ॥ चरणोंमें नूपुर धारण करनेवाली, मणि और मोतियोंके आभूषण धारण करनेवाली, चोली और वस्त्रोंसे सुसज्जित, कमलमुखी, इन्द्रके विघ्न-बाधाओंको दूर करनेवाली,

छित्त्वा राहुग्रीवां पासि त्वं विबुधान्
ददासि मृत्युमनिष्टं पीयूषं विबुधान्।
विहरसि दानवऋद्धान् समरे संसिद्धान्
मध्वमुनीश्वरवरदे पालय संसिद्धान्॥ जय देवि०॥ ४॥

इति देव्या आरात्रिकं समाप्तम्।

ब्राह्मणोंके लिये आनन्ददायिनी, गज और ग्राहका उद्धार करनेवाली हे देवि! मुझ शरणागतपर कृपा करो। (हे देवि! तुम्हारी जय हो! जय हो!)॥ ३॥ तुम राहुकी ग्रीवा काटकर देवोंकी रक्षा करती हो, असुरोंको उनकी इच्छाके विपरीत मृत्यु और देवताओंको अमृत देती हो, युद्धकुशल और वीर दैत्योंसे रण-क्रीडा करानेवाली हो। हे मध्वमुनीश्वरको वर देनेवाली! भक्तोंका पालन करो। (हे देवि! तुम्हारी जय हो! जय हो!)॥ ४॥

ॐ

विष्णुस्तोत्राणि

२७—श्रीनारायणाष्टकम्

वात्सल्यादभयप्रदानसमयादार्तार्तिनिर्वापणा-
दौदार्यादघशोषणादगणितश्रेयःपदप्रापणात् ।
सेव्यः श्रीपतिरेक एव जगतामेतेऽभवन्साक्षिणः
प्रह्लादश्च विभीषणश्च करिराट् पाञ्चाल्यहल्या ध्रुवः ॥ १ ॥

प्रह्लादास्ति यदीश्वरो वद हरिः सर्वत्र मे दर्शय
स्तम्भे चैवमिति ब्रुवन्तमसुरं तत्राविरासीद्धरिः ।
वक्षस्तस्य विदारयन्निजनखैर्वात्सल्यमापादय-
न्नार्तत्राणपरायणः स भगवान्नारायणो मे गतिः ॥ २ ॥

अति वात्सल्यमय होनेके कारण, भयभीतोंको अभयदान देनेका स्वभाव होनेके कारण, दुःखी पुरुषोंका दुःख हरनेके कारण, अति उदार और पापनाशक होनेके कारण और अन्य अगणित कल्याणमय पदों (श्रेयों) की प्राप्ति करा देनेके कारण सारे जगत्के लिये भगवान् लक्ष्मीपति ही सेवनीय हैं; क्योंकि प्रह्लाद, विभीषण, गजराज, द्रौपदी, अहल्या और ध्रुव—ये (क्रमसे) इन कार्योंमें साक्षी हैं॥ १॥ 'अरे प्रह्लाद! यदि तू कहता है कि ईश्वर सर्वत्र है तो मुझे खम्भेमें दिखा'—दैत्य हिरण्यकशिपुके ऐसा कहते ही वहाँ भगवान् आविर्भूत हो गये और अपने नखोंसे उसके वक्षःस्थलको विदीर्ण करके अपना

श्रीरामात्र विभीषणोऽयमनघो रक्षोभयादागतः
सुग्रीवानय पालयैनमधुना पौलस्त्यमेवागतम्।
इत्युक्त्वाभयमस्य सर्वविदितं यो राघवो दत्तवानार्त० ॥ ३ ॥

नक्रग्रस्तपदं समुद्धतकरं ब्रह्मादयो भो सुराः
पाल्यन्तामिति दीनवाक्यकरिणं देवेष्वशक्तेषु यः।
मा भैषीरिति यस्य नक्रहनने चक्रायुधः श्रीधर। आर्त० ॥ ४ ॥

भो कृष्णाच्युत भो कृपालय हरे भो पाण्डवानां सखे
क्वासि क्वासि सुयोधनादपहृतां भो रक्ष मामातुराम्।
इत्युक्तोऽक्षयवस्त्रसंभृततनुं योऽपालयद्द्रौपदीमार्त० ॥ ५ ॥

वात्सल्य प्रकट किया। ऐसे दीनरक्षक भगवान् नारायण ही मेरी एकमात्र गति हैं॥ २॥ 'हे श्रीरामजी! यह निष्पाप विभीषण राक्षस रावणके भयसे आया है—यह सुनते ही सुग्रीव! उस पुलस्त्य-ऋषिके पौत्रको तुरंत ले आओ और उसकी रक्षा करो'—ऐसा कहकर जैसा अभयदान श्रीरघुनाथजीने उसे दिया वह सबको विदित ही है; वे ही दीनरक्षक भगवान् नारायण मेरी एकमात्र गति हैं॥ ३॥ ग्राहद्वारा पाँव पकड़ लिये जानेपर सूँड़ उठाकर 'हे ब्रह्मा आदि देवगण! मेरी रक्षा करो।'—इस प्रकार दीनवाणीसे पुकारते हुए गजेन्द्रकी रक्षामें देवताओंको असमर्थ देखकर 'मत डर' ऐसा कहकर जिन श्रीधरने ग्राहका वध करनेके लिये सुदर्शनचक्र उठा लिया, वे ही दीनरक्षक भगवान् नारायण मेरी एकमात्र गति हैं॥ ४॥ 'हे कृष्ण! हे अच्युत! हे कृपालो! हे हरे! हे पाण्डवसखे! तुम कहाँ हो ? कहाँ हो? दुर्योधनद्वारा लूटी गयी मुझ आतुराकी रक्षा करो! रक्षा करो!!'—इस प्रकार प्रार्थना करनेपर जिसने अक्षयवस्त्रसे द्रौपदीका शरीर ढककर उसकी रक्षा की, वह दुःखियोंका उद्धार करनेमें तत्पर भगवान् नारायण मेरी गति हैं॥ ५॥

यत्पादाब्जनखोदकं त्रिजगतां पापौघविध्वंसनं
यन्नामामृतपूरकं च पिबतां संसारसन्तारकम्।
पाषाणोऽपि यदङ्घ्रिपद्मरजसा शापान्मुनेर्मोचित। आर्त० ॥ ६ ॥
पित्रा भ्रातरमुत्तमासनगतं चौत्तानपादिर्ध्रुवो
दृष्ट्वा तत्सममारुरुक्षुरधृतो मात्रावमानं गतः।
यं गत्वा शरणं यदाप तपसा हेमाद्रिसिंहासनमार्त० ॥ ७ ॥
आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता
घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः।
सङ्कीर्त्य नारायणशब्दमात्रं
विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवन्ति ॥ ८ ॥

इति श्रीकूरेशस्वामिविरचितं श्रीनारायणाष्टकं सम्पूर्णम्।

जिनके चरणकमलोंके नखोंकी धोवन श्रीगंगाजी त्रिलोकीके पापसमूहको ध्वंस करनेवाली हैं, जिनका नामामृतसमूह पान करनेवालोंको संसारसागरसे पार करनेवाला है तथा जिनके पादपद्मोंकी रजसे पाषाण भी मुनिशापसे मुक्त हो गया, वे दीनरक्षक भगवान् नारायण ही मेरी एकमात्र गति हैं॥ ६ ॥ अपने भाईको पिताके साथ उत्तम राजसिंहासनपर बैठा देख उत्तानपादके पुत्र ध्रुवने जब स्वयं ही उसपर चढ़ना चाहा तो पिताने उसे अंकमें नहीं लिया और विमाताने भी उसका अनादर किया, उस समय जिनकी शरण जाकर उसने तपके द्वारा सुमेरुगिरिके राजसिंहासनकी प्राप्ति की, वे ही दीनरक्षक भगवान् नारायण मेरी एकमात्र गति हैं॥ ७॥ जो पीड़ित हैं, विषादयुक्त हैं, शिथिल (निराश) हैं, भयभीत हैं अथवा किसी भी घोर आपत्तिमें पड़े हुए हैं, वे 'नारायण' शब्दके संकीर्तनमात्रसे दुःखसे मुक्त होकर सुखी हो जाते हैं॥ ८ ॥

२८—श्रीकमलापत्यष्टकम्

भुजगतल्पगतं घनसुन्दरं गरुडवाहनमम्बुजलोचनम्।
नलिनचक्रगदाकरमव्ययं भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ १॥
अलिकुलासितकोमलकुन्तलं विमलपीतदुकूलमनोहरम्।
जलधिजाङ्कितवामकलेवरं भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ २॥
किमु जपैश्च तपोभिरुताध्वरैरपि किमुत्तमतीर्थनिषेवणैः।
किमुत शास्त्रकदम्बविलोकनैर्भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ ३॥
मनुजदेहमिमं भुवि दुर्लभं समधिगम्य सुरैरपि वाञ्छितम्।
विषयलम्पटतामपहाय वै भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ ४॥
न वनिता न सुतो न सहोदरो न हि पिता जननी न च बान्धवः।
व्रजति साकमनेन जनेन वै भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ ५॥

रे मनुष्यो! जो शेषशय्यापर पौढ़े हुए हैं, नीलमेघ-सदृश श्याम-सुन्दर हैं, गरुड़ जिनका वाहन है और जिनके कमल-जैसे नेत्र हैं, उन शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी अव्यय श्रीकमलापतिको भजो॥ १॥ भौंरोंके समान जिनकी काली-काली कोमल अलकें हैं, अति निर्मल सुन्दर पीताम्बर है और जिनके वामांकमें श्रीलक्ष्मीजी सुशोभित हैं, रे मनुष्यो! उन श्रीकमलापतिको भजो॥ २॥ जप, तप, यज्ञ अथवा उत्तम-उत्तम तीर्थोंके सेवनमें क्या रखा है? अथवा अधिक शास्त्रावलोकनके पचड़ेमें पड़नेसे ही क्या होना है? रे मनुष्यो! बस श्रीकमलापतिको ही भजो॥ ३॥ इस संसारमें यह मनुष्य-शरीर अति दुर्लभ और देवगणोंसे भी वांछित है—ऐसा जानकर विषय-लम्पटताको त्याग कर रे मनुष्यो! श्रीकमलापतिको भजो॥ ४॥ इस जीवके साथ स्त्री, पुत्र, भाई, पिता, माता और बन्धुजन कोई भी नहीं जाता, अतः रे मनुष्यो!

सकलमेव चलं सचराचरं जगदिदं सुतरां धनयौवनम्।
समवलोक्य विवेकदृशा द्रुतं भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ ६॥
विविधरोगयुतं क्षणभंगुरं परवशं नवमार्गमलाकुलम्।
परिनिरीक्ष्य शरीरमिदं स्वकं भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ ७॥
मुनिवरैरनिशं हृदि भावितं शिवविरिञ्चिमहेन्द्रनुतं सदा।
मरणजन्मजराभयमोचनं भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ ८॥
हरिपदाष्टकमेतदनुत्तमं परमहंसजनेन समीरितम्।
पठति यस्तु समाहितचेतसा व्रजति विष्णुपदं स नरो ध्रुवम्॥ ९॥

इति श्रीमत्परमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं श्रीकमलापत्यष्टकं सम्पूर्णम्।

श्रीकमलापतिको भजो॥ ५॥ यह सचराचर जगत्, धन और यौवन सभी अत्यन्त अस्थिर हैं—ऐसा विवेकदृष्टिसे देखकर रे मनुष्यो! शीघ्र ही श्रीकमलापतिको भजो॥ ६॥ यह शरीर नाना प्रकारके रोगोंका आश्रय, क्षणिक, परवश तथा मलसे भरे हुए नौ मार्गोंवाला है—ऐसा देखकर रे मनुष्यो! श्रीकमलापतिको भजो॥ ७॥ मुनिजन जिनका अहर्निश हृदयमें ध्यान करते हैं, शिव, ब्रह्मा तथा इन्द्रादि समस्त देवगण जिनकी सर्वदा वन्दना करते हैं तथा जो जरा, जन्म और मरणादिके भयको दूर करनेवाले हैं, रे मनुष्यो! उन श्रीकमलापतिको भजो॥ ८॥ दास परमहंसद्वारा कहे गये इस अत्युत्तम भगवान् हरिके अष्टकको जो मनुष्य समाहितचित्तसे पढ़ता है, वह अवश्य ही भगवान् विष्णुके परमधामको प्राप्त होता है॥ ९॥

२९—श्रीदीनबन्ध्वष्टकम्

यस्मादिदं जगदुदेति चतुर्मुखाद्यं
यस्मिन्नवस्थितमशेषमशेषमूले।
यत्रोपयाति विलयं च समस्तमन्ते
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः॥ १॥

चक्रं सहस्रकरचारु करारविन्दे
गुर्वी गदा दरवरश्च विभाति यस्य।
पक्षीन्द्रपृष्ठपरिरोपितपादपद्मो ।दृग्गोचरो०॥ २॥

येनोद्धृता वसुमती सलिले निमग्ना
नग्ना च पाण्डववधूः स्थगिता दुकूलैः।
संमोचितो जलचरस्य मुखाद्गजेन्द्रो।दृग्गोचरो०॥ ३॥
यस्यार्द्रदृष्टिवशतस्तु सुराः समृद्धिं

जिन परमात्मासे यह ब्रह्मा आदिरूप जगत् प्रकट होता है और सम्पूर्ण जगत्के कारणभूत जिस परमेश्वरमें यह समस्त संसार स्थित है तथा अन्तकालमें यह समस्त जगत् जिनमें लीन हो जाता है—वे दीनबन्धु भगवान् आज मेरे नेत्रोंके समक्ष दर्शन दें॥ १॥ जिनके करकमलमें सूर्यके समान प्रकाशमान चक्र, भारी गदा और श्रेष्ठ शंख शोभित हो रहा है, जो पक्षिराज (गरुड़) की पीठपर अपने चरणकमल रखे हुए हैं, वे दीनबन्धु भगवान् आज मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दें॥ २॥ जिन्होंने जलमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया, नग्न की जाती हुई पाण्डववधू (द्रौपदी) को वस्त्रोंसे ढक लिया और ग्राहके मुखसे गजराजको बचा लिया—वे दीनबन्धु भगवान् आज मेरे नेत्रोंके समक्ष हो जायँ॥ ३॥ जिनकी स्नेहदृष्टिसे देखे

कोपेक्षणेन दनुजा विलयं व्रजन्ति
भीताश्चरन्ति च यतोऽर्कयमानिलाद्या। दृग्गोचरो० ॥ ४ ॥
गायन्ति सामकुशला यमजं मखेषु
ध्यायन्ति धीरमतयो यतयो विविक्ते।
पश्यन्ति योगिपुरुषाः पुरुषं शरीरे। दृग्गोचरो० ॥ ५ ॥
आकाररूपगुणयोगविवर्जितोऽपि
भक्तानुकम्पननिमित्तगृहीतमूर्तिः।
यः सर्वगोऽपि कृतशेषशरीरशय्यो। दृग्गोचरो० ॥ ६ ॥
यस्याङ्घ्रिपङ्कजमनिद्रमुनीन्द्रवृन्दै-
राराध्यते भवदवानलदाहशान्त्यै।
सर्वापराधमविचिन्त्य ममाखिलात्मा। दृग्गोचरो० ॥ ७ ॥

जानेके कारण देवतालोग ऐश्वर्य पाते हैं और कोपदृष्टिके द्वारा देखे जानेसे दानवलोग नष्ट हो जाते हैं तथा सूर्य, यम और वायु आदि जिनके भयसे भीत होकर अपने-अपने कार्योंमें प्रवृत्त होते हैं, वे दीनबन्धु भगवान् आज मेरे नेत्रोंके सामने हो जायँ॥ ४॥ सामवेदके गानमें चतुरलोग यज्ञोंमें जिन अजन्मा भगवान्‌के गुणोंको गाते हैं, धीर बुद्धिवाले संन्यासीलोग एकान्तमें जिनका ध्यान करते हैं और योगीजन अपने शरीरके भीतर पुरुषरूपसे जिनका साक्षात्कार करते हैं, वे दीनबन्धु भगवान् आज मेरे नेत्रोंके सामने हों॥ ५॥ जो भगवान् आकार, रूप और गुणके सम्बन्धसे रहित होकर भी भक्तोंके ऊपर दया करनेके निमित्त अवतार धारण करते हैं और जो सर्वत्र विद्यमान रहते हुए भी शेषनागके शरीरको अपनी शय्या बनाये हुए हैं, वे दीनबन्धु भगवान् आज मेरे नेत्रोंके प्रत्यक्ष हों॥ ६॥ आलस्यहीन मुनिवरोंका समूह संसारके दुःखरूपी दावानलकी जलन शान्त करनेके लिये जिन भगवान्‌के चरणकमलकी आराधना करता है, वे समस्त जगत्‌के आत्मभूत दीनबन्धु मेरे सब अपराधोंको भूलकर आज मेरे नेत्रोंके समक्ष दर्शन दें॥ ७॥

यन्नामकीर्तनपरः श्वपचोऽपि नूनं
हित्वाखिलं कलिमलं भुवनं पुनाति।
दग्ध्वा ममाघमखिलं करुणेक्षणेन। दृग्गोचरो०॥ ८॥
दीनबन्ध्वष्टकं पुण्यं ब्रह्मानन्देन भाषितम्।
यः पठेत् प्रयतो नित्यं तस्य विष्णुः प्रसीदति॥ ९॥

इति श्रीमत्परमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं श्रीदीनबन्ध्वष्टकं सम्पूर्णम्।

३०—परमेश्वरस्तुतिसारस्तोत्रम्

त्वमेकः शुद्धोऽसि त्वयि निगमबाह्या मलमयं
प्रपञ्चं पश्यन्ति भ्रमपरवशाः पापनिरताः।
बहिस्तेभ्यः कृत्वा स्वपदशरणं मानय विभो
गजेन्द्रे दृष्टं ते शरणद वदान्यं स्वपददम्॥ १॥

जिन भगवान्के नामकीर्तनमें तत्पर चाण्डाल भी निश्चय ही सम्पूर्ण कलिमल (पाप)को त्यागकर जगत्को पवित्र कर देता है, वे दीनबन्धु भगवान् मेरे समस्त पापको अपनी करुणादृष्टिसे जलाकर आज मेरे नेत्रोंको प्रत्यक्ष दर्शन दें॥ ८॥ जो लोग ब्रह्मानन्दके कहे हुए इस दीनबन्ध्वष्टक नामक पवित्र स्तोत्रका नित्य संयतचित्तसे पाठ करेंगे उनके ऊपर विष्णुभगवान् प्रसन्न रहेंगे॥ ९॥

हे शरण देनेवाले परमात्मन्! तुम एक और शुद्ध हो, किंतु वेदके विरुद्ध बुद्धि रखनेवाले भ्रान्त और पापपरायणजन तुम्हारे ऐसे स्वरूपमें भी विकाररूप प्रपंच (संसार) देखते हैं। हे सर्वव्यापी भगवन्! मुझे उन लोगोंसे अलग करके अपने चरणोंकी शरणमें ले लो। [अपनी शरणमें लेनेकी] तुम्हारी उदारता गजेन्द्रके

न सृष्टेस्ते हानिर्यदि हि कृपयातोऽवसि च मां
त्वयानेके गुप्ता व्यसनमिति तेऽस्ति श्रुतिपथे।
अतो मामुद्धर्तुं घटय मयि दृष्टिं सुविमलां
न रिक्तां मे याच्ञां स्वजनरत कर्तुं भव हरे॥ २॥
कदाहं भो स्वामिन्नियतमनसा त्वां हृदि भज-
न्नभद्रे संसारे ह्यनवरतदुःखेऽतिविरसः।
लभेयं तां शान्तिं परममुनिभिर्या ह्यधिगता
दयां कृत्वा मे त्वं वितर परशान्तिं भवहर॥ ३॥
विधाता चेद्विश्वं सृजति सृजतां मे शुभकृतिं
विधुश्चेत्पाता मावतु जनिमृतेर्दुःखजलधेः।
हरः संहर्ता संहरतु मम शोकं सजनकं
यथाहं मुक्तः स्यां किमपि तु तथा ते विदधताम्॥ ४॥

विषयमें देखी गयी है कि तुमने उसकी रक्षा करके उसे अपना धाम दे दिया॥ १॥ हे भगवन्! यदि तुम कृपा करके मेरी रक्षा करते हो तो इससे तुम्हारी सृष्टिमर्यादाकी कोई हानि नहीं है। तुमने अनेकोंकी रक्षा की है, हमारे कानोंमें यह बात पड़ चुकी है कि तुम्हें शरणागतोंकी रक्षा करनेका व्यसन है, अतः मेरा उद्धार करनेके लिये तुम मुझपर भी अपनी निर्मल दृष्टि डालो। अपने भक्तजनोंकी रक्षामें तत्पर रहनेवाले हे भगवन्! मेरी प्रार्थनाको असफल न करो॥ २॥ हे प्रभो! मैं कब तुमको अपने हृदयमें संयतमनसे भजता हुआ अमंगलमय एवं सर्वदा दुःखयुक्त इस संसारसे विरक्त होकर उस शान्तिको प्राप्त करूँगा जिसको कि महामुनियोंने पाया है। हे भव-बन्धनसे मुक्त करनेवाले भगवन्! तुम दया करके मुझे वही पराशान्ति दो॥ ३॥ हे भगवन्! ब्रह्मा यदि संसारकी सृष्टि करते हैं तो मेरे शुभकर्मोंकी सृष्टि करें, विष्णुभगवान् यदि संसारकी रक्षा करते हैं तो

अहं ब्रह्मानन्दस्त्वमपि च तदाख्यः सुविदित-
स्ततोऽहं भिन्नो नो कथमपि भवत्तः श्रुतिदृशा।
तथा चेदानीं त्वं त्वयि मम विभेदस्य जननीं
स्वमायां संवार्य प्रभव मम भेदं निरसितुम्॥ ५॥

कदाहं हे स्वामिञ्जनिमृतिमयं दुःखनिबिडं
भवं हित्वा सत्येऽनवरतसुखे स्वात्मवपुषि।
रमे तस्मिन्नित्यं निखिलमुनयो ब्रह्मरसिका
रमन्ते यस्मिंस्ते कृतसकलकृत्या यतिवराः॥ ६॥

पठन्त्येके शास्त्रं निगममपरे तत्परतया
यजन्त्यन्ये त्वां वै ददति च पदार्थांस्तव हितान्।

जन्म-मरणके दुःखरूपी सागरसे मेरी रक्षा करें और शिवजी यदि संसारका संहार करते हैं तो मेरे शोकोंका उनके कारणभूत अशुभ कर्मोंसहित संहार करें। जिस प्रकार मेरी मुक्ति हो सके वैसा कोई उपाय वे लोग करें॥ ४॥ हे भगवन्! मेरा नाम ब्रह्मानन्द है और तुम्हारा भी यही नाम प्रसिद्ध है। इसलिये श्रुतिदृष्ट्या* (सुननेमें) मैं तुमसे किसी प्रकार भिन्न नहीं हूँ। ऐसी स्थितिमें तुम इस समय अपने और मेरेमें भेदको प्रकट करनेवाली अपनी माया दूर कर मेरी भिन्नताको निकाल दो॥ ५॥ हे प्रभो! मैं कब जन्म-मरणमय घोर दुःखवाले संसारको छोड़कर निरन्तर आनन्दमय सत्य आत्मस्वरूपमें नित्य रमण करूँगा, जिसमें कि ब्रह्मास्वादके रसिक तथा कृतकृत्य योगीश्वर महामुनि रमण करते हैं॥ ६॥ हे भगवन्! तुमको प्रसन्न करनेके लिये कोई शास्त्र पढ़ते हैं और कोई तत्पर होकर वेद पढ़ते हैं तथा दूसरे लोग यज्ञके

---

* वेदवाक्यके अनुसार।

अहं तु स्वामिंस्ते शरणमगमं संसृतिभया-
द्यथा ते प्रीतिः स्याद्धितकर तथा त्वं कुरु विभो॥ ७॥

अहं ज्योतिर्नित्यो गगनमिव तृप्तः सुखमयः
श्रुतौ सिद्धोऽद्वैतः कथमपि न भिन्नोऽस्मि विधुतः।
इति ज्ञाते तत्त्वे भवति च परः संसृतिलया-
दतस्तत्त्वज्ञानं मयि सुघटयेस्त्वं हि कृपया॥ ८॥

अनादौ संसारे जनिमृतिमये दुःखितमना
मुमुक्षुः सन्कश्चिद्व्रजति हि गुरुं ज्ञानपरमम्।
ततो ज्ञात्वा यं वै तुदति न पुनः क्लेशनिवहै-
र्भजेऽहं तं देवं भवति च परो यस्य भजनात्॥ ९॥

द्वारा तुम्हारी आराधना करते हैं और तुम्हें रुचिकर वस्तु अर्पण करते हैं; किन्तु हे प्रभो! मैं तो संसारके दुःखोंके डरसे तुम्हारी शरणमें आया हूँ। हे हित करनेवाले व्यापक परमात्मन्! जिस प्रकार मुझपर तुम्हारी प्रसन्नता हो सके वैसा करो॥ ७॥ हे भगवन्! मैं प्रकाशरूप, नित्य, आकाशके समान व्यापक, पूर्णकाम, आनन्दमय और श्रुतिसिद्ध अद्वैतरूप हूँ; किसी प्रकार ब्रह्मसे भिन्न नहीं हूँ, इस प्रकार तत्त्वज्ञान हो जानेपर विवेक-दृष्टिसे जगत्का लय हो जानेके कारण ज्ञानी ब्रह्मरूप हो जाता है; इसलिये तुम कृपा करके मुझमें तत्त्वज्ञान भर दो॥ ८॥ जन्ममरणरूप भयसे युक्त इस अनादि संसारमें मन-ही-मन सदा दुःखी रहनेवाला कोई पुरुष इससे मुक्त होनेकी इच्छासे परम ज्ञानी गुरुकी सेवा करता है और उससे जिस भगवान्को जानकर फिर सांसारिक क्लेशसमूहोंसे पीड़ित नहीं होता उस देवको मैं भजता हूँ, जिसके भजनसे भक्त परब्रह्मस्वरूप हो जाता है॥ ९॥

विवेको वैराग्यो न च शमदमाद्याः षडपरे
मुमुक्षा मे नास्ति प्रभवति कथं ज्ञानममलम्।
अतः संसाराब्धेस्तरणसरणिं मामुपदिशन्
स्वबुद्धिं श्रौतीं मे वितर भगवंस्त्वं हि कृपया॥ १०॥

कदाहं भो स्वामिन्निगममतिवेद्यं शिवमयं
चिदानन्दं नित्यं श्रुतिहृतपरिच्छेदनिवहम्।
त्वमर्थाभिन्नं त्वामभिरम इहात्मन्यविरतं
मनीषामेवं मे सफलय वदान्य स्वकृपया॥ ११॥

यदर्थं सर्वं वै प्रियमसुधनादि प्रभवति
स्वयं नान्यार्थो हि प्रिय इति च वेदे प्रविदितम्।
स आत्मा सर्वेषां जनिमृतिमतां वेदगदित-
स्ततोऽहं तं वेद्यं सततममलं यामि शरणम्॥ १२॥

हे भगवन्! मुझमें न विवेक है, न वैराग्य और न शम, दम आदि ज्ञानके अन्य छः साधन ही हैं; मुझमें मुक्त होनेकी सुदृढ़ इच्छा भी नहीं है; फिर कैसे निर्मल ज्ञान प्राप्त हो सकता है ? इसलिये संसारसागरको पार करनेके मार्गका उपदेश देते हुए तुम कृपाकर मुझको अपनी वैदिक बुद्धि (ब्रह्मविद्या) प्रदान करो॥ १०॥ हे स्वामिन्! श्रुतिने जिनके त्रिविध परिच्छेद (इयत्ता) का बाध किया है; जो वैदिक बुद्धिसे ही जाननेयोग्य हैं, जो नित्य चिदानन्दघन एवं कल्याण स्वरूप हैं तथा जो 'त्वम्' पदके अर्थभूत जीवात्मासे अभिन्न हैं ऐसे आपका निरन्तर अपने हृदय-देशमें मैं कब ध्यान करूँगा, हे उदार परमेश्वर! आप अपनी कृपासे इस विचारको सफल करें॥ ११॥ हे भगवन्! जिसके लिये प्रिय होनेके कारण ही ये प्राण, धन आदि समस्त वस्तु प्रिय प्रतीत होते हैं; और जो किसी दूसरेके

मया त्यक्तं सर्वं कथमपि भवेत्स्वात्मनि मति-
स्त्वदीया माया मां प्रति तु विपरीतं कृतवती।
ततोऽहं किं कुर्यां न हि मम मतिः क्वापि चरति
दयां कृत्वा नाथ स्वपदशरणं देहि शिवदम्॥ १३॥

नगा दैत्याः कीशा भवजलधिपारं हि गमिता-
स्त्वया चान्ये स्वामिन्किमिति समयेऽस्मिञ्छयितवान्।
न हेलां त्वं कुर्यास्त्वयि निहितसर्वे मयि विभो
न हि त्वाहं हित्वा कमपि शरणं चान्यमगमम्॥ १४॥

अनन्ताद्या विज्ञा न गुणजलधेस्तेऽन्तमगम-
न्नतः पारं यायात्तव गुणगणानां कथमयम्।

लिये प्रिय होनेके कारण प्रिय नहीं है अपितु स्वतः प्रिय है; यह बात वेदमें प्रसिद्ध है, वही जन्मने-मरनेवाले समस्त प्राणियोंका आत्मा है और उसीका वेदोंमें वर्णन किया गया है, अतः मैं उसी जाननेके योग्य निर्मल आत्मदेवकी सदा ही शरण लेता हूँ॥ १२॥ हे नाथ! मेरी मति किसी प्रकार आत्मस्वरूप तुममें लगी रहे, इसी उद्देश्यसे मैंने अपना सब कुछ परित्याग कर दिया, किन्तु तुम्हारी मायाने तो मेरे प्रति विपरीत ही कार्य किया, अतः अब मैं क्या करूँ, मेरी बुद्धि कुछ काम नहीं करती, अब तुम्हीं दया करके मुझे कल्याण देनेवाले अपने चरणोंकी शरण दो॥ १३॥ हे प्रभो! तुमने पर्वत-वृक्षादि स्थावरों, दैत्यों, वानरों और दूसरोंको भी संसारसागरके पार कर दिया। इस समय क्यों सो गये? हे अन्तर्यामिन्! तुम्हारे विराट् स्वरूपमें समस्त संसार है, इसलिये तुम मेरा अनादर न करो, तुमको छोड़कर मैंने दूसरेकी शरण नहीं ली॥ १४॥ हे भगवन्! विशेष ज्ञान रखनेवाले शेष, शारदा आदि भी यदि तुम्हारे गुणरूपी

गृणन्यावद्धि त्वां जनिमृतिहरं याति परमां
गतिं योगिप्राप्यामिति मनसि बुद्ध्वाहमनवम्॥ १५॥

इति श्रीमन्मौक्तिकरामोदासीनशिष्यब्रह्मानन्दविरचितं
परमेश्वरस्तुतिसारस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

३१—श्रीभगवच्छरणस्तोत्रम्

सच्चिदानन्दरूपाय भक्तानुग्रहकारिणे।
मायानिर्मितविश्वाय महेशाय नमो नमः॥ १॥

रोगा हरन्ति सततं प्रबलाः शरीरं
कामादयोऽप्यनुदिनं प्रदहन्ति चित्तम्।
मृत्युश्च नृत्यति सदा कलयन् दिनानि
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो॥ २॥

सागरके पार न जा सके, तो मुझ–जैसा साधारण जन तुम्हारे गुणसमूहका पार कैसे पा सकता है; परन्तु जन्म–मरणरूप कष्टको हरनेवाले तुझ परमेश्वरका जितना ही हो सके उतना ही गुणगान करके मनुष्य योगिजनोंके प्राप्त होनेयोग्य परमगतिको प्राप्त कर लेता है, ऐसा मनमें जानकर मैंने आपकी स्तुति की है॥ १५॥

भक्तोंपर दया करनेवाले और मायासे संसारकी रचना करानेवाले सच्चिदानन्दरूप महेश्वरको बारम्बार नमस्कार है॥ १॥ हे भगवन्! इस संसारमें प्रबल रोग सर्वदा शरीरको क्षीण करते रहते हैं, काम आदि भी प्रतिदिन हृदयको जलाते रहते हैं और मृत्यु भी दिनोंको गिनती हुई पास ही नृत्य करती रहती है। इसलिये हे दीनबन्धो! अब मेरे लिये आप ही शरण हैं॥ २॥

देहो विनश्यति सदा परिणामशील-
श्चित्तं च खिद्यति सदा विषयानुरागि।
बुद्धिः सदा हि रमते विषयेषु नान्तस्तस्मात्० ॥ ३ ॥
आयुर्विनश्यति यथामघटस्थतोयं
विद्युत्प्रभेव चपला बत यौवनश्रीः।
वृद्धा प्रधावति यथा मृगराजपत्नी। तस्मात्० ॥ ४ ॥
आयादव्ययो मम भवत्यधिकोऽविनीते
कामादयो हि बलिनो निबलाः शमाद्याः।
मृत्युर्यदा तुदति मां बत किं वदेयं। तस्मात्० ॥ ५ ॥
तप्तं तपो न हि कदापि मयेह तन्वा
वाण्या तथा न हि कदापि तपश्च तप्तम्।
मिथ्याभिभाषणपरेण न मानसं हि। तस्मात्० ॥ ६ ॥

सदा ही परिवर्तनशील यह शरीर नष्ट होता जा रहा है और विषयोंमें आसक्त रहनेवाला चित्त सदा ही खिन्न रहा करता है। मेरी बुद्धि भी सदा विषयोंमें ही रमती है, अन्तरात्मामें नहीं। इसलिये हे दीनबन्धो! अब मेरी आप ही शरण हैं॥ ३॥ कष्टकी बात है कि कच्चे घड़ेमें रखे हुए जलकी तरह आयुका नाश हो रहा है, यौवनकी शोभा बिजलीकी चमक-सी क्षणभंगुर है और वृद्धावस्था सिंहनीकी भाँति (खानेके लिये) दौड़ी चली आ रही है, इस कारण हे दीनबन्धो! अब मेरे लिये आप ही शरण हैं॥ ४॥ हे भगवन्! मेरे पास आयसे व्यय ही अधिक है, क्योंकि मुझ अविनीतपर कामादि ही बली होते हैं [उन्हींका मुझपर प्रभाव है] और शम आदि निर्बल रहते हैं [इनका मुझपर वश नहीं चलता]। खेद है कि जब मुझे मृत्यु पीड़ित करेगी, उस समय मैं क्या कह सकूँगा? इसलिये हे दीनबन्धो! अब मेरे लिये आप ही शरण हैं॥ ५॥ हे भगवन्! मैंने इस

स्तब्धं मनो मम सदा न हि याति सौम्यं
चक्षुश्च मे न तव पश्यति विश्वरूपम्।
वाचा तथैव न वदेन्मम सौम्यवाणीं। तस्मात्० ॥ ७ ॥

सत्त्वं न मे मनसि याति रजस्तमोभ्यां
विद्धे तथा कथमहो शुभकर्मवार्ता।
साक्षात्परम्परतया सुखसाधनं तत्तस्मात्० ॥ ८ ॥

पूजा कृता न हि कदापि मया त्वदीया
मन्त्रं त्वदीयमपि मे न जपेद्रसज्ञा।
चित्तं न मे स्मरति ते चरणौ ह्यवाप्य। तस्मात्० ॥ ९ ॥

जीवनमें कभी शरीरसे तप नहीं किया, सदा असत्य भाषणमें लगे रहकर कभी वाणीसे भी तप नहीं किया और मानस तप तो कभी किया ही नहीं, अतः हे दीनबन्धो! अब मेरे लिये आप ही शरण हैं॥ ६ ॥ हे भगवन्! मेरा मन सदा ही स्तब्ध—जडवत् ज्ञानशून्य रहा है, इस कारण सौम्य (विशुद्ध एवं विनम्र) नहीं हो रहा है और मेरी आँखें आपके विश्वरूपका दर्शन नहीं कर पातीं,* इसी प्रकार मेरी जिह्वा भी कोमल वाणी नहीं बोलती। अतः हे दीनबन्धो! अब मेरे लिये आप ही शरण हैं॥ ७॥ रजोगुण और तमोगुणसे विद्ध हुए मेरे हृदयमें सत्त्वगुण नहीं आने पाता। अहो! ऐसी स्थितिमें शुभ कर्मोंका करना तो दूर रहा उनकी बात भी कैसे की जा सकती है और साक्षात् अथवा परम्परासे वह (शुभ कर्म) ही सुखका साधन है, [सो मुझमें नहीं है] इसलिये हे दीनबन्धो! अब मेरे लिये आप ही शरण हैं॥ ८॥ हे भगवन्! मैंने कभी भी आपकी पूजा नहीं की, मेरी जिह्वा आपके मन्त्रको भी नहीं

---

* अर्थात् 'जगत्' रूपमें भगवान् ही विराजमान हैं, ऐसी प्रतीति इन आँखोंको नहीं हो रही है।

यज्ञो न मेऽस्ति हुतिदानदयादियुक्तो
ज्ञानस्य साधनगणो न विवेकमुख्यः।
ज्ञानं क्व साधनगणेन विना क्व मोक्षस्तस्मात्० ॥ १० ॥

सत्सङ्गतिर्हि विदिता तव भक्तिहेतुः
साप्यद्य नास्ति बत पण्डितमानिनो मे।
तामन्तरेण न हि सा क्व च बोधवार्ता। तस्मात्० ॥ ११ ॥

दृष्टिर्न भूतविषया समताभिधाना
वैषम्यमेव तदियं विषयीकरोति।
शान्तिः कुतो मम भवेत्समता न चेत्स्यात्तस्मात्० ॥ १२ ॥
मैत्री समेषु न च मेऽस्ति कदापि नाथ

जपती और न मेरा चित्त आपके चरणोंको पाकर उनका चिन्तन ही करता है; इसलिये हे दीनबन्धो! अब मेरे लिये आप ही शरण हैं॥ ९॥ हे भगवन्! मैंने हवन, दान, दया आदिसे युक्त यज्ञ नहीं किया और न ज्ञानके साधनसमूह विवेक आदिको ही प्राप्त किया। साधनसमूहके बिना ज्ञान कैसे हो सकता है? और बिना ज्ञानके मोक्ष कैसे हो सकता है ? इसलिये हे दीनबन्धो! अब मेरे लिये आप ही शरण हैं॥ १०॥ हे भगवन्! यह प्रसिद्ध है कि आपकी भक्तिका कारण सत्संग है, पर खेद है कि अपनेको पण्डित माननेवाले मुझमें वह (सत्संग) भी नहीं है। सत्संगके बिना भगवद्भक्ति नहीं होती; फिर ज्ञानकी तो बात ही कहाँ हो सकती है? इसलिये हे दीनबन्धो! अब मेरे लिये आप ही शरण हैं॥ ११॥ हे भगवन्! मेरी दृष्टि प्राणियोंमें समान नहीं रहती है, अपितु यह प्राणियोंमें विषम भावनाको ही अपनाती है। यदि मेरी दृष्टिमें समता नहीं हुई तो मुझमें शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है ? इसलिये हे दीनबन्धो! अब मेरे लिये आप ही शरण हैं॥ १२॥ हे नाथ! अपने बराबरवालोंमें मेरी

दीने तथा न करुणा मुदिता च पुण्ये।
पापेऽनुपेक्षणवतो मम मुत्कथं स्यात्तस्मात्०॥ १३॥
नेत्रादिकं मम बहिर्विषयेषु सक्तं
नान्तर्मुखं भवति तानविहाय तस्य।
क्वान्तर्मुखत्वमपहाय सुखस्य वार्ता। तस्मात्०॥ १४॥
त्यक्तं गृहाद्यपि मया भवतापशान्त्यै
नासीदसौ हृतहृदो मम मायया ते।
सा चाधुना किमु विधास्यति नेति जाने। तस्मात्०॥ १५॥
प्राप्ता धनं गृहकुटुम्बगजाश्वदारा
राज्यं यदैहिकमठेन्द्रपुरश्च नाथ।
सर्वं विनश्वरमिदं न फलाय कस्मै। तस्मात्०॥ १६॥

मित्रता नहीं है और मैंने न तो कभी दीनोंपर दया दिखायी और न कभी पुण्यके विषयमें प्रसन्नता ही प्रकट की। जब मैंने पापमें उपेक्षा नहीं दिखायी तो मुझे प्रसन्नता कैसे मिले ? इसलिये हे दीनबन्धो! अब मेरे लिये आप ही शरण हैं॥ १३॥ हे भगवन्! मेरी नेत्रादि इन्द्रियाँ बाह्य-विषयोंमें ही आसक्त हैं, इनकी वृत्ति अन्तर्मुखी नहीं होती, भला विषयोंको त्यागे बिना ही इन्द्रियोंमें अन्तर्मुखता कहाँसे होगी? और इन्द्रियोंके अन्तर्मुख हुए बिना सुखकी वार्ता कहाँ ? इसलिये हे दीनबन्धो! अब मेरे लिये आप ही शरण हैं॥ १४॥ हे भगवन्! मैंने सांसारिक दु:खोंकी शान्तिके लिये स्त्री-गृह आदि सबका परित्याग कर दिया, किन्तु आपकी मायाने मेरे मनको हर लिया, इससे दु:खोंकी शान्ति नहीं हुई। अब समझमें नहीं आता इस समय आपकी माया और क्या-क्या करेगी ? इसलिये हे दीनबन्धो! अब मेरे लिये आप ही शरण हैं॥ १५॥ हे प्रभो! प्राप्त हुए धन, गृह, परिवार, हाथी एवं घोड़े, स्त्री आदि तथा इस पृथ्वी अथवा इन्द्रपुरीका राज्य—ये सब वस्तुएँ नश्वर हैं, किसी भी

प्राणान्निरुध्य विधिना न कृतो हि योगो
योगं विनास्ति मनसः स्थिरता कुतो मे।
तां वै विना मम न चेतसि शान्तिवार्ता। तस्मात्० ॥ १७ ॥

ज्ञानं यथा मम भवेत्कृपया गुरूणां
सेवां तथा न विधिनाकरवं हि तेषाम्।
सेवापि साधनतयाविदितास्ति चित्ते। तस्मात्० ॥ १८ ॥

तीर्थादिसेवनमहो विधिना हि नाथ
नाकारि येन मनसो मम शोधनं स्यात्।
शुद्धिं विना न मनसोऽवगमापवर्गौ। तस्मात्० ॥ १९ ॥

वेदान्तशीलनमपि प्रमितिं करोति

अच्छे फलको देनेवाली नहीं हैं; इस कारण हे दीनबन्धो! अब मेरे लिये आप ही शरण हैं॥ १६॥ हे भगवन्! मैंने प्राणायामके द्वारा योग (ध्यान) नहीं किया; बिना योगके मेरा मन स्थिर कैसे हो सकता है और स्थिरताके बिना चित्तमें शान्ति कथनमात्रके लिये भी नहीं हो सकती, इस कारण हे दीनबन्धो! अब मेरे लिये आप ही शरण हैं॥ १७॥ हे भगवन्! मैंने गुरुजनोंकी ऐसी सेवा भी कभी नहीं की, जिससे उनकी कृपा प्राप्त होकर उसके द्वारा मुझमें यथावत् ज्ञान होता, गुरुजनोंकी सेवा भी ज्ञानका साधन है ऐसा मैंने कभी मनमें जाना ही नहीं, इस कारण हे दीनबन्धो! अब मेरे लिये आप ही शरण हैं॥ १८॥ हे नाथ! यह दुःखकी बात है कि मैंने विधिसे तीर्थ आदिका सेवन नहीं किया, जिससे मेरे मनकी शुद्धि हो, मनकी शुद्धिके बिना ज्ञान और मोक्ष नहीं होते; इस कारण हे दीनबन्धो! अब मेरे लिये आप ही शरण हैं॥ १९॥ हे प्रभो! आत्मा ही ब्रह्म है, इसके यथार्थ ज्ञानके साधनमें लगे हुए पुरुषको वेदान्त ब्रह्मतत्त्वका

ब्रह्मात्मनः प्रमितिसाधनसंयुतस्य
नैवास्ति साधनलवो मयि नाथ तस्यास्तस्मात्०॥ २०॥
गोविन्द शङ्कर हरे गिरिजेश मेश
शम्भो जनार्दन गिरीश मुकुन्द साम्ब।
नान्या गतिर्मम कथञ्चन वां विहाय
तस्मात्प्रभो मम गतिः कृपया विधेया॥ २१॥
एवं स्तवं भगवदाश्रयणाभिधानं
ये मानवाः प्रतिदिनं प्रणताः पठन्ति।
ते मानवाः भवरतिं परिभूय शान्तिं
गच्छन्ति किं च परमात्मनि भक्तिमद्धा॥ २२॥

इति श्रीब्रह्मानन्दविरचितं भगवच्छरणस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

यथावत् ज्ञान करा देता है, परन्तु मुझमें तो उस सत्य ज्ञानके साधनका अंशमात्र भी नहीं है, इस कारण हे दीनबन्धो! अब मेरे लिये आप ही शरण हैं॥ २०॥ हे गोविन्द! हे शंकर! हे हरे! हे गिरिजापते! हे लक्ष्मीपते! हे शम्भो! हे जनार्दन! हे पार्वती माताके सहित गिरीश! हे मुकुन्द! मेरे लिये आप दोनों (इष्टदेवों) के अतिरिक्त किसी प्रकार कोई भी दूसरा सहारा नहीं है, इसलिये हे प्रभो! कृपा करके मुझे सद्गति प्रदान कीजिये॥ २१॥ जो मनुष्य विनीतभावसे इस भगवच्छरण नामक स्तोत्रका प्रतिदिन पाठ करेंगे वे संसारकी आसक्ति त्यागकर परमशान्ति और परमात्माकी साक्षात् भक्ति प्राप्त करेंगे॥ २२॥

३२—मङ्गलगीतम्

श्रितकमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल ए।
कलितललितवनमाल जय जय देव हरे॥ १॥

दिनमणिमण्डलमण्डन भवखण्डन ए।
मुनिजनमानसहंस जय जय देव हरे॥ २॥

कालियविषधरगञ्जन जनरञ्जन ए।
यदुकुलनलिनदिनेश जय जय देव हरे॥ ३॥

मधुमुरनरकविनाशन गरुडासन ए।
सुरकुलकेलिनिदान जय जय देव हरे॥ ४॥

अमलकमलदललोचन भवमोचन ए।
त्रिभुवनभवननिधान जय जय देव हरे॥ ५॥

लक्ष्मीजीके कुचकुम्भोंका आश्रय करनेवाले, कुण्डलधारी और अति मनोहर वनमालाधारी हे देव! हे हरे! आपकी जय हो, जय हो॥ १॥ सूर्यमण्डलको सुशोभित करनेवाले, भवभयके नाशक और मुनियोंके मनरूप सरोवरके हंस हे देव! हे हरे! आपकी जय हो, जय हो॥ २॥ कालियनागका दमन करनेवाले, भक्तोंको आनन्दित करनेवाले एवं यदुकुलकमलदिवाकर हे देव! हे हरे! आपकी जय हो, जय हो॥ ३॥ मधु, मुर और नरकासुरके संहारकर्ता, गरुडवाहन, देवताओंकी क्रीडाके आश्रय हे देव! हे हरे! आपकी जय हो, जय हो॥ ४॥ निर्मल कमलदलके समान नेत्रोंवाले, भवबन्धनको काटनेवाले एवं त्रिभुवनके आश्रयभूत हे देव! हे हरे! आपकी जय हो, जय हो॥ ५॥

जनकसुताकृतभूषण जितदूषण ए।
समरशमितदशकण्ठ जय जय देव हरे॥ ६॥

अभिनवजलधरसुन्दर धृतमन्दर ए।
श्रीमुखचन्द्रचकोर जय जय देव हरे॥ ७॥

तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए।
कुरु कुशलं प्रणतेषु जय जय देव हरे॥ ८॥

श्रीजयदेवकवेरुदितमिदं कुरुते मुदम्।
मङ्गलमञ्जुलगीतं जय जय देव हरे॥ ९॥

इति श्रीजयदेवविरचितं मङ्गलगीतं सम्पूर्णम्।

सीताके साथ शोभा पानेवाले, दूषण दैत्यको जीतनेवाले और युद्धमें रावणको मारनेवाले हे देव! हे हरे! आपकी जय हो, जय हो॥ ६॥ नवीन मेघके समान श्यामसुन्दर, मन्दराचलको धारण करनेवाले और लक्ष्मीजीके मुखचन्द्रके लिये चकोररूप हे देव! हे हरे! आपकी जय हो, जय हो॥ ७॥ आपके चरणोंकी हम शरण लेते हैं, आप भी इधर दयादृष्टि कीजिये और हम शरणागतोंका कल्याण कीजिये। हे देव! हे हरे! आपकी जय हो, जय हो॥ ८॥ इस प्रकार श्रीजयदेव कविका बनाया हुआ यह मंगलमय मधुर गीत भक्तोंको आनन्द देनेवाला है। हे देव! हे हरे! आपकी जय हो, जय हो॥ ९॥

३३—श्रीदशावतारस्तोत्रम्

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम्।
विहितवहित्रचरित्रमखेदम्॥
केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे॥ १॥

क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे।
धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे॥
केशव धृतकच्छपरूप जय जगदीश हरे॥ २॥

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना।
शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना॥
केशव धृतसूकररूप जय जगदीश हरे॥ ३॥

तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गम्।
दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम्॥
केशव धृतनरहरिरूप जय जगदीश हरे॥ ४॥

हे मीनावतारधारी केशव! हे जगदीश्वर! हे हरे! प्रलयकालमें बढ़े हुए समुद्रजलमें बिना क्लेश नौका चलानेकी लीला करते हुए आपने वेदोंकी रक्षा की थी, आपकी जय हो॥ १॥ हे केशव! पृथ्वीके धारण करनेके चिह्नसे कठोर और अत्यन्त विशाल तुम्हारी पीठपर पृथ्वी स्थित है, ऐसे कच्छपरूपधारी जगत्पति आप हरिकी जय हो॥ २॥ चन्द्रमामें निमग्न हुई कलंकरेखाके समान यह पृथ्वी आपके दाँतकी नोकपर अटकी हुई सुशोभित हो रही है, ऐसे सूकररूपधारी जगत्पति हरि केशवकी जय हो॥ ३॥ हिरण्यकशिपुरूपी तुच्छ भृंगको चीर डालनेवाले विचित्र नुकीले नख आपके

छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन।
पदनखनीरजनितजनपावन॥
केशव धृतवामनरूप जय जगदीश हरे॥ ५॥

क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापम्।
स्नपयसि पयसि शमितभवतापम्॥
केशव धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे॥ ६॥

वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयम्।
दशमुखमौलिबलिं रमणीयम्॥
केशव धृतरघुपतिवेष जय जगदीश हरे॥ ७॥

वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभम्।
हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम्॥
केशव धृतहलधररूप जय जगदीश हरे॥ ८॥

करकमलमें हैं, ऐसे नृसिंहरूपधारी जगत्पति हरि केशवकी जय हो॥ ४॥ हे आश्चर्यमय वामनरूपधारी केशव! आपने पैर बढ़ाकर राजा बलिको छला तथा अपने चरण-नखोंके जलसे लोगोंको पवित्र किया, ऐसे आप जगत्पति हरिकी जय हो॥ ५॥ हे केशव! आप जगत्‌के ताप और पापोंका नाश करते हुए उसे क्षत्रियोंके रुधिररूप जलसे स्नान कराते हैं, ऐसे आप परशुरामरूपधारी जगत्पति हरिकी जय हो॥ ६॥ जो युद्धमें सब दिशाओंमें लोकपालोंको प्रसन्न करनेवाली, रावणके सिरकी सुन्दर बलि देते हैं, ऐसे श्रीरामावतारधारी आप जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ ७॥ जो अपने गौर शरीरमें हलके भयसे आकर मिली हुई यमुना और मेघके सदृश नीलाम्बर धारण किये रहते हैं, ऐसे आप बलरामरूपधारी जगत्पति भगवान् केशवकी

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्।
सदयहृदयदर्शितपशुघातम्॥
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे॥ ९ ॥
म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम्।
धूमकेतुमिव किमपि करालम्॥
केशव धृतकल्किशरीर जय जगदीश हरे॥ १० ॥
श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम्।
शृणु सुखदं शुभदं भवसारम्॥
केशव धृतदशविधरूप जय जगदीश हरे॥ ११ ॥

इति श्रीजयदेवविरचितं श्रीदशावतारस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

जय हो॥ ८॥ सदय हृदयसे पशुहत्याकी कठोरता दिखाते हुए यज्ञविधानसम्बन्धी श्रुतियोंकी निन्दा करनेवाले आप बुद्धरूपधारी जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ ९॥ जो म्लेच्छसमूहका नाश करनेके लिये धूमकेतुके समान अत्यन्त भयंकर तलवार चलाते हैं, ऐसे कल्किरूपधारी आप जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ १०॥ [हे भक्तो!] इस जयदेव कविकी कही हुई मनोहर, आनन्ददायक, कल्याणमय तत्त्वरूप स्तुतिको सुनो, हे दशावतारधारी! जगत्पति, हरि केशव! आपकी जय हो॥ ११॥

३४—ध्रुवकृतभगवत्स्तुतिः

ध्रुव उवाच

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
सञ्जीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्॥ १॥
एकस्त्वमेव भगवन्निदमात्मशक्त्या
मायाख्ययोरुगुणया महदाद्यशेषम्।
सृष्ट्वानुविश्य पुरुषस्तदसद्गुणेषु
नानेव दारुषु विभावसुवद् विभासि॥ २॥
त्वद्दत्तया वयुनयेदमचष्ट विश्वं
सुप्तप्रबुद्ध इव नाथ भवत्प्रपन्नः।

ध्रुवजी बोले—जो सर्वशक्तिसम्पन्न श्रीहरि मेरे अन्तःकरणमें प्रवेशकर अपने तेजसे मेरी इस सोयी हुई वाणीको सजीव करते हैं तथा हाथ, पैर, कान और त्वचा आदि अन्य इन्द्रियोंको भी चैतन्य प्रदान करते हैं, वे अन्तर्यामी भगवान् आप ही हैं, आपको प्रणाम है॥ १॥ भगवन्! आप अकेले ही अपनी अनन्त गुणमयी मायाशक्तिसे इस महदादि सम्पूर्ण जगत्को रचकर उसके इन्द्रियादि असत् गुणोंमें जीवरूपसे अनुप्रविष्ट हो इस प्रकार अनेकवत् भासते हैं, जैसे नाना प्रकारके काष्ठोंमें प्रकट हुई आग अपनी उपाधिजाके अनुसार भिन्न-भिन्न रूपसे भासती है॥ २॥ हे नाथ! ब्रह्माजीने भी आपकी शरणमें आकर आपके दिये हुए ज्ञानके प्रभावसे इस जगत्को सोकर उठे हुए पुरुषके समान देखा था। हे दीनबन्धो! मुक्त पुरुषोंके भी आश्रय करनेयोग्य

तस्यापवर्ग्यशरणं तव पादमूलं
विस्मर्यते कृतविदा कथमार्तबन्धो॥ ३॥

नूनं विमुष्टमतयस्तव मायया ते
ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतोः।
अर्चन्ति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्य-
मिच्छन्ति यत्स्पर्शजं निरयेऽपि नृणाम्॥ ४॥

या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्म-
ध्यानाद् भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात्।
सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत्
किं त्वन्तकासिलुलितात् पततां विमानात्॥ ५॥

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो
भूयादनन्त महतामभलाशयानाम्।

आपके चरणोंको कृतज्ञ पुरुष कैसे भूल सकता है?॥ ३॥ जिनके संसर्गसे होनेवाला सुख नरकतुल्य योनिमें भी प्राप्त हो सकता है, उन शवतुल्य शरीरसे भोगे जानेयोग्य विषयोंकी जो पुरुष इच्छा करते हैं और जो जन्म-मरणरूप संसारसे छुड़ानेवाले कल्पवृक्षरूप आपकी मोक्षके सिवा किसी और हेतुसे उपासना करते हैं, अवश्य ही उनकी बुद्धिको आपकी मायाने ठग लिया है॥ ४॥ आपके चरणकमलोंका ध्यान करनेसे अथवा आपके भक्तोंकी कथाएँ सुननेसे प्राणियोंको जो आनन्द प्राप्त होता है, वह अपने स्वरूपभूत ब्रह्ममें भी नहीं मिल सकता है; फिर जिनको कालकी तलवार खण्डित कर डालती है, उन स्वर्गके विमानोंसे गिरनेवाले पुरुषोंको तो वह मिल ही कैसे सकता है॥ ५॥ अतः हे अनन्त! आपमें निरन्तर भक्तिभाव रखनेवाले

येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ॥ ६ ॥
ते न स्मरन्त्यतितरां प्रियमीश मर्त्यं
ये चान्वदः सुतसुहृद्गृहवित्तदाराः।
ये त्वब्जनाभ भवदीयपदारविन्द-
सौगन्ध्यलुब्धहृदयेषु कृतप्रसङ्गाः ॥ ७ ॥
तिर्यङ्नगद्विजसरीसृपदेवदैत्य-
मर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषम्।
रूपं स्थविष्ठमज ते महदाद्यनेकं
नातः परं परम वेद्मि न यत्र वादः ॥ ८ ॥
कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णन्
शेते पुमान् स्वदृगनन्तसखस्तदङ्के।

शुद्धचित्त महापुरुषोंसे ही मेरा बारंबार समागम हो, जिससे मैं आपके गुणोंके कथामृतका पान करनेसे उन्मत्त होकर अति उग्र और नाना प्रकारके दुःखोंसे पूर्ण इस संसार-सागरको सुगमतासे ही पार कर लूँ॥ ६ ॥ हे कमलनाभ! आपके चरणकमलोंकी सुगन्धमें जिनका चित्त लुभाया हुआ है, उन महापुरुषोंका जो लोग समागम करते हैं, हे ईश! वे अपने इस अत्यन्त प्रिय शरीर और इसके सम्बन्धी पुत्र, मित्र, गृह और स्त्री आदिका स्मरण भी नहीं करते॥ ७॥ हे अज! मैं तो पशु आदि तिर्यग्योनि, पर्वत, पक्षी, सर्प, देवता, दैत्य और मनुष्य आदिसे परिपूर्ण तथा महत्तत्त्वादि अनेकों कारणोंसे सम्पादित आपके इस सदसत्स्वरूप स्थूल शरीरको ही जानता हूँ। इसके परे जो आपका परम स्वरूप है, जिसमें वाणीकी गति नहीं है, उसको मैं नहीं जानता॥ ८ ॥ हे नाथ! कल्पके अन्तमें जो स्वयंप्रकाश परमपुरुष भगवान् इस

यन्नाभिसिन्धुरुहकाञ्चनलोकपद्म-
गर्भे द्युमान् भगवते प्रणतोऽस्मि तस्मै॥ ९ ॥

त्वं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्ध आत्मा
कूटस्थ आदिपुरुषो भगवांस्त्र्यधीशः।
यद् बुद्ध्यवस्थितिमखण्डितया स्वदृष्ट्या
द्रष्टा स्थितावधिमखो व्यतिरिक्त आस्से॥ १० ॥

यस्मिन् विरुद्धगतयो ह्यनिशं पतन्ति
विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात्।
तद् ब्रह्म विश्वभवमेकमनन्तमाद्य-
मानन्दमात्रमविकारमहं प्रपद्ये॥ ११ ॥

सम्पूर्ण जगत्को अपने उदरमें लीन करके शेषनागका सहारा ले उनकी गोदमें शयन करते हैं तथा जिनके नाभिसिन्धुसे प्रकट हुए सकल लोकोंके उत्पत्तिस्थान सुवर्णमय कमलसे परम तेजोमय ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं, उन्हीं आप परमेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ९ ॥ हे प्रभो! आप जीवात्मासे भिन्न अर्थात् पुरुषोत्तम हैं; क्योंकि आप नित्यमुक्त, नित्यशुद्ध, चेतन, आत्मा, निर्विकार, आदिपुरुष, षडैश्वर्यसम्पन्न, तीनों लोकोंके स्वामी और अपनी दृष्टिसे बुद्धिकी अवस्थाओंको अखण्डरूपसे देखनेवाले हैं। संसारकी स्थितिके लिये ही आप यज्ञपुरुष श्रीविष्णुभगवान्के रूपसे स्थित हैं॥ १० ॥ जिनसे विद्या, अविद्या आदि विरुद्ध गतियोंवाली अनेक शक्तियाँ क्रमशः अहर्निश प्रकट होती हैं, उन विश्वकी उत्पत्ति करनेवाले एक, अनन्त, आद्य, आनन्दमात्र एवं निर्विकार ब्रह्मकी मैं शरण लेता हूँ॥ ११ ॥

सत्याऽऽशिषो हि भगवंस्तव पादपद्म-
माशीस्तथानुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः।
अप्येवमर्य भगवान् परिपाति दीनान्
वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान्॥ १२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे नवमेऽध्याये ध्रुवकृत भगवत्स्तुतिः सम्पूर्णा।

३५—श्रीलक्ष्मीनृसिंहस्तोत्रम्

श्रीमत्पयोनिधिनिकेतन चक्रपाणे
भोगीन्द्रभोगमणिरञ्जितपुण्यमूर्ते।
योगीश शाश्वत शरण्य भवाब्धिपोत
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम्॥ १॥

हे भगवन्! 'आप परम पुरुषार्थस्वरूप हैं' ऐसा समझकर जो निष्काम-भावसे निरन्तर आपका भजन करते हैं, उन श्रेष्ठ भक्तोंके लिये राज्यादि भोगोंकी अपेक्षा पुरुषार्थस्वरूप आपके चरणकमलोंकी प्राप्ति ही भजनका यथार्थ फल है। यद्यपि यही ठीक है तो भी गौ जैसे अपने तुरंतके जन्मे हुए बछड़ेको दूध पिलाती और व्याघ्रादिसे बचाती है, उसी प्रकार भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये सदा विकल रहनेवाले आप हम-जैसे सकाम भक्तोंको भी हमारी कामना पूर्ण करके संसारसागरसे बचाते हैं॥ १२॥

हे अति शोभायमान क्षीरसमुद्रमें निवास करनेवाले, हाथमें चक्र धारण

ब्रह्मेन्द्ररुद्रमरुदर्ककिरीटकोटि-
सङ्घट्टिताङ्घ्रिकमलामलकान्तिकान्त।
लक्ष्मीलसत्कुचसरोरुहराजहंस ।लक्ष्मी०॥ २॥

संसारघोरगहने चरतो मुरारे
मारोग्रभीकरमृगप्रवरार्दितस्य।
आर्तस्य मत्सरनिदाघनिपीडितस्य।लक्ष्मी०॥ ३॥

संसारकूपमतिघोरमगाधमूलं
सम्प्राप्य दुःखशतसर्पसमाकुलस्य।
दीनस्य देव कृपणापदमागतस्य।लक्ष्मी०॥ ४॥

करनेवाले, नागनाथ (शेषजी) के फणोंकी मणियोंसे देदीप्यमान मनोहर मूर्तिवाले! हे योगीश! हे सनातन! हे शरणागतवत्सल! हे संसारसागरके लिये नौकास्वरूप! श्रीलक्ष्मीनृसिंह! मुझे अपने करकमलका सहारा दीजिये॥ १॥ आपके अमल चरणकमल ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, मरुत् और सूर्य आदिके किरीटोंकी कोटियोंके समूहसे अति देदीप्यमान हो रहे हैं। हे श्रीलक्ष्मीजीके कुचकमलके राजहंस श्रीलक्ष्मीनृसिंह! मुझे अपने करकमलका सहारा दीजिये॥ २॥ हे मुरारे! संसाररूप गहन वनमें विचरते हुए कामदेवरूप अति उग्र और भयानक मृगराजसे पीड़ित तथा मत्सररूप घामसे सन्तप्त अति आर्तको हे लक्ष्मीनृसिंह! अपने करकमलका सहारा दीजिये॥ ३॥ संसाररूप अति भयानक और अगाध कूपके मूलमें पहुँचकर जो सैकड़ों प्रकारके दुःखरूप सर्पोंसे व्याकुल और अत्यन्त दीन हो रहा है, उस अति कृपण और आपत्तिग्रस्त मुझको हे लक्ष्मीनृसिंहदेव! अपने करकमलका सहारा दीजिये॥ ४॥

संसारसागरविशालकरालकाल-
नक्रग्रहग्रसननिग्रहविग्रहस्य।
व्यग्रस्य रागरसनोर्मिनिपीडितस्य। लक्ष्मी० ॥ ५ ॥

संसारवृक्षमघबीजमनन्तकर्म-
शाखाशतं करणपत्रमनङ्गपुष्पम्।
आरुह्य दु:खफलितं पततो दयालो। लक्ष्मी० ॥ ६ ॥

संसारसर्पघनवक्त्रभयोग्रतीव्र-
दंष्ट्राकरालविषदग्धविनष्टमूर्तेः।
नागारिवाहन सुधाब्धिनिवास शौरे। लक्ष्मी० ॥ ७ ॥

संसारदावदहनातुरभीकरोरु-
ज्वालावलीभिरतिदग्धतनूरुहस्य।
त्वत्पादपद्मसरसीशरणागतस्य। लक्ष्मी० ॥ ८ ॥

संसारसागरमें अति कराल और महान् कालरूप नक्रों और ग्राहोंके ग्रसनेसे जिसका शरीर निगृहीत हो रहा है तथा आसक्ति और रसनारूप तरंगमालासे जो अति पीड़ित है, ऐसे मुझको हे लक्ष्मीनृसिंह! अपने करकमलका सहारा दीजिये॥ ५॥ हे दयालो! पाप जिसका बीज है, अनन्त कर्म सैकड़ों शाखाएँ हैं, इन्द्रियाँ पत्ते हैं, कामदेव पुष्प है तथा दु:ख ही जिसका फल है, ऐसे संसाररूप वृक्षपर चढ़कर मैं नीचे गिर रहा हूँ, ऐसे मुझको हे लक्ष्मीनृसिंह! अपने करकमलका सहारा दीजिये॥ ६॥ इस संसारसर्पके विकट मुखकी भयरूप उग्र दाढ़ोंके कराल विषसे दग्ध होकर नष्ट हुए मुझको हे गरुडवाहन, क्षीरसागरशायी, शौरि श्रीलक्ष्मीनृसिंह! आप अपने करकमलका सहारा दीजिये॥ ७॥ संसाररूप दावानलके दाहसे अति आतुर और उसकी भयंकर

संसारजालपतितस्य जगन्निवास
सर्वेन्द्रियार्तबडिशार्थझषोपमस्य।
प्रोत्खण्डितप्रचुरतालुकमस्तकस्य ।लक्ष्मी०॥ ९ ॥

संसारभीकरकरीन्द्रकराभिघात-
निष्पिष्टमर्मवपुषः सकलार्तिनाश।
प्राणप्रयाणभवभीतिसमाकुलस्य ।लक्ष्मी०॥ १०॥

अन्धस्य मे हृतविवेकमहाधनस्य
चोरैः प्रभो बलिभिरिन्द्रियनामधेयैः।
मोहान्धकूपकुहरे विनिपातितस्य।लक्ष्मी०॥ ११॥

तथा विशाल ज्वाला-मालाओंसे जिसके रोम-रोम दग्ध हो रहे हैं तथा जिसने आपके चरण-कमलरूप सरोवरकी शरण ली है, ऐसे मुझको हे लक्ष्मीनृसिंह! अपने करकमलका सहारा दीजिये॥ ८॥ हे जगन्निवास! सकल इन्द्रियोंके विषयरूप बंसी [उसमें फँसने] के लिये मत्स्यके समान संसारपाशमें पड़कर जिसके तालु और मस्तक खण्डित हो गये हैं, ऐसे मुझको हे लक्ष्मीनृसिंह! अपने करकमलका सहारा दीजिये॥ ९॥ हे सकलार्तिनाशन! संसाररूप भयानक गजराजकी सूँड़के आघातसे जिसके मर्मस्थान कुचल गये हैं तथा जो प्राणप्रयाणके सदृश संसार (जन्म-मरण)के भयसे अति व्याकुल है, ऐसे मुझको हे लक्ष्मीनृसिंह! अपने करकमलका सहारा दीजिये॥ १०॥ हे प्रभो! इन्द्रिय नामक प्रबल चोरोंने जिसके विवेकरूप परम धनको हर लिया है तथा मोहरूप अन्धकूपके गड्ढेमें जो गिरा दिया गया है, ऐसे मुझ अन्धको हे लक्ष्मीनृसिंह! आप अपने करकमलका सहारा दीजिये॥ ११॥

लक्ष्मीपते कमलनाभ सुरेश विष्णो
वैकुण्ठ कृष्ण मधुसूदन पुष्कराक्ष।
ब्रह्मण्य केशव जनार्दन वासुदेव
देवेश देहि कृपणस्य करावलम्बम्॥ १२॥
यन्माययोर्जितवपुःप्रचुरप्रवाह-
मग्नार्थमत्र निवहोरुकरावलम्बम्।
लक्ष्मीनृसिंहचरणाब्जमधुव्रतेन
स्तोत्रं कृतं सुखकरं भुवि शङ्करेण॥ १३॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं श्रीलक्ष्मीनृसिंहस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

३६—प्रह्लादकृतनृसिंहस्तोत्रम्

प्रह्लाद उवाच

ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः
सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः।

हे लक्ष्मीपते! हे कमलनाभ! हे देवेश्वर! हे विष्णो! हे वैकुण्ठ! हे कृष्ण! हे मधुसूदन! हे कमलनयन! हे ब्रह्मण्य! हे केशव! हे जनार्दन! हे वासुदेव! हे देवेश! मुझ दीनको आप अपने करकमलका सहारा दीजिये॥ १२॥ जिसका स्वरूप मायासे ही प्रकट हुआ है उस प्रचुर संसारप्रवाहमें डूबे हुए पुरुषोंके लिये जो इस लोकमें अति बलवान् करावलम्बरूप है ऐसा यह सुखप्रद स्तोत्र इस पृथ्वीतलपर लक्ष्मीनृसिंहके चरणकमलके लिये मधुकररूप शंकर (शंकराचार्यजी) ने रचा है॥ १३॥

प्रह्लादजी बोले—जिनकी बुद्धि एकमात्र सत्त्वगुणमें ही स्थित है, वे ब्रह्मादि देवगण तथा मुनि और सिद्धगण भी अपने वचनोंके प्रवाहसे, अनन्त

नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः
किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ॥ १ ॥

मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुतौज-
स्तेजःप्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो
भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय ॥ २ ॥

विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥ ३ ॥

नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो
मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते।

गुणोंके कारण अभीतक जिनकी आराधना नहीं कर सके, वे भगवान् हरि मुझ उग्रजातिमें उत्पन्न हुए दैत्यपर कैसे सन्तुष्ट हो सकते हैं ?॥ १ ॥ मेरा तो ऐसा विचार है कि धन, कुलीनता, रूप, तप, विद्या, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि और योग—ये सभी गुण परम पुरुष श्रीहरिकी आराधनाके साधक नहीं हो सकते; और भक्तिसे तो वे गजेन्द्रपर भी प्रसन्न हो गये थे॥ २ ॥ जो ब्राह्मण उपर्युक्त बारह गुणोंसे युक्त है, किन्तु भगवान् कमलनाभके चरणकमलोंसे विमुख है उससे तो मैं उस चाण्डालको श्रेष्ठ समझता हूँ जिसने अपने मन, वचन, कर्म, धन और प्राण श्रीहरिमें लगा रखे हैं; वह अपने कुलको पवित्र कर देता है किन्तु अधिक सम्मानशाली ब्राह्मण वैसा नहीं कर सकता॥ ३ ॥ (इससे यह न समझना चाहिये कि भगवान्‌को

यद्यज्जनो भगवते विदधीत मानं
तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः॥ ४॥

तस्मादहं विगतविक्लव ईश्वरस्य
सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम्।
नीचोऽजया गुणविसर्गमनुप्रविष्टः
पूयेत येन हि पुमाननुवर्णितेन॥ ५॥

सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्त्वधाम्नो
ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजन्तः।
क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य
विक्रीडितं भगवतो रुचिरावतारैः॥ ६॥

पूजाकी आवश्यकता है) भगवान् तो आत्मलाभसे ही पूर्ण हैं, वे क्षुद्र पुरुषोंसे अपना मान कराना नहीं चाहते। केवल करुणावश ही वे अपने भक्तोंद्वारा की हुई परिचर्याको स्वीकार कर लेते हैं, (इससे भी उन उपासकोंका ही लाभ है) क्योंकि जिस प्रकार अपने मुखकी शोभा (दर्पणादिमें प्रतीत होनेवाली) प्रतिबिम्बको भी सुशोभित करती है, उसी प्रकार भक्त भगवान्के प्रति जो-जो मान प्रदर्शित करता है, वह (भगवत्प्रतिबिम्बरूप) उसे ही प्राप्त होता है॥ ४॥ अतः यद्यपि मैं नीच हूँ तो भी निःशंक होकर अपने बुद्धिके अनुसार सब प्रकार उन ईश्वरकी महिमाका वर्णन करता हूँ जिसका वर्णन करनेसे, अविद्यावश संसारचक्रमें पड़ा हुआ जीव तत्काल पवित्र हो जाता है॥ ५॥ हे ईश! ये ब्रह्मादिक समस्त देवगण सत्त्वस्वरूप आपकी आज्ञाका अनुवर्तन करनेवाले हैं; हम दैत्योंकी भाँति आपसे द्वेष करनेवाले नहीं हैं, और हे भगवन्! अपने मनोहर अवतारोंद्वारा आप जो-जो लीलाएँ करते हैं वे भी जगत्के कल्याण, उद्भव तथा आत्मानन्दके लिये ही होती हैं॥ ६॥

तद्यच्छ मन्युमसुरश्च हतस्त्वयाद्य
मोदेत साधुरपि वृश्चिकसर्पहत्या।
लोकाश्च निर्वृतिमिताः प्रतियन्ति सर्वे
रूपं नृसिंह विभयाय जनाः स्मरन्ति॥ ७॥
नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्य-
जिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात्।
आन्त्रस्त्रजः क्षतजकेसरशङ्कुकर्णा-
न्निर्ह्रादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात्॥ ८॥
त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्र-
संसारचक्रकदनाद्ग्रसतां प्रणीतः।
बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं
प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु॥ ९॥

अतः अब आप क्रोध शान्त कीजिये; क्योंकि असुरका संहार हो चुका। हे देव! सर्प और बिच्छू आदि दुःखदायी जीवोंके मारे जानेपर साधुजन भी आनन्द मानते हैं, अतः इस असुरके संहारसे आनन्दित हुए सब लोक आपका कोप शान्त होनेकी बाट देख रहे हैं। हे नृसिंह! भयसे मुक्त होनेके लिये मनुष्य आपके रूपका स्मरण करते हैं॥ ७॥ हे अजित! जिसमें अति भयानक मुख और जिह्वा, सूर्यके समान देदीप्यमान नेत्र, भृकुटिका वेग एवं उग्र दाढ़ें हैं, जो आँतोंकी माला, रक्ताक्त सटाकलाप एवं सीधे खड़े हुए कानोंसे युक्त है, जिसके सिंहनादने दिग्गजोंको भी भयभीत कर दिया है तथा जिसके नखाग्र शत्रुको विदीर्ण करनेवाले हैं, आपके उस भयंकर स्वरूपसे मुझे कुछ भी भय नहीं है॥ ८॥ हे दीनवत्सल! मैं तो अति उग्र और दुःसह संसारचक्रके

यस्मात्प्रियाप्रियवियोगसयोगजन्म-
शोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः।
दुःखौषधं तदपि दुःखमतद्धियाहं
भूमन् भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम्॥ १०॥

सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया
लीलाकथास्तव नृसिंह विरिञ्चगीताः।
अञ्जस्तितर्म्यनुगृणन् गुणविप्रमुक्तो
दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससङ्गः॥ ११॥

बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह
नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः।

दुःखसे भयभीत हो रहा हूँ, जहाँ मुझे कर्मोंने बाँधकर हिंस्र जीवोंके बीचमें डाल दिया है। हे श्रेष्ठतम! अब आप प्रसन्न होकर मुझे अपने मोक्षप्रद और शरणदायक चरणोंमें कब बुलायेंगे॥ ९॥ हे भूमन्! मैं सभी योनियोंमें प्रियके वियोग और अप्रियके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले शोकानलसे सन्तप्त होता रहा हूँ; उस दुःखकी जो (इष्टप्राप्तिरूप) ओषधि है वह भी दुःख ही है; अतः मैं देहादि अनात्मामें आत्मबुद्धिकर चिरकालसे भटक रहा हूँ सो आप मुझे अपने दास्यभावका उपदेश दीजिये॥ १०॥ हे नृसिंह! आप सबके प्रिय, सुहृद् और श्रेष्ठ देवतारूप हैं; आपके दासभावको प्राप्त होकर मैं, आपके चरणयुगलमें निवास करनेवाले ज्ञानियोंका सहवास करता हुआ गुणोंसे मुक्त हो ब्रह्माजीद्वारा कही हुई आपकी लीलाकथाओंको गाकर सुगमतासे ही संसारसे पार हो जाऊँगा॥ ११॥ हे नृसिंह! इस लोकमें सन्तप्त पुरुषोंकी दुःखनिवृत्तिका जो उपाय माना जाता है, आपके उपेक्षा करनेपर वह एक

तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्ट-
स्तावद्विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम्॥ १२॥

यस्मिन्यतो यर्हि येन च यस्य यस्मा-
द्यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा।
भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः
सञ्चोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम्॥ १३॥

माया मनः सृजति कर्ममयं बलीयः
कालेन चोदितगुणानुमतेन पुंसः।
छन्दोमयं यदजयार्पितषोडशारं
संसारचक्रमज कोऽतितरेत्त्वदन्यः॥ १४॥

क्षणके लिये ही होता है (कुछ स्थायी नहीं होता)। बालकके लिये माता-पिता, रोगीके लिये ओषधि और समुद्रमें डूबते हुएके लिये नौका सदा ही सहायक नहीं होते (उनके रहते हुए भी विपरीत फल होता देखा गया है)॥ १२॥ हे भगवन्! (ब्रह्मादि) पुरातन अथवा (उनसे प्रेरित माता-पितादि) अर्वाचीन कर्ता जिसमें जिससे जब जिसके द्वारा जिसका जिससे जिसके लिये जिस प्रकार जो कुछ बनाते अथवा बिगाड़ते हैं, वह सब भिन्न-भिन्न स्वभाववाला आपहीका रूप है॥ १३॥ हे प्रभो! पुरुषकी अनुमतिसे कालके द्वारा गुणोंमें क्षोभ होनेपर माया मनःप्रधान लिंगदेहकी रचना करती है जो अति बलवान्, कर्ममय, वैदिक कर्मकलापमें आसक्त तथा अविद्याद्वारा अर्पित (मन, दस इन्द्रिय और पंचतन्मात्रा—इन) सोलह विकारोंसे युक्त है; सो हे अजन्मा प्रभो! आपसे अलग रहनेवाला ऐसा कौन पुरुष है जो उस (मनरूप) संसारचक्रको पार कर सके॥ १४॥

स त्वं हि नित्यविजितात्मगुणः स्वधाम्ना
कालो वशीकृतविसृज्यविसर्गशक्तिः।
चक्रे विसृष्टमजयेश्वर षोडशारे
निष्पीड्यमानमुपकर्ष विभो प्रपन्नम्॥ १५॥

दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपाना-
मायुः श्रियो विभव इच्छति याञ्जनोऽयम्।
येऽस्मत्पितुः कुपितहासविजृम्भितभ्रू-
विस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः॥ १६॥

तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषो ज्ञ
आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरिञ्चात्।
नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण
कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम्॥ १७॥

हे प्रभो! आप अपनी चैतन्यशक्तिसे बुद्धिके समस्त गुणोंपर नित्य विजय प्राप्तकर कालरूपसे सम्पूर्ण साध्य और साधनको अपने वशमें रखनेवाले हैं, हे ईश्वर! मैं मायाद्वारा इस सोलह अरोंवाले संसारचक्रमें डाला जाकर (इक्षुदण्डके समान) पेरा जा रहा हूँ कृपया आप मुझ शरणागतको अपने समीप खींच लें॥ १५॥ हे विभो! संसारी लोग जिनकी इच्छा रखते हैं वे स्वर्गलोकमें मिलनेवाली सम्पूर्ण लोकपालोंकी आयु, लक्ष्मी और विभूतियाँ तो मैंने खूब देख लीं। वे तो हमारे पिताके क्रोधयुक्त हास्यद्वारा किये हुए भृकुटिविलाससे ही नष्ट हो गयी थीं और अब आपने उन्हें भी मार डाला॥ १६॥ अतः जीवोंके इन भोगादिके परिणामको जाननेवाला मैं ब्रह्माके भी आयु, वैभव और इन्द्रियसम्बन्धी भोगोंकी इच्छा नहीं करता; क्योंकि वे

कुत्राशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः
क्वेदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः।
निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान्
कामानलं मधुलवैः शमयन्दुरापैः॥ १८॥

क्वाहं रजःप्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मि-
ञ्जातः सुरेतरकुले क्व तवानुकम्पा।
न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया
यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरःप्रसादः॥ १९॥

नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्या-
ज्जन्तोर्यथाऽऽत्मसुहृदो जगतस्तथापि।
संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः
सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम्॥ २०॥

सभी परम पराक्रमी कालरूप परमेश्वरसे ग्रस्त हैं। अतः मुझे आप अपने दासोंके समीप ले चलिये॥ १७॥ अहो! कहाँ केवल सुननेमें सुखदायक मृगतृष्णारूप विषयभोग और कहाँ सम्पूर्ण रोगोंका उत्पत्ति-स्थान यह शरीर! किन्तु मनुष्य इनकी असारता और नाशवत्ताको जानकर भी, बड़ी कठिनतासे प्राप्त होनेवाले (भोगरूप) मधुकणोंसे अपनी भोगेच्छारूप अग्निको शान्त करनेकी चेष्टा करता है। इनसे विरक्त नहीं होता॥ १८॥ हे ईश! कहाँ तो इस तमःप्रधान असुरकुलमें रजोगुणसे उत्पन्न हुआ मैं? और कहाँ आपकी कृपा? अहो! जो अपना प्रसादस्वरूप (और सकलसन्तापहारी) करकमल आपने कभी ब्रह्मा, महादेव और लक्ष्मीके सिरपर भी नहीं रखा वही मेरे मस्तकपर रखा॥ १९॥ अन्य संसारी पुरुषोंके समान (ब्रह्मादिक और मेरे-जैसे

एवं जनं निपतितं प्रभवाहिकूपे
कामाभिकाममनु यः प्रपतन्प्रसङ्गात्।
कृत्वाऽऽत्मसात्सुरर्षिणा भगवन्गृहीतः
सोऽहं कथं नु विसृजे तव भृत्यसेवाम्॥ २१॥

मत्प्राणरक्षणमनन्त पितुर्वधश्च
मन्ये स्वभृत्यऋषिवाक्यमृतं विधातुम्।
खड्गं प्रगृह्य यदवोचदसद्विधित्सु-
स्त्वामीश्वरो मदपरोऽवतु कं हरामि॥ २२॥

एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत्त्व-
माद्यन्तयोः पृथगवस्यसि मध्यतश्च।

प्राणियोंमें) आपकी उत्तम-अधम बुद्धि नहीं हो सकती; क्योंकि आप सम्पूर्ण जगत्‌के आत्मा और सुहृद् हैं। (फिर भी आपकी कृपामें जो अन्तर देखा जाता है उसका कारण यही है कि) कल्पवृक्षके समान आपकी कृपा भी सेवासे ही प्राप्त होती है—सेवाके अनुसार ही आप कृपा करते हैं—कुछ ऊँच-नीच दृष्टिसे नहीं॥ २०॥ हे भगवन्! संसाररूप सर्पयुक्त कुएँमें पड़े हुए अन्य कामासक्त पुरुषोंके साथ मैं भी उसीमें गिरा जा रहा था। उस समय देवर्षि नारदने मुझे अपना मानकर अनुगृहीत किया था। (उन्हींकी कृपासे आज मुझे आपके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त हुआ है) अतः मैं आपके दासोंकी सेवा किस प्रकार त्याग सकता हूँ ?॥ २१॥ हे अनन्त! मेरे पिताने अन्याय करनेकी इच्छासे हाथमें खड्ग लेकर जो कहा कि 'मुझसे अतिरिक्त यदि कोई ईश्वर है तो तेरी रक्षा करे—मैं तेरा सिर काटता हूँ', उस समय आपने जो मेरे प्राणोंकी रक्षा की और मेरे पिताका वध किया, वह भी अपने दास देवर्षि नारदके वचनोंको सत्य करनेके लिये ही था—ऐसा मैं मानता हूँ॥ २२॥ हे नाथ! यह

सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं निजमाययेदं
नानेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः॥ २३॥

त्वं वा इदं सदसदीश भवांस्ततोऽन्यो
माया यदात्मपरबुद्धिरियं ह्यपार्था।
यद्यस्य जन्म निधनं स्थितिरीक्षणं च
तद्वै तदेव वसुकालवदष्टितर्वोः॥ २४॥

न्यस्येदमात्मनि जगद्विलयाम्बुमध्ये
शेषेऽऽत्मना निजसुखानुभवो निरीहः।
योगेन मीलितदृगात्मनिपीतनिद्र-
स्तुर्ये स्थितो न तु तमो न गुणांश्च युङ्क्षे॥ २५॥

सम्पूर्ण जगत् एकमात्र आप ही हैं, क्योंकि (सत्स्वरूप होनेके कारण) इसके आदि और अन्तमें (कारण और अवधिरूपसे) आप ही अवशिष्ट रहते हैं तथा मध्यमें (अधिष्ठानरूपसे) आप ही स्थित हैं। आप ही अपनी मायासे गुणोंके परिणामरूप इस जगत्को रचकर इसमें अनुप्रविष्ट हो उन गुणोंके (सृष्टि-प्रलय आदि) व्यापारोंसे जगत्के स्रष्टा, रक्षक और संहारक आदि भिन्न-भिन्न रूपोंसे प्रतीत होते हैं॥ २३॥ हे ईश! यह सत् (कार्य), असत् (कारण) रूप सम्पूर्ण जगत् आप ही हैं, किन्तु आप (इसके आदि और अन्तमें भी वर्तमान रहनेके कारण) इससे भिन्न हैं। अतः 'यह मेरा है—यह पराया है' ऐसी निरर्थक बुद्धि माया ही है; क्योंकि जिसका जिससे जन्म, स्थिति, लय और प्रकाश होता है, वह तद्रूप ही होता है; अतः जिस प्रकार (कार्यरूप) वृक्ष और (कारणरूप) बीज दोनों ही गन्धतन्मात्रारूप हैं उसी प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् आप ही हैं॥ २४॥ हे प्रभो! आप इस निखिल प्रपंचको अपनेमें समेटकर आत्मसुखका अनुभव करते हुए निरीह होकर

तस्यैव ते वपुरिदं निजकालशक्त्या
सञ्चोदितप्रकृतिधर्मण आत्मगूढम्।
अम्भस्यनन्तशयनाद्विरमत्समाधे-
र्नाभेरभूत्स्वकणिकावटवन्महाब्जम्॥ २६॥

तत्सम्भवः कविरतोऽन्यदपश्यमान-
स्त्वां बीजमात्मनि ततं स्वबहिर्विचिन्त्य।
नाविन्ददब्दशतमप्सु निमज्जमानो
जातेऽङ्कुरे कथमु होपलभेत बीजम्॥ २७॥

स त्वात्मयोनिरतिविस्मित आस्थितोऽब्जं
कालेन तीव्रतपसा परिशुद्धभावः।

प्रलयकालीन जलमें शयन करते हैं। उस समय योगद्वारा बाह्य दृष्टि मूँदकर और आत्मस्वरूपके प्रकाशसे निद्राको जीतकर आप तुरीयपदमें स्थित रहते हैं—न तो तमोयुक्त ही होते हैं और न विषयोंके भोक्ता ही॥ २५॥ यह ब्रह्माण्ड, अपनी कालशक्तिसे प्रकृतिके गुणोंको प्रेरित करनेवाले उन्हीं आपका रूप है। पहले यह आपहीमें निहित था; जब प्रलयकालीन जलके भीतर शेषशय्यापर शयन करनेवाले आपने योगनिद्रारूप समाधिको त्यागा तो वटके बीजसे उत्पन्न हुए महावृक्षके समान आपकी नाभिसे अति विशाल ब्रह्माण्डकमल उत्पन्न हुआ॥ २६॥ उससे उत्पन्न हुए सूक्ष्मदर्शी ब्रह्माजीको जब उस कमलके अतिरिक्त और कुछ भी दिखायी न दिया तो अपनेमें व्याप्त बीजरूप आपको अपनेसे बाहर समझकर वे सौ वर्षतक जलके भीतर घुसकर ढूँढ़ते रहे, किन्तु उन्हें कुछ भी न मिला—सो ठीक ही है, क्योंकि अंकुर उत्पन्न हो जानेपर (उसमें व्याप्त हुए) बीजको कोई पुरुष पृथक् कैसे देख सकता है॥ २७॥ इससे आत्मयोनि श्रीब्रह्माजी अति विस्मित हो उस

त्वामात्मनीश भुवि गन्धमिवातिसूक्ष्मं
भूतेन्द्रियाशयमये विततं ददर्श॥ २८॥

एवं सहस्रवदनाङ्घ्रिशिरःकरोरु-
नासास्यकर्णनयनाभरणायुधाढ्यम्।
मायामयं सदुपलक्षितसन्निवेशं
दृष्ट्वा महापुरुषमाप मुदं विरिञ्चः॥ २९॥

तस्मै भवान् हयशिरस्तनुवं च बिभ्रद्
वेदद्रुहावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ।
हत्वाऽऽनयच्छ्रुतिगणांस्तु रजस्तमश्च
सत्त्वं तव प्रियतमां तनुमामनन्ति॥ ३०॥

इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारै-
र्लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान्।

कमलपर बैठ गये। हे ईश! फिर बहुत समयतक तीव्र तपस्याद्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो जानेपर उन्हें, पृथ्वीमें व्याप्त अति सूक्ष्म गन्धतन्मात्राके समान भूत, इन्द्रिय और अन्तःकरणरूप अपने शरीरमें व्याप्त हुए आपका साक्षात्कार हुआ॥ २८॥ इस प्रकार सहस्रों वदन, चरण, सिर, हाथ, ऊरु, नासिका, मुख, कर्ण, नयन, आभूषण और आयुधोंसे सम्पन्न चौदह लोकरूप अवयवोंसे विभूषित आप मायामय विराट् पुरुषका दर्शनकर ब्रह्माजीको परमानन्द प्राप्त हुआ॥ २९॥ तब आपने हयग्रीवरूप धारणकर अति प्रबल और वेदद्रोही रजोगुण-तमोगुणरूप मधु और कैटभ नामक दो दैत्योंको मारकर उन ब्रह्माजीको सत्त्वगुणरूप समस्त वेद समर्पण किये। अतः सत्त्वगुणको ही आपका प्रियतम रूप कहा जाता है॥ ३०॥ हे परमपुरुष! इस प्रकार आप

धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं
छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम्॥ ३१॥
नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ
सम्प्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम्।
कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं
तस्मिन् कथं तव गतिं विमृशामि दीनः॥ ३२॥
जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति मावितृप्ता
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित्।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्ति-
र्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति॥ ३३॥
एवं स्वकर्मपतितं भववैतरण्या-
मन्योन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम्।

मनुष्य, तिर्यक्, ऋषि, देवता और मत्स्यादि अवतार लेकर सम्पूर्ण लोकोंका पालन और जगद्द्रोहियोंका संहार करते हैं। उन अवतारोंद्वारा आप प्रत्येक युगके धर्मोंकी रक्षा करते हैं, किन्तु कलियुगमें (अवतार न लेकर) गुप्तरूपसे ही रहते हैं; इसीलिये आप 'त्रियुग' नामसे भी प्रसिद्ध हैं॥ ३१॥ हे विकुण्ठनाथ! यह मेरा मन अति असाधु, दोषदूषित, कामातुर तथा हर्ष, शोक, भय और त्रिविध एषणाओंसे व्याकुल है, आपकी कथाओंमें इसकी प्रीति ही नहीं है। मैं दीन ऐसे कलुषित चित्तमें किस प्रकार आपके स्वरूपका चिन्तन करूँ॥ ३२॥ हे अच्युत! जिस प्रकार बहुत-सी सपत्नियाँ (सौतें) अपने स्वामीको अपनी-अपनी ओर खींचती हैं उसी प्रकार मुझे अतृप्त रसना एक ओर, उपस्थ दूसरी ओर, त्वचा, उदर एवं कर्ण किसी तीसरी ओर, घ्राण और चंचल नयन किसी और तरफ तथा कर्मेन्द्रियाँ और ही स्थानकी ओर खींचती हैं॥ ३३॥ इस संसाररूप वैतरणीमें

पश्यञ्जनं स्वपरविग्रहवैरमैत्रं
हन्तेति पारचर पीपृहि मूढमद्य॥ ३४॥

को न्वत्र तेऽखिलगुरो भगवन् प्रयास
उत्तारणेऽस्य भवसम्भवलोपहेतोः।
मूढेषु वै महदनुग्रह आर्तबन्धो
किं तेन ते प्रियजनाननुसेवतां नः॥ ३५॥

नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्या-
स्त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः।
शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थ-
मायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान्॥ ३६॥

अपने कर्मोंके कारण पड़कर एक-दूसरेके जन्म, मरण एवं खान-पानादिसे अत्यन्त भयभीत तथा अपने और पराये पुरुषोंसे मित्रता एवं द्वेष करनेवाले मूढ़ जनसमुदायका हे पार लगानेवाले! आप अब पालन कीजिये॥ ३४॥ हे अखिलगुरो! आप सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और पालन करनेवाले हैं। हे भगवन्! इन सबको पार लगाना आपके लिये ऐसी क्या प्रयासकी बात है? हे दीनबन्धो! महापुरुषोंकी कृपा तो मूढ़ोंपर ही होनी चाहिये; आपके प्रिय दासोंकी सेवा करनेवाले हमलोगोंके लिये उसका ऐसा क्या प्रयोजन है? (हम तो उनकी सेवासे ही तर जायँगे)॥ ३५॥ हे प्रभो! जिसका पार करना दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है उस संसाररूप वैतरणीसे मुझे कुछ भी भय नहीं है, क्योंकि मेरा चित्त आपके पौरुषगानरूप परमामृतका पान करके मग्न रहता है, मुझे तो उन्हींकी चिन्ता है जो मूढ़ उससे विमुख रहकर इन्द्रियोंके विषयोंसे प्राप्त होनेवाले मायिक सुखके लिये कुटुम्बपोषणादिका भार वहन

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा
मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः।
नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एको
नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये॥ ३७॥

यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं
कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम्।
तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः
कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः॥ ३८॥

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म-
व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः।

करते रहते हैं॥ ३६॥ हे देव! मुनिजन प्रायः अपनी ही मुक्तिकी इच्छासे एकान्तमें रहकर मौनव्रत धारण कर लेते हैं, वे दूसरेके हितमें तत्पर नहीं होते। किन्तु मुझे इन गरीबोंको छोड़कर अकेले ही मुक्त होनेकी इच्छा नहीं है और संसारमें भटकनेवाले इन लोगोंके लिये आपके सिवा और कोई मुझे उद्धार करनेवाला भी दिखायी नहीं देता॥ ३७॥ हे प्रभो! मैथुनादि जो गृहस्थीके सुख हैं वे खुजलीके समान हैं। जिस प्रकार हाथोंसे खुजलानेपर खुजलीमें (पहले कुछ चैन पड़नेपर भी फिर) अधिकाधिक दुःख ही बढ़ता है, उसी प्रकार ये भोग भी अत्यन्त तुच्छ हैं। किन्तु अनेकों दुःख उठानेपर भी ये दीनजन इनसे तृप्त नहीं होते। कोई धीर पुरुष ही खुजलीके समान कामादि वेगोंको सहन करता है॥ ३८॥ हे परमपुरुष! मौन, ब्रह्मचर्य, शास्त्रश्रवण, तप, वेदाध्ययन, स्वधर्मपालन, शास्त्रोंकी व्याख्या करना, एकान्तसेवन, जप और समाधि—

प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां
वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम्॥ ३९॥
रूपे इमे सदसती तव वेदसृष्टे
बीजाङ्कुराविव न चान्यदरूपकस्य।
युक्ताः समक्षमुभयत्र विचिन्वते त्वां
योगेन वह्निमिव दारुषु नान्यतः स्यात्॥ ४०॥
त्वं वायुरग्निरवनिर्वियदम्बुमात्राः
प्राणेन्द्रियाणि हृदयं चिदनुग्रहश्च।
सर्वं त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमन्
नान्यत् त्वदस्त्यपि मनोवचसा निरुक्तम्॥ ४१॥
नैते गुणा न गुणिनो महदादयो ये
सर्वे मनःप्रभृतयः सहदेवमर्त्याः।

ये जो मोक्षके दस साधन हैं वे भी प्रायः अजितेन्द्रिय पुरुषोंकी जीविकाके साधन बन जाते हैं; तथा दाम्भिकोंके लिये तो वे कभी जीविकाके साधन रहते भी हैं और कभी (दम्भ खुल जानेपर) नहीं भी रहते॥ ३९॥ वेदने बीज और अंकुरके समान कार्य और कारण—ये आपके दो रूप बतलाये हैं। वास्तवमें आप रूपरहित हैं; परन्तु इन्हें छोड़कर आपके ज्ञानका और कोई साधन भी नहीं है। योगीजन काष्ठमें निहित अग्निके समान भक्तियोगद्वारा इन (कार्य और कारण) दोनोंहीमें आपका साक्षात्कार करते हैं; क्योंकि आपके सिवा इनकी पृथक् कोई सत्ता नहीं है॥ ४०॥ हे भूमन्! वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल, पंचतन्मात्रा, प्राण, इन्द्रिय, मन, चित्त, अहंकार तथा स्थूल-सूक्ष्म सम्पूर्ण जगत् एकमात्र आप ही हैं। अधिक क्या, जितने भी पदार्थ मन या वाणीके विषय हैं उनमेंसे कोई भी आपसे पृथक् नहीं हैं॥ ४१॥ किन्तु हे महाकीर्ते!

आद्यन्तवन्त उरुगाय विदन्ति हि त्वा-
मेवं विमृश्य सुधियो विरमन्ति शब्दात्॥ ४२॥
तत् तेऽर्हत्तम नमःस्तुतिकर्मपूजाः
कर्म स्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम्।
संसेवया त्वयि विनेति षडङ्गया किं
भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत॥ ४३॥

नारद उवाच

एतावद्वर्णितगुणो भक्त्या भक्तेन निर्गुणः।
प्रह्लादं प्रणतं प्रीतो यतमन्युरभाषत॥ ४४॥

श्रीभगवानुवाच

प्रह्लाद भद्र भद्रं ते प्रीतोऽहं तेऽसुरोत्तम।
वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम्॥ ४५॥

ये सत्त्वादि गुण, गुणोंके परिणाम महत्तत्त्वादि तथा देवता और मनुष्योंके सहित मन-बुद्धि आदि कोई भी आपको नहीं जानते; क्योंकि सभी आदि-अन्तयुक्त हैं। आप ऐसे हैं—यह जानकर पण्डितजन शब्दतः आपका प्रतिपादन करनेसे उपरत हो जाते हैं॥ ४२॥ हे पूज्यतम! प्रणाम, स्तुति, सर्वकर्मार्पण, उपासना, चरणोंका ध्यान तथा कथाश्रवण—इन छः अंगोंके सहित आपकी भली प्रकार सेवा किये बिना मनुष्यको केवल परमहंसोंको ही प्राप्त होनेवाले आपमें किस प्रकार भक्ति हो सकती है? (अतः आपकी भक्ति प्राप्त हो—इसलिये मुझे अपना दास्यभाव ही प्रदान कीजिये)॥ ४३॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! भक्त प्रह्लादद्वारा इस प्रकार भक्तिपूर्वक गुणोंका वर्णन किया जानेपर उन निर्गुण भगवान्का क्रोध शान्त हो गया और वे विनयसम्पन्न प्रह्लादजीसे प्रसन्न होकर बोले॥ ४४॥ श्रीभगवान्ने कहा—भद्र प्रह्लाद! तुम्हारा शुभ

मामप्रीणत आयुष्मन् दर्शनं दुर्लभं हि मे।
दृष्ट्वा मां न पुनर्जन्तुरात्मानं तप्तुमर्हति॥ ४६॥
प्रीणन्ति ह्यथ मां धीराः सर्वभावेन साधवः।
श्रेयस्कामा महाभागाः सर्वासामाशिषां पतिम्॥ ४७॥
एवं प्रलोभ्यमानोऽपि वरैर्लोकप्रलोभनैः।
एकान्तित्वाद् भगवति नैच्छत् तानसुरोत्तमः॥ ४८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे नवमेऽध्याये प्रह्लादकृतनृसिंहस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

हो। हे असुरश्रेष्ठ! मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे इच्छित वर माँगो, मैं मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण कर देता हूँ॥ ४५॥ हे आयुष्मन्! जो व्यक्ति मुझे प्रसन्न नहीं कर पाता उसे मेरा दर्शन मिलना अत्यन्त कठिन है। किन्तु जब मेरा दर्शन हो गया तब उसे किसी तरहका संताप नहीं करना पड़ता॥ ४६॥ मैं सकल शुभ इच्छाओंको पूर्ण करनेवाला हूँ, इसलिये जितेन्द्रिय और अपना कल्याण चाहनेवाले महाभाग साधुजन सब प्रकार मुझे प्रसन्न करनेका प्रयत्न करते हैं॥ ४७॥ इस प्रकार सम्पूर्ण लोकोंको प्रलोभित करनेवाले वरोंका लोभ दिखानेपर भी असुरश्रेष्ठ प्रह्लादने उनकी इच्छा नहीं की, क्योंकि वे भगवान्‌के अनन्य भक्त थे॥ ४८॥

ॐ

रामस्तोत्राणि

३७—श्रीरामरक्षास्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीरामरक्षास्तोत्रमन्त्रस्य बुधकौशिक ऋषिः श्रीसीतारामचन्द्रो देवता अनुष्टुप्छन्दः सीता शक्तिः श्रीमान् हनुमान् कीलकं श्रीरामचन्द्रप्रीत्यर्थे रामरक्षास्तोत्रजपे विनियोगः।

अथ ध्यानम्

ध्यायेदाजानुबाहुं धृतशरधनुषं बद्धपद्मासनस्थं
पीतं वासो वसानं नवकमलदलस्पर्धिनेत्रं प्रसन्नम्।
वामाङ्कारूढसीतामुखकमलमिलल्लोचनं नीरदाभं
नानालङ्कारदीप्तं दधतमुरुजटामण्डलं रामचन्द्रम्॥

इस रामरक्षास्तोत्र-मन्त्रके बुधकौशिक ऋषि हैं। सीता और रामचन्द्र देवता हैं, अनुष्टुप् छन्द है, सीता शक्ति हैं, श्रीमान् हनुमान्जी कीलक हैं तथा श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके लिये रामरक्षास्तोत्रके जपमें विनियोग किया जाता है।

ध्यान—जो धनुष-बाण धारण किये हुए हैं, बद्धपद्मासनसे विराजमान हैं, पीताम्बर पहने हुए हैं, जिनके प्रसन्न नयन नूतन कमलदलसे स्पर्धा करते तथा वामभागमें विराजमान श्रीसीताजीके मुखकमलसे मिले हुए हैं उन आजानुबाहु, मेघश्याम, नाना प्रकारके अलंकारोंसे विभूषित तथा विशाल जटाजूटधारी श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करे।

स्तोत्रम्

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥ १॥
ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं रामं राजीवलोचनम्।
जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डितम्॥ २॥
सासितूणधनुर्बाणपाणिं नक्तंचरान्तकम्।
स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम्॥ ३॥
रामरक्षां पठेत्प्राज्ञः पापघ्नीं सर्वकामदाम्।
शिरो मे राघवः पातु भालं दशरथात्मजः॥ ४॥
कौसल्येयो दृशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुती।
घ्राणं पातु मखत्राता मुखं सौमित्रिवत्सलः॥ ५॥
जिह्वां विद्यानिधिः पातु कण्ठं भरतवन्दितः।
स्कन्धौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः॥ ६॥

श्रीरघुनाथजीका चरित्र सौ करोड़ विस्तारवाला है और उसका एक-एक अक्षर भी मनुष्योंके महान् पापोंको नष्ट करनेवाला है॥ १॥ जो नीलकमलदलके समान श्यामवर्ण, कमलनयन, जटाओंके मुकुटसे सुशोभित, हाथोंमें खड्ग, तूणीर, धनुष और बाण धारण करनेवाले, राक्षसोंके संहारकारी तथा संसारकी रक्षाके लिये अपनी लीलासे ही अवतीर्ण हुए हैं, उन अजन्मा और सर्वव्यापक भगवान् रामका जानकी और लक्ष्मणजीके सहित स्मरणकर प्राज्ञ पुरुष इस सर्वकामप्रदा और पापविनाशिनी रामरक्षाका पाठ करे। मेरे सिरकी राघव और ललाटकी दशरथात्मज रक्षा करें॥ २—४॥ कौसल्यानन्दन नेत्रोंकी रक्षा करें, विश्वामित्रप्रिय कानोंको सुरक्षित रखें तथा यज्ञरक्षक घ्राणकी और सौमित्रिवत्सल मुखकी रक्षा करें॥ ५॥ मेरी जिह्वाकी विद्यानिधि, कण्ठकी भरतवन्दित, कन्धोंकी दिव्यायुध और भुजाओंकी

करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित्।
मध्यं पातु खरध्वंसी नाभिं जाम्बवदाश्रयः॥ ७ ॥

सुग्रीवेशः कटी पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः।
ऊरू रघूत्तमः पातु रक्षःकुलविनाशकृत्॥ ८ ॥

जानुनी सेतुकृत्पातु जङ्घे दशमुखान्तकः।
पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपुः॥ ९ ॥

एतां रामबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत्।
स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत्॥ १० ॥

पातालभूतलव्योमचारिणश्छद्मचारिणः।
न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः॥ ११ ॥

भग्नेशकार्मुक (महादेवजीका धनुष तोड़नेवाले) रक्षा करें॥ ६॥ हाथोंकी सीतापति, हृदयकी जामदग्न्यजित् (परशुरामजीको जीतनेवाले), मध्यभागकी खरध्वंसी (खर नामके राक्षसका नाश करनेवाले) और नाभिकी जाम्बवदाश्रय (जाम्बवान्के आश्रयस्वरूप) रक्षा करें॥ ७॥ कमरकी सुग्रीवेश (सुग्रीवके स्वामी), सक्थियोंकी हनुमत्प्रभु और ऊरुओंकी राक्षसकुलविनाशक रघुश्रेष्ठ रक्षा करें॥ ८॥ जानुओंकी सेतुकृत् जंघाओंकी दशमुखान्तक (रावणको मारनेवाले), चरणोंकी विभीषणश्रीद (विभीषणको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले) और सम्पूर्ण शरीरकी श्रीराम रक्षा करें॥ ९॥ जो पुण्यवान् पुरुष रामबलसे सम्पन्न इस रक्षाका पाठ करता है वह दीर्घायु, सुखी, पुत्रवान्, विजयी और विनयसम्पन्न हो जाता है॥ १०॥ जो जीव पाताल, पृथ्वी अथवा आकाशमें विचरते हैं और जो छद्मवेशसे घूमते रहते हैं वे रामनामोंसे सुरक्षित पुरुषको देख भी नहीं सकते॥ ११॥

रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन्।
नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥ १२॥
जगज्जैत्रैकमन्त्रेण रामनाम्नाभिरक्षितम्।
यः कण्ठे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः॥ १३॥
वज्रपञ्जरनामेदं यो रामकवचं स्मरेत्।
अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमङ्गलम्॥ १४॥
आदिष्टवान्यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरः।
तथा लिखितवान्प्रातः प्रबुद्धो बुधकौशिकः॥ १५॥
आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सकलापदाम्।
अभिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान्स नः प्रभुः॥ १६॥
तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ।
पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ॥ १७॥

'राम', 'रामभद्र', 'रामचन्द्र' इन नामोंका स्मरण करनेसे मनुष्य पापोंसे लिप्त नहीं होता तथा भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ १२॥ जो पुरुष जगत्को विजय करनेवाले एकमात्र मन्त्र रामनामसे सुरक्षित इस स्तोत्रको कण्ठमें धारण करता है (अर्थात् इसे कण्ठस्थ कर लेता है) सम्पूर्ण सिद्धियाँ उसके हस्तगत हो जाती हैं॥ १३॥ जो मनुष्य वज्रपंजर नामक इस रामकवचका स्मरण करता है उसकी आज्ञाका कहीं उल्लंघन नहीं होता और उसे सर्वत्र जय और मंगलकी प्राप्ति होती है॥ १४॥ श्रीशंकरने रात्रिके समय स्वप्नमें इस रामरक्षाका जिस प्रकार आदेश दिया था उसी प्रकार प्रातःकाल जागनेपर, बुधकौशिकने इसे लिख दिया॥ १५॥ जो मानो कल्पवृक्षोंके बगीचे हैं तथा समस्त आपत्तियोंका अन्त करनेवाले हैं, जो तीनों लोकोंमें परम सुन्दर हैं वे श्रीमान् राम हमारे प्रभु हैं॥ १६॥ जो तरुण अवस्थावाले, रूपवान्, सुकुमार, महाबली, कमलके

फलमूलाशिनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ।
पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥ १८॥

शरण्यौ सर्वसत्त्वानां श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम्।
रक्षःकुलनिहन्तारौ त्रायेतां नो रघूत्तमौ॥ १९॥

आत्तसज्जधनुषाविषुस्पृशावक्षयाशुगनिषङ्गसङ्गिनौ।
रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावग्रतःपथि सदैव गच्छताम्॥ २०॥

सन्नद्धः कवची खड्गी चापबाणधरो युवा।
गच्छन्मनोरथान्नश्च रामः पातु सलक्ष्मणः॥ २१॥

रामो दाशरथिः शूरो लक्ष्मणानुचरो बली।
काकुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौसल्येयो रघूत्तमः॥ २२॥

समान विशाल नेत्रवाले, चीरवस्त्र और कृष्णमृगचर्मधारी, फल–मूल आहार करनेवाले, संयमी, तपस्वी, ब्रह्मचारी, सम्पूर्ण जीवोंको शरण देनेवाले, समस्त धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ और राक्षसकुलका नाश करनेवाले हैं वे रघुश्रेष्ठ दशरथकुमार राम और लक्ष्मण दोनों भाई हमारी रक्षा करें॥ १७—१९॥ जिन्होंने सन्धान किया हुआ धनुष ले रखा है, जो बाणका स्पर्श कर रहे हैं तथा अक्षय बाणोंसे युक्त तूणीर लिये हुए हैं वे राम और लक्ष्मण मेरी रक्षा करनेके लिये मार्गमें सदा ही मेरे आगे चलें॥ २०॥ सर्वदा उद्यत, कवचधारी, हाथमें खड्ग लिये, धनुष–बाण धारण किये तथा युवा अवस्थावाले भगवान् राम लक्ष्मणजीके सहित आगे–आगे चलकर हमारे मनोरथोंकी रक्षा करें॥ २१॥ (भगवान्का कथन है कि) राम, दाशरथि, शूर, लक्ष्मणानुचर, बली, काकुत्स्थ, पुरुष, पूर्ण, कौसल्येय, रघूत्तम,

वेदान्तवेद्यो यज्ञेशः पुराणपुरुषोत्तमः।
जानकीवल्लभः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः॥ २३॥

इत्येतानि जपन्नित्यं मद्भक्तः श्रद्धयान्वितः।
अश्वमेधाधिकं पुण्यं सम्प्राप्नोति न संशयः॥ २४॥

रामं दूर्वादलश्यामं पद्माक्षं पीतवाससम्।
स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यैर्न ते संसारिणो नराः॥ २५॥

रामं लक्ष्मणपूर्वजं रघुवरं सीतापतिं सुन्दरं
काकुत्स्थं करुणार्णवं गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्मिकम्।
राजेन्द्रं सत्यसन्धं दशरथतनयं श्यामलं शान्तमूर्तिं
वन्दे लोकाभिरामं रघुकुलतिलकं राघवं रावणारिम्॥ २६॥

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥ २७॥

वेदान्तवेद्य, यज्ञेश, पुरुषोत्तम, जानकीवल्लभ, श्रीमान् और अप्रमेयपराक्रम— इन नामोंका नित्यप्रति श्रद्धापूर्वक जप करनेसे मेरा भक्त अश्वमेध-यज्ञसे भी अधिक फल प्राप्त करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं॥ २२—२४॥ जो लोग दूर्वादलके समान श्यामवर्ण, कमलनयन, पीताम्बरधारी, भगवान् रामका इन दिव्य नामोंसे स्तवन करते हैं वे संसारचक्रमें नहीं पड़ते॥ २५॥ लक्ष्मणजीके पूर्वज, रघुकुलमें श्रेष्ठ, सीताजीके स्वामी, अति सुन्दर, ककुत्स्थकुलनन्दन, करुणासागर, गुणनिधान, ब्राह्मणभक्त, परम धार्मिक, राजराजेश्वर, सत्यनिष्ठ, दशरथपुत्र, श्याम और शान्तमूर्ति, सम्पूर्ण लोकोंमें सुन्दर, रघुकुलतिलक, राघव और रावणारि भगवान् रामकी मैं वन्दना करता हूँ॥ २६॥ राम, रामभद्र, रामचन्द्र, विधातृस्वरूप, रघुनाथ प्रभु सीतापतिको नमस्कार है॥ २७॥

श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम
श्रीराम राम भरताग्रज राम राम।
श्रीराम राम रणकर्कश राम राम
श्रीराम राम शरणं भव राम राम॥ २८॥
श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि
श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि
श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये॥ २९॥
माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः
स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालु-
र्नान्यं जाने नैव जाने न जाने॥ ३०॥
दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम्॥ ३१॥

हे रघुनन्दन श्रीराम! हे भरताग्रज भगवान् राम! हे रणधीर प्रभु राम! आप मेरे आश्रय होइये॥ २८॥ मैं श्रीरामचन्द्रके चरणोंका मनसे स्मरण करता हूँ, श्रीरामचन्द्रके चरणोंका वाणीसे कीर्तन करता हूँ, श्रीरामचन्द्रके चरणोंको सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ तथा श्रीरामचन्द्रके चरणोंकी शरण लेता हूँ।॥ २९॥ राम मेरी माता हैं, राम मेरे पिता हैं, राम स्वामी हैं और राम ही मेरे सखा हैं। दयामय रामचन्द्र ही मेरे सर्वस्व हैं; उनके सिवा और किसीको मैं नहीं जानता—बिलकुल नहीं जानता॥ ३०॥ जिनकी दायीं ओर लक्ष्मणजी, बायीं ओर जानकीजी और सामने हनुमान्‌जी विराजमान हैं उन रघुनाथजीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ३१॥

लोकाभिरामं रणरङ्गधीरं
राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम्।
कारुण्यरूपं करुणाकरं तं
श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये॥ ३२॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये॥ ३३॥

कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥ ३४॥
आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥ ३५॥
भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम्।
तर्जनं यमदूतानां रामरामेति गर्जनम्॥ ३६॥

जो सम्पूर्ण लोकोंमें सुन्दर, रणक्रीडामें धीर, कमलनयन, रघुवंशनायक, करुणामूर्ति और करुणाके भण्डार हैं उन श्रीरामचन्द्रजीकी मैं शरण लेता हूँ॥ ३२॥ जिनकी मनके समान गति और वायुके समान वेग है, जो परम जितेन्द्रिय और बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं उन पवननन्दन वानराग्रगण्य श्रीरामदूतकी मैं शरण लेता हूँ॥ ३३॥ कवितामयी डालीपर बैठकर मधुर अक्षरोंवाले 'राम-राम' इस मधुर नामको कूजते हुए वाल्मीकिरूप कोकिलकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ३४॥ आपत्तियोंको हरनेवाले तथा सब प्रकारकी सम्पत्ति प्रदान करनेवाले लोकाभिराम भगवान् रामको बारंबार नमस्कार करता हूँ॥ ३५॥ 'राम-राम' ऐसा घोष करना सम्पूर्ण संसारबीजोंको भून डालनेवाला, समस्त

रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः।
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर॥ ३७॥
राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्त्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥ ३८॥

इति श्रीबुधकौशिकमुनिविरचितं श्रीरामरक्षास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

३८—श्रीब्रह्मदेवकृता श्रीरामस्तुतिः

वन्दे देवं विष्णुमशेषस्थितिहेतुं
त्वामध्यात्मज्ञानिभिरन्तर्हृदि भाव्यम्।
हेयाहेयद्वन्द्वविहीनं परमेकं
सत्तामात्रं सर्वहृदिस्थं दृशिरूपम्॥ १॥

सुख-सम्पत्तिकी प्राप्ति करानेवाला तथा यमदूतोंको भयभीत करनेवाला है॥ ३६॥ राजाओंमें श्रेष्ठ श्रीरामजी सदा विजयको प्राप्त होते हैं। मैं लक्ष्मीपति भगवान् रामका भजन करता हूँ। जिन रामचन्द्रजीने सम्पूर्ण राक्षससेनाका ध्वंस कर दिया था, मैं उनको प्रणाम करता हूँ। रामसे बड़ा और कोई भी आश्रय नहीं है। मैं उन रामचन्द्रजीका दास हूँ। मेरा चित्त सदा राममें ही लीन रहे; हे राम! आप मेरा उद्धार कीजिये॥ ३७॥ (श्रीमहादेवजी पार्वतीजीसे कहते हैं—) हे सुमुखि! रामनाम विष्णुसहस्त्रनामके तुल्य है। मैं सर्वदा 'राम, राम, राम' इस प्रकार मनोरम राम-नाममें ही रमण करता हूँ॥ ३८॥

ब्रह्माजी बोले—जो सम्पूर्ण प्राणियोंकी स्थितिके कारण, आत्मज्ञानियोंद्वारा हृदयमें ध्यान किये जानेवाले, त्याज्य और ग्राह्यरूप द्वन्द्वसे रहित, सबसे

प्राणापानौ निश्चयबुद्ध्या हृदि रुद्ध्वा
छित्त्वा सर्वं संशयबन्धं विषयौघान्।
पश्यन्तीशं यं गतमोहा यतयस्तं
वन्दे रामं रत्नकिरीटं रविभासम्॥ २॥

मायातीतं माधवमाद्यं जगदादिं
मानातीतं मोहविनाशं मुनिवन्द्यम्।
योगिध्येयं योगविधानं परिपूर्णं
वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम्॥ ३॥

भावाभावप्रत्ययहीनं भवमुख्यै-
र्योगासक्तैरर्चितपादाम्बुजयुग्मम्।

परे, अद्वितीय, सत्तामात्र, सबके हृदयमें विराजमान और साक्षीस्वरूप हैं उन आप भगवान् विष्णुदेवको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १॥ मोहहीन संन्यासीगण निश्चित बुद्धिके द्वारा प्राण और अपानको हृदयमें रोककर तथा अपने सम्पूर्ण संशयबन्धन और विषय-वासनाओंका छेदनकर जिस ईश्वरका दर्शन करते हैं, उन रत्नकिरीटधारी, सूर्यके समान तेजस्वी भगवान् रामको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २॥ जो मायासे परे, लक्ष्मीके पति, सबके आदिकारण, जगत्के उत्पत्तिस्थान, प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे परे, मोहका नाश करनेवाले, मुनिजनोंसे वन्दनीय, योगियोंसे ध्यान किये जानेयोग्य, योगमार्गके प्रवर्तक, सर्वत्र परिपूर्ण और सम्पूर्ण संसारको आनन्दित करनेवाले हैं, उन परम सुन्दर भगवान् रामको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३॥ जो भाव और अभावरूप दोनों प्रकारकी प्रतीतियोंसे रहित हैं तथा जिनके युगलचरणकमलोंका योगपरायण शंकर आदि पूजन

नित्यं शुद्धं बुद्धमनन्तं प्रणवाख्यं
वन्दे रामं वीरमशेषासुरदावम्॥ ४॥
त्वं मे नाथो नाथितकार्याखिलकारी
मानातीतो माधवरूपोऽखिलधारी।
भक्त्या गम्यो भावितरूपो भवहारी
योगाभ्यासैर्भावितचेतःसहचारी॥ ५॥
त्वामाद्यन्तं लोकततीनां परमीशं
लोकानां नो लौकिकमानैरधिगम्यम्।
भक्तिश्रद्धाभावसमेतैर्भजनीयं
वन्दे रामं सुन्दरमिन्दीवरनीलम्॥ ६॥
को वा ज्ञातुं त्वामतिमानं गतमानं
मायासक्तो माधव शक्तो मुनिमान्यम्।

करते हैं और जो नित्य, शुद्ध, बुद्ध और अनन्त हैं, सम्पूर्ण दानवोंके लिये दावानलके समान उन ओंकार नामक वीरवर रामको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ४॥ हे राम! आप मेरे प्रभु हैं और मेरे सम्पूर्ण प्रार्थित कार्योंको पूर्ण करनेवाले हैं, आप देश-कालादि मान (परिमाण) से रहित, नारायणस्वरूप, अखिल विश्वको धारण करनेवाले, भक्तिसे प्राप्य, अपने स्वरूपका ध्यान किये जानेपर संसार-भयको दूर करनेवाले और योगाभ्याससे शुद्ध हुए चित्तमें विहार करनेवाले हैं॥ ५॥ आप इस लोक-परम्पराके आदि और अन्त (अर्थात् उत्पत्ति और प्रलयके स्थान) हैं, सम्पूर्ण लोकोंके महेश्वर हैं,आप किसी भी लौकिक प्रमाणसे जाने नहीं जा सकते, आप भक्ति और श्रद्धासम्पन्न पुरुषोंद्वारा भजन किये जानेयोग्य हैं, ऐसे नीलकमलके समान श्यामसुन्दर आप श्रीरामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ६॥ हे लक्ष्मीपते! आप प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे परे तथा सर्वथा निर्मान हैं। मायामें आसक्त कौन प्राणी आपको जाननेमें समर्थ हो सकता है ? आप अनुपम और महर्षियोंके माननीय हैं तथा

वृन्दारण्ये वन्दितवृन्दारकवृन्दं
वन्दे रामं भवमुखवन्द्यं सुखकन्दम्॥ ७॥
नानाशास्त्रैर्वेदकदम्बैः प्रतिपाद्यं
नित्यानन्दं निर्विषयज्ञानमनादिम्।
मत्सेवार्थं मानुषभावं प्रतिपन्नं
वन्दे रामं मरकतवर्णं मथुरेशम्॥ ८॥
श्रद्धायुक्तो यः पठतीमं स्तवमाद्यं
ब्राह्मं ब्रह्मज्ञानविधानं भुवि मर्त्यः।
रामं श्यामं कामितकामप्रदमीशं
ध्यात्वा ध्याता पातकजालैर्विगतः स्यात्॥ ९॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे युद्धकाण्डे त्रयोदशसर्गे श्रीब्रह्मदेवकृता श्रीरामस्तुतिः सम्पूर्णा।

(कृष्णावतारके समय) वृन्दावनमें अखिल देवसमूहकी वन्दना करनेवाले और रामरूपसे शिव आदि देवताओंके स्वयं वन्दनीय हैं; ऐसे आप आनन्दघन भगवान् रामको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ७॥ जो नाना शास्त्र और वेदसमूहसे प्रतिपादित, नित्य आनन्दस्वरूप, निर्विकल्प, ज्ञानस्वरूप और अनादि हैं तथा जिन्होंने मेरा कार्य करनेके लिये मनुष्यरूप धारण किया है उन मरकतमणिके समान नीलवर्ण मथुरानाथ* भगवान् रामको प्रणाम करता हूँ॥ ८॥ इस पृथ्वीपर जो मनुष्य इच्छित कामनाओंको पूर्ण करनेवाले श्याममूर्ति भगवान् रामका ध्यान करते हुए ब्रह्माजीके कहे हुए इस ब्रह्मज्ञानविधायक आद्य स्तोत्रका श्रद्धापूर्वक पाठ करेगा, वह ध्यानशील पुरुष सम्पूर्ण पापजालसे मुक्त हो जायगा॥ ९॥

---

* यहाँ भगवान् रामको मथुरानाथ कहकर श्रीराम और श्रीकृष्णकी अभिन्नता प्रकट की है।

३९—जटायुकृतश्रीरामस्तोत्रम्

जटायुरुवाच

अगणितगुणमप्रमेयमाद्यं सकलजगत्स्थितिसंयमादिहेतुम्।
उपरमपरमं परात्मभूतं सततमहं प्रणतोऽस्मि रामचन्द्रम्॥ १॥

निरवधिसुखमिन्दिराकटाक्षं क्षपितसुरेन्द्रचतुर्मुखादिदुःखम्।
नरवरमनिशं नतोऽस्मि रामं वरदमहं वरचापबाणहस्तम्॥ २॥

त्रिभुवनकमनीयरूपमीड्यं रविशतभासुरमीहितप्रदानम्।
शरणदमनिशं सुरागमूले कृतनिलयं रघुनन्दनं प्रपद्ये॥ ३॥

भवविपिनदवाग्निनामधेयं भवमुखदैवतदैवतं दयालुम्।
दनुजपतिसहस्रकोटिनाशं रवितनयासदृशं हरिं प्रपद्ये॥ ४॥

जटायु बोला—जो अगणित गुणशाली हैं, अप्रमेय हैं, जगत्के आदिकारण हैं तथा उसकी स्थिति और लय आदिके हेतु हैं, उन परम शान्तस्वरूप परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीकी मैं निरन्तर वन्दना करता हूँ॥ १॥ जो असीम आनन्दमय और श्रीकमलादेवीके कटाक्षके आश्रय हैं तथा जो ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवगणोंका दुःख दूर करनेवाले हैं, उन धनुष-बाणधारी वरदायक नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीको मैं अहर्निश प्रणाम करता हूँ॥ २॥ जो त्रिलोकीमें सबसे अधिक रूपवान् हैं, सबके स्तुत्य हैं, सैकड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी हैं तथा वांछित फल देनेवाले हैं, उन शरणप्रद और रागाश्रित हृदयमें रहनेवाले श्रीरघुनाथजीको मैं अहर्निश प्रणाम करता हूँ॥ ३॥ जिनका नाम संसाररूप वनके लिये दावानलके समान है, जो महादेव आदि देवताओंके भी पूज्य देव हैं तथा जो सहस्रों करोड़ दानवेन्द्रोंका दलन करनेवाले और श्रीयमुनाजीके समान श्यामवर्ण हैं, उन दयामय श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ४॥

अविरतभवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम्।
भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये॥ ५॥
गिरिशगिरिसुतामनोनिवासं गिरिवरधारिणमीहिताभिरामम्।
सुरवरदनुजेन्द्रसेविताङ्घ्रिं सुरवरदं रघुनायकं प्रपद्ये॥ ६॥
परधनपरदारवर्जितानां परगुणभूतिषु तुष्टमानसानाम्।
परहितनिरतात्मनां सुसेव्यं रघुवरमम्बुजलोचनं प्रपद्ये॥ ७॥
स्मितरुचिरविकासिताननाब्जमतिसुलभं सुरराजनीलनीलम्।
सितजलरुहचारुनेत्रशोभं रघुपतिमीशगुरोर्गुरुं प्रपद्ये॥ ८॥
हरिकमलजशम्भुरूपभेदात्त्वमिह विभासि गुणत्रयानुवृत्तः।
रविरिव जलपूरितोदपात्रेष्वमरपतिस्तुतिपात्रमीशमीडे॥ ९॥

जो संसारमें निरन्तर वासना रखनेवालोंसे अत्यन्त दूर हैं और संसारसे उपराम मुनिजनोंके सदैव दृष्टिगोचर रहते हैं तथा जिनके चरणरूप पोत (जहाज) संसारसागरसे पार करनेवाले हैं, उन रघुनाथजीकी मैं शरण लेता हूँ॥ ५॥ जो श्रीमहादेव और पार्वतीजीके मन-मन्दिरमें निवास करते हैं, जिनकी लीलाएँ अति मनोहारिणी हैं तथा देव और असुरपतिगण जिनके चरणकमलोंकी सेवा करते हैं, उन गिरिवरधारी सुखदायक रघुनायककी मैं शरण लेता हूँ॥ ६॥ जो परधन और परस्त्रीसे सदा दूर रहते हैं तथा पराये गुण और परायी विभूतिको देखकर प्रसन्न होते हैं, उन निरन्तर परोपकारपरायण महात्माओंसे सुसेवित कमलनयन श्रीरघुनाथजीकी मैं शरण लेता हूँ॥ ७॥ जिनका मुखकमल मनोहर मुसकानसे विकसित हो रहा है, जो भक्तोंके लिये अति सुलभ हैं, जिनके शरीरकी कान्ति इन्द्रनीलमणिके समान सुन्दर नीलवर्ण है तथा जिनके मनोहर नेत्र श्वेत कमलकी-सी शोभावाले हैं, उन श्रीगुरु महादेवजीके परम गुरु श्रीरघुनाथजीकी मैं शरण लेता हूँ॥ ८॥ हे प्रभो! जलसे भरे हुए पात्रोंमें जैसे एक ही सूर्य प्रतिबिम्बित होता है वैसे ही सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंकी वृत्तिके कारण आप ही विष्णु, ब्रह्मा और

रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम्।
यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये॥ १०॥
इत्येवं स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभूद्रघूत्तमः।
उवाच गच्छ भद्रं ते मम विष्णोः परं पदम्॥ ११॥
शृणोति य इदं स्तोत्रं लिखेद्वा नियतः पठेत्।
स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत्॥ १२॥
इति राघवभाषितं तदा श्रुतवान् हर्षसमाकुलो द्विजः।
रघुनन्दनसाम्यमास्थितः प्रययौ ब्रह्मसुपूजितं पदम्॥ १३॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे अरण्यकाण्डेऽष्टमे सर्गे जटायुकृतश्रीरामस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

महादेवरूपसे भासित होते हैं। हे ईश! आप देवराज इन्द्रकी भी स्तुतिके पात्र हैं, मैं आपकी स्तुति करता हूँ॥ ९॥ आपका दिव्य शरीर सैकड़ों करोड़ कामदेवोंसे भी सुन्दर है, सैकड़ों मार्गोंमें फँसे हुए लोगोंसे आप अत्यन्त दूर हैं और यतीश्वरोंके हृदयमें आप सदा ही भासमान हैं। ऐसे आप आर्त्तिहर प्रभु रघुपतिकी मैं शरण लेता हूँ॥ १०॥ जटायुके इस प्रकार स्तुति करनेपर श्रीरघुनाथजी उसपर प्रसन्न होकर बोले—'जटायो! तुम्हारा कल्याण हो, तुम मेरे परमधाम विष्णुलोकको जाओ'॥ ११॥ जो पुरुष मेरे इस स्तोत्रको एकाग्रचित्तसे सुने, लिखे अथवा पढ़े, वह मेरा सारूप्य-पद प्राप्त करता है और मरते समय उसे मेरा स्मरण होगा॥ १२॥ पक्षिराज जटायुने रघुनाथजीका यह कथन बड़े हर्षसे सुना और उन्हींके समान रूप धारणकर ब्रह्मा आदि लोकपालोंसे पूजित परमधामको चला गया॥ १३॥

४०—इन्द्रकृतश्रीरामस्तोत्रम्

इन्द्र उवाच

भजेऽहं सदा राममिन्दीवराभं
भवारण्यदावानलाभाभिधानम्।
भवानीहृदा भावितानन्दरूपं
भवाभावहेतुं भवादिप्रपन्नम्॥ १॥
सुरानीकदुःखौघनाशैकहेतुं
नराकारदेहं निराकारमीड्यम्।
परेशं परानन्दरूपं वरेण्यं
हरिं राममीशं भजे भारनाशम्॥ २॥
प्रपन्नाखिलानन्ददोहं प्रपन्नं
प्रपन्नार्तिनिःशेषनाशाभिधानम्।
तपोयोगयोगीशभावाभिभाव्यं
कपीशादिमित्रं भजे राममित्रम्॥ ३॥

इन्द्र बोले—जो नीलकमलकी-सी आभावाले हैं, संसाररूप वनके लिये जिनका नाम दावानलके समान है, श्रीपार्वतीजी जिनके आनन्दस्वरूपका हृदयमें ध्यान करती हैं, जो (जन्म-मरणरूप) संसारसे छुड़ानेवाले हैं और शंकरादि देवोंके आश्रय हैं, उन भगवान् रामको मैं भजता हूँ॥ १॥

जो देवमण्डलके दुःखसमूहका नाश करनेके एकमात्र कारण हैं तथा जो मनुष्यरूपधारी, आकारहीन और स्तुति किये जानेयोग्य हैं, पृथ्वीका भार उतारनेवाले उन परमेश्वर परमानन्दरूप पूजनीय भगवान् रामको मैं भजता हूँ॥ २॥ जो शरणागतोंको सब प्रकार आनन्द देनेवाले और उनके आश्रय हैं, जिनका नाम शरणागत भक्तोंके सम्पूर्ण दुःखोंको दूर करनेवाला है, जिनका तप और योग एवं बड़े-बड़े योगीश्वरोंकी भावनाओंद्वारा चिन्तन किया जाता है तथा

सदा भोगभाजां सुदूरे विभान्तं
सदा योगभाजामदूरे विभान्तम्।
चिदानन्दकन्दं सदा राघवेशं
विदेहात्मजानन्दरूपं प्रपद्ये॥ ४॥
महायोगमायाविशेषानुयुक्तो
विभासीश लीलानराकारवृत्तिः।
त्वदानन्दलीलाकथापूर्णकर्णाः
सदानन्दरूपा भवन्तीह लोके॥ ५॥
अहं मानपानाभिमत्तप्रमत्तो
न वेदाखिलेशाभिमानाभिमानः।
इदानीं भवत्पादपद्मप्रसादात्
त्रिलोकाधिपत्याभिमानो विनष्टः॥ ६॥
स्फुरद्रत्नकेयूरहाराभिरामं
धराभारभूतासुरानीकदावम्।

जो सुग्रीवादिके मित्र हैं, उन मित्ररूप भगवान् रामको मैं भजता हूँ॥ ३॥ जो भोगपरायण लोगोंसे सदा दूर रहते हैं और योगनिष्ठ पुरुषोंके सदा समीप ही विराजते हैं, श्रीजानकीजीके लिये आनन्दस्वरूप उन चिदानन्दघन श्रीरघुनाथजीको मैं सर्वदा भजता हूँ॥ ४॥ हे भगवन्! आप अपनी महायोग-मायाके गुणोंसे युक्त होकर लीलासे ही मनुष्यरूप प्रतीत हो रहे हैं। जिनके कर्ण आपकी इन आनन्दमयी लीलाओंके कथामृतसे पूर्ण होते हैं, वे संसारमें नित्यानन्दरूप हो जाते हैं॥ ५॥ प्रभो! मैं तो सम्मान और सोमपानके उन्मादसे मतवाला हो रहा था, सर्वेश्वरताके अभिमानवश मैं अपने आगे किसीको कुछ भी नहीं समझता था। अब आपके चरणकमलोंकी कृपासे मेरा त्रिलोकाधिपतित्वका अभिमान चूर हो गया॥ ६॥ जो चमचमाते हुए रत्नजटित भुजबंद और हारोंसे सुशोभित हैं, वे पृथ्वीके भाररूप राक्षसोंकी

शरच्चन्द्रवक्त्रं लसत्पद्मनेत्रं
दुरावारपारं भजे राघवेशम्॥ ७॥
सुराधीशनीलाभ्रनीलाङ्गकान्तिं
विराधादिरक्षोवधाल्लोकशान्तिम्।
किरीटादिशोभं पुरारातिलाभं
भजे रामचन्द्रं रघूणामधीशम्॥ ८॥
लसच्चन्द्रकोटिप्रकाशादिपीठे
समासीनमङ्के समाधाय सीताम्।
स्फुरद्धेमवर्णां तडित्पुञ्जभासां
भजे रामचन्द्रं निवृत्तार्तितन्द्रम्॥ ९॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे युद्धकाण्डे त्रयोदशसर्गे इन्द्रकृतश्रीरामस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

सेनाके लिये दावानलके समान हैं, जिनका शरच्चन्द्रके समान मुख और अति मनोहर नेत्रकमल हैं तथा जिनका आदि-अन्त जानना अत्यन्त कठिन है, उन रघुनाथजीको मैं भजता हूँ॥ ७॥ जिनके शरीरकी इन्द्रनीलमणि और मेघके समान श्याम कान्ति है, जिन्होंने विराध आदि राक्षसोंको मारकर सम्पूर्ण लोकोंमें शान्ति स्थापित की है, उन किरीटादिसे सुशोभित और श्रीमहादेवजीके परमधन रघुकुलेश्वर श्रीरामचन्द्रजीको मैं भजता हूँ॥ ८॥ जो तेजोमय सुवर्णके-से वर्णवाली और बिजलीके समान कान्तिमयी जानकीजीको गोदमें लिये करोड़ों चन्द्रमाओंके समान देदीप्यमान सिंहासनपर विराजमान हैं, उन दुःख और आलस्यसे हीन भगवान् रामको मैं भजता हूँ॥ ९॥

४१—श्रीरामाष्टकम्

कृतार्तदेववन्दनं दिनेशवंशनन्दनम्।
सुशोभिभालचन्दनं नमामि राममीश्वरम्॥ १ ॥
मुनीन्द्रयज्ञकारकं शिलाविपत्तिहारकम्।
महाधनुर्विदारकं नमामि राममीश्वरम्॥ २ ॥
स्वतातवाक्यकारिणं तपोवने विहारिणम्।
करे सुचापधारिणं नमामि राममीश्वरम्॥ ३ ॥
कुरङ्गमुक्तसायकं जटायुमोक्षदायकम्।
प्रविद्धकीशनायकं नमामि राममीश्वरम्॥ ४ ॥
प्लवङ्गसङ्गसम्मतिं निबद्धनिम्नगापतिम्।
दशास्यवंशसङ्क्षतिं नमामि राममीश्वरम्॥ ५ ॥

आर्त देवताओंने जिनकी वन्दना की है, जो सूर्यवंशको आनन्दित करनेवाले हैं तथा जिनके ललाटपर चन्दन सुशोभित है, उन परमेश्वर रामको मैं नमस्कार करता हूँ॥ १ ॥ जो मुनिराज विश्वामित्रका यज्ञ सम्पन्न करानेवाले, पाषाणरूपा अहल्याका कष्ट निवारण करनेवाले तथा श्रीशंकरका महान् धनुष तोड़नेवाले हैं, उन परमेश्वर रामको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २ ॥ जो अपने पिताके वचनोंका पालन करनेवाले, तपोवनमें विचरनेवाले और हाथोंमें धनुष धारण करनेवाले हैं, उन परमेश्वर रामको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ३ ॥ जिन्होंने मायामृगपर बाण छोड़ा था, जटायुको मोक्ष प्रदान किया था तथा कपिराज बालीको विद्ध किया था, उन परमेश्वर रामको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ४ ॥ जिन्होंने वानरोंके साथ मित्रता की, समुद्रका पुल बाँधा और रावणके वंशका विनाश किया, उन परमेश्वर रामको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ५ ॥

विदीनदेवहर्षणं कपीप्सितार्थवर्षणम्।
स्वबन्धुशोककर्षणं नमामि राममीश्वरम्॥ ६॥
गतारिराज्यरक्षणं प्रजाजनार्तिभक्षणम्।
कृतास्तमोहलक्षणं नमामि राममीश्वरम्॥ ७॥
हृताखिलाचलाभरं स्वधामनीतनागरम्।
जगत्तमोदिवाकरं नमामि राममीश्वरम्॥ ८॥
इदं समाहितात्मना नरो रघूत्तमाष्टकम्।
पठन्निरन्तरं भयं भवोद्भवं न विन्दते॥ ९॥

इति श्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं श्रीरामाष्टकं सम्पूर्णम्।

जो अति दीन देवताओंको प्रसन्न करनेवाले, वानरोंकी इच्छित कामनाओंको पूर्ण करनेवाले और अपने बन्धुओंका शोक शान्त करनेवाले हैं, उन परमेश्वर रामको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ६॥ जो शत्रुहीन (निष्कण्टक) राज्यके पालक, प्रजाजनकी भीतिके भक्षक और मोहकी निवृत्ति करनेवाले हैं, उन परमेश्वर रामको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ७॥ जिन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वीका भार हरण किया है, जो सकल नगरनिवासियोंको अपने धामको ले गये तथा जो संसाररूप अन्धकारके लिये सूर्यरूप हैं, उन परमेश्वर रामको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ८॥ जो पुरुष इस रामाष्टकको एकाग्रचित्तसे निरन्तर पढ़ता है, उसे संसारजनित भयकी प्राप्ति नहीं होती॥ ९॥

४२—श्रीसीतारामाष्टकम्

ब्रह्ममहेन्द्रसुरेन्द्रमरुद्गणरुद्रमुनीन्द्रगणैरतिरम्यं
क्षीरसरित्पतितीरमुपेत्य नुतं हि सतामवितारमुदारम्।
भूमिभरप्रशमार्थमथ प्रथितप्रकटीकृतचिद्घनमूर्तिं
त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाघन मे स्वपदाम्बुजदास्यम्॥ १॥
पद्मदलायतलोचन हे रघुवंशविभूषण देव दयालो
निर्मलनीरदनीलतनोऽखिललोकहृदम्बुजभासक भानो।
कोमलगात्र पवित्रपदाब्जरजःकणपावितगौतमकान्त। त्वां०॥ २॥
पूर्ण परात्पर पालय मामतिदीनमनाथमनन्तसुखाब्धे
प्रावृडदभ्रतडित्सुमनोहरपीतवराम्बर राम नमस्ते।
कामविभञ्जन कान्ततरानन काञ्चनभूषण रत्नकिरीट। त्वां०॥ ३॥

ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, मरुद्गण, रुद्र और मुनिजनोंने जब अति रमणीय क्षीरसागरके तटपर जाकर संत-प्रतिपालक अति उदार आपकी वन्दना की, तब भूमिका भार उतारनेके लिये जिन आपने अपनी चिद्घन मूर्तिको प्रकट किया, हे दयामय रघुनन्दन! उन आपको भजनेवाले मुझको अपने चरणकमलोंकी दासता दीजिये॥ १॥ हे कमलदललोचन! हे रघुवंशावतंस! हे देव! हे दयालो! हे निर्मल श्यामघनके सदृश शरीरवाले! हे निखिललोकहृत्पद्म-प्रभाकर! हे अति सुकुमार शरीरवाले! अपने अति पुनीत चरणारविन्दोंकी धूलिसे गौतमपत्नी अहल्याको पवित्र करनेवाले, दयामय रघुनन्दन! अपने भजनेवाले मुझको आप अपने चरणकमलोंकी दासता दीजिये॥ २॥ हे पूर्ण! हे परात्पर! हे अनन्त सुखसागर! मुझ अति दीन और अनाथकी रक्षा करो। वर्षाकालीन अति चपल चंचलाके समान मनोहर पीताम्बरधारी श्रीराम! आपको नमस्कार है। हे कन्दर्प-दर्प-दलन, हे सुन्दर वदन, सुवर्ण-भूषण एवं रत्नकिरीटधारी, दयामय, रघुनन्दन! अपने भजनेवाले मुझको आप अपने चरणकमलोंकी दासता दीजिये॥ ३॥

दिव्यशरच्छशिकान्तिहरोज्ज्वलमौक्तिकमालविशालसुमौले
कोटिरविप्रभ चारुचरित्रपवित्र विचित्रधनुःशरपाणे।
चण्डमहाभुजदण्डविखण्डितराक्षसराजमहागजदण्डं। त्वां० ॥ ४॥
दोषविहिंस्रभुजङ्गसहस्रसुरोषमहानलकीलकलापे
जन्मजरामरणोर्मिमये मदमन्मथनक्रविचक्रभवाब्धौ।
दुःखनिधौ च चिरं पतितं कृपयाद्य समुद्धर राम ततो मां। त्वां० ॥ ५॥
संसृतिघोरमदोत्कटकुञ्जरतृट्क्षुदनीरदपिण्डिततुण्डं
दण्डकरोन्मथितं च रजस्तम उन्मदमोहपदोज्झितमार्तम्।
दीनमनन्यगतिं कृपणं शरणागतमाशु विमोचय मूढं। त्वां० ॥ ६॥
जन्मशतार्जितपापसमन्वितहृत्कमले पतिते पशुकल्पे
हे रघुवीर महारणधीर दयां कुरु मय्यतिमन्दमनीषे।
त्वं जननी भगिनी च पिता मम तावदसि त्ववितापि कृपालो। त्वां० ॥ ७॥

दिव्यशरच्चन्द्रकी कान्तिको मलिन करनेवाली स्वच्छ मुक्तामालाको अपने सुविशाल मौलिपर धारण करनेवाले, कोटि सूर्यकी-सी आभावाले, सदाचारसे पवित्र, करकमलोंमें विचित्र धनुष-बाण धारण करनेवाले एवं अपने प्रचण्ड भुजदण्डसे रावणरूपी महागजका वध करनेवाले हे दयामय श्रीरघुनन्दन! अपने भजनेवाले मुझको आप अपने चरणकमलोंकी दासता दीजिये॥ ४॥ जिसमें दोषरूपी हजारों हिंसक सर्प हैं, क्रोधरूपी बड़वानलकी ज्वालाएँ उठ रही हैं, जन्म-जरा-मरणरूपिणी तरंगावली है तथा मद और कामरूपी मगरमच्छ और भँवर हैं, ऐसे इस दुःखमय भवसागरमें चिरकालसे पड़े हुए मुझको, हे राम! कृपया अब निकालिये; और हे दयामय रघुनन्दन! अपने भजनेवाले मुझको आप अपने चरणकमलोंकी दासता दीजिये॥ ५॥ तृषा और क्षुधा जिसके तीक्ष्ण दाँत हैं, ऐसा संसाररूपी एक उन्मत्त हाथी है। उसकी यमरूपी सूँड़से झटकोंमें पड़े हुए तथा रज, तम, उन्माद और मोहरूप चारों पगोंसे कुचले हुए अति आर्त, दीन, अनन्यशरण मुझ मूढ़को शीघ्र ही छुड़ाइये; और हे दयामय रघुनन्दन! अपने भजनेवाले मुझको अपने चरणकमलोंकी दासता दीजिये॥ ६॥ जिसका हृदय-कमल सैकड़ों जन्मोंके संचित पापोंसे युक्त है, जो पशुतुल्य पतित हो गया है,

त्वां तु दयालुमकिञ्चनवत्सलमुत्पलहारमपारमुदारं
राम विहाय कमन्यमनामयमीश जनं शरणं ननु यायाम्।
त्वत्पदपद्ममतः श्रितमेव मुदा खलु देव सदाव ससीत। त्वां० ॥ ८ ॥
यः करुणामृतसिन्धुरनाथजनोत्तमबन्धुरजोत्तमकारी
भक्तभयोर्मिभवाब्धितरिः सरयूतटिनीतटचारुविहारी।
तस्य रघुप्रवरस्य निरन्तरमष्टकमेतदनिष्टहरं वै
यस्तु पठेदमरः स नरो लभतेऽच्युतरामपदाम्बुजदास्यम् ॥ ९ ॥

इति श्रीमन्मधुसूदनाश्रमशिष्याच्युतयतिविरचितं श्रीसीतारामाष्टकं सम्पूर्णम्।

उस अति मतिमन्द मुझपर हे महारणधीर रघुवीर! कृपा कीजिये। आप ही मेरे माता, पिता और भगिनी हैं तथा हे कृपालो! आप ही मेरे रक्षक हैं। हे दयामय रघुनन्दन! अपना भजन करनेवाले मुझको अपने चरणकमलोंकी दासता दीजिये॥ ७॥ हे मेरे स्वामी राम! गलेमें कमलपुष्पोंकी माला धारण करनेवाले आप-सदृश अतिशय उदार दीनवत्सल और दयामय प्रभुको छोड़कर मैं और किस अनामय पुरुषकी शरण लूँ ? अतः मैंने तो आपके ही चरणकमलोंका आसरा लिया है। हे सीताजीके सहित राम! आप प्रसन्न होकर मेरी सर्वदा रक्षा कीजिये और हे दयामय भगवान् रघुनन्दन! आपका भजन करनेवाले मुझको अपने चरणकमलोंकी दासता दीजिये॥ ८॥ जो करुणारूप अमृतके समुद्र हैं, अनाथोंके उत्तम बन्धु हैं, अजन्मा और उत्तम कर्मा हैं, भक्तोंको भयरूप तरंगावलिसे पूर्ण संसारसागरसे पार करनेके लिये नौकारूप हैं और सरयू नदीके तीरपर सुन्दर लीलाएँ करनेवाले हैं, उन रघुश्रेष्ठके इस अष्टकका, जो सर्वदा सब अनिष्टोंको दूर करनेवाला है, जो पुरुष पाठ करता है, वह अमर हो जाता है और अविनाशी भगवान् रामके चरणकमलोंकी दासता प्राप्त करता है॥ ९॥

४३—श्रीरामचन्द्रस्तुतिः

नमामि भक्तवत्सलं कृपालु शील कोमलं
भजामि ते पदांबुजं अकामिनां स्वधामदं।
निकाम श्याम सुंदरं भवांबुनाथ मन्दरं
प्रफुल्ल कंज लोचनं मदादि दोष मोचनं॥ १॥
प्रलंब बाहु विक्रमं प्रभोऽप्रमेय वैभवं
निषंग चाप सायकं धरं त्रिलोक नायकं।
दिनेश वंश मंडनं महेश चाप खंडनं
मुनींद्र संत रंजनं सुरारि वृंद भंजनं॥ २॥
मनोज वैरि वंदितं अजादि देव सेवितं
विशुद्ध बोध विग्रहं समस्त दूषणापहं।
नमामि इंदिरा पतिं सुखाकरं सतां गतिं
भजे सशक्ति सानुजं शची पति प्रियानुजं॥ ३॥

भक्तोंके हितकारी, कृपालु और अतिकोमल स्वभाववाले! आपको मैं नमस्कार करता हूँ। जो निष्काम पुरुषोंको अपना धाम देनेवाले हैं ऐसे आपके चरण-कमलोंकी मैं वन्दना करता हूँ। जो अति सुन्दर श्याम शरीरवाले, संसार-समुद्रके मन्थनके लिये मन्दराचलरूप, खिले हुए कमलके-से नेत्रोंवाले तथा मद आदि दोषोंसे छुड़ानेवाले हैं॥ १॥ जिनकी भुजाएँ लंबी-लंबी और अति बलिष्ठ हैं, जिनके वैभवका कोई परिमाण नहीं है, जो धनुष, बाण और तरकश धारण किये हैं, त्रिलोकीके नाथ हैं, सूर्यकुलके भूषण हैं, शंकरके धनुषको तोड़नेवाले हैं, मुनिजन तथा महात्माओंको आनन्दित करनेवाले हैं, दैत्योंका दलन करनेवाले हैं, कामारि श्रीशंकरजीसे वन्दित हैं, ब्रह्मा आदि देवगणोंसे सेवित हैं, विशुद्ध बोधस्वरूप हैं, समस्त दोषोंको दूर करनेवाले हैं, श्रीलक्ष्मीजीके पति हैं, सुखकी खानि हैं, संतोंकी एकमात्र गति हैं तथा शचीपति इन्द्रके प्यारे अनुज (उपेन्द्र) हैं; हे प्रभो! ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ और सीताजी तथा भाई लक्ष्मणके साथ

त्वदंघ्रि मूल ये नराः भजन्ति हीन मत्सराः
पतंति नो भवार्णवे वितर्क वीचि संकुले।
विविक्त वासिनः सदा भजंति मुक्तये मुदा
निरस्य इंद्रियादिकं प्रयांति ते गतिं स्वकं॥ ४॥
तमेकमद्भुतं प्रभुं निरीहमीश्वरं विभुं
जगद्गुरुं च शाश्वतं तुरीयमेव केवलं।
भजामि भाव वल्लभं कुयोगिनां सुदुर्लभं
स्वभक्त कल्प पादपं समं सुसेव्यमन्वहं॥ ५॥
अनूप रूप भूपतिं नतोऽहमुर्विजा पतिं
प्रसीद मे नमामि ते पदाब्ज भक्ति देहि मे।
पठंति ये स्तवं इदं नरादरेण ते पदं
व्रजंति नात्र संशयं त्वदीय भक्ति संयुताः॥ ६॥

इति श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृता श्रीरामचन्द्रस्तुतिः सम्पूर्णा।

आपको भजता हूँ॥ २-३॥ जो लोग मद-मत्सरादिसे रहित होकर आपके चरणोंको भजते हैं, वे फिर इस नाना वितर्क-तरंगावलिपूर्ण संसार-सागरमें नहीं पड़ते तथा जो एकान्तसेवी महात्मागण अपनी इन्द्रियोंका संयम करके प्रसन्नचित्तसे भवबन्धविमोचनके लिये आपका भजन करते हैं, वे अपने अभीष्ट पदको पाते हैं॥ ४॥ जो अति निरीह, ईश्वर और सर्वव्यापक हैं, जगत्के गुरु, नित्य, जाग्रदादि अवस्थात्रयसे विलक्षण और अद्वैत हैं, केवल भावके भूखे हैं, कुयोगियोंको दुर्लभ हैं, अपने भक्तोंके लिये कल्पवृक्षरूप हैं तथा सम (पक्षपातरहित) और सदा सुखपूर्वक सेवन करनेयोग्य हैं, ऐसे उन (आप) अद्भुत प्रभुको मैं भजता हूँ॥ ५॥ अनुपम रूपवान् राजराजेश्वर जानकीनाथको मैं प्रणाम करता हूँ। मैं आपकी बार-बार वन्दना करता हूँ; आप मुझपर प्रसन्न होइये और मुझे अपने चरण-कमलोंकी भक्ति दीजिये। जो मनुष्य इस स्तोत्रका आदरपूर्वक पाठ करेंगे, वे आपके भक्ति-भावसे भरकर आपके निज पदको प्राप्त होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं॥ ६॥

४४—श्रीराममङ्गलाशासनम्

मङ्गलं कौशलेन्द्राय महनीयगुणाब्धये।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम्॥ १॥
वेदवेदान्तवेद्याय मेघश्यामलमूर्तये।
पुंसां मोहनरूपाय पुण्यश्लोकाय मङ्गलम्॥ २॥
विश्वामित्रान्तरङ्गाय मिथिलानगरीपतेः।
भाग्यानां परिपाकाय भव्यरूपाय मङ्गलम्॥ ३॥
पितृभक्ताय सततं भ्रातृभिः सह सीतया।
नन्दिताखिललोकाय रामभद्राय मङ्गलम्॥ ४॥
त्यक्तसाकेतवासाय चित्रकूटविहारिणे।
सेव्याय सर्वयमिनां धीरोदयाय मङ्गलम्॥ ५॥
सौमित्रिणा च जानक्या चापबाणासिधारिणे।
संसेव्याय सदा भक्त्या स्वामिने मम मङ्गलम्॥ ६॥

प्रशंसनीय गुणोंके सागर कौशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रजीका मंगल हो, चक्रवर्ती राजा दशरथके पुत्र मण्डलेश्वर श्रीरामचन्द्रजीका मंगल हो॥ १॥ जो वेद-वेदान्तोंके ज्ञेय हैं, मेघके समान श्याममूर्तिवाले हैं और पुरुषोंमें जिनका स्वरूप अत्यन्त मनोहर है, उन पुण्यश्लोक (पवित्र यशवाले) श्रीरामचन्द्रजीका मंगल हो॥ २॥ जो विश्वामित्र ऋषिके प्रिय और राजा जनकके भाग्योंके फलस्वरूप हैं, उन भव्यरूपवाले श्रीरामचन्द्रजीका मंगल हो॥ ३॥ जो सदा पिताकी भक्ति करनेवाले हैं, जो अपने भ्राताओं और सीताजीके साथ सुशोभित होते हैं और जिन्होंने समस्त लोकको आनन्दित किया है, उन श्रीरामभद्रका मंगल हो॥ ४॥ जिन्होंने अयोध्या-निवासको छोड़कर चित्रकूटपर विहार किया और जो सब यतियोंके सेव्य हैं, उन धीरोदय श्रीरामभद्रका मंगल हो॥ ५॥ लक्ष्मण तथा जानकीजी सदा भक्तिपूर्वक जिनकी सेवा करते हैं, जो धनुष-बाण

दण्डकारण्यवासाय खरदूषणशत्रवे।
गृध्रराजाय भक्ताय मुक्तिदायास्तु मङ्गलम्॥ ७ ॥
सादरं शबरीदत्तफलमूलाभिलाषिणे।
सौलभ्यपरिपूर्णाय सत्त्वोद्रिक्ताय मङ्गलम्॥ ८ ॥
हनुमत्समवेताय हरीशाभीष्टदायिने।
बालिप्रमथनायास्तु महाधीराय मङ्गलम्॥ ९ ॥
श्रीमते रघुवीराय सेतूल्लङ्घितसिन्धवे।
जितराक्षसराजाय रणधीराय मङ्गलम्॥ १० ॥
विभीषणकृते प्रीत्या लङ्काभीष्टप्रदायिने।
सर्वलोकशरण्याय श्रीराघवाय मङ्गलम्॥ ११ ॥
आसाद्य नगरीं दिव्यामभिषिक्ताय सीतया।
राजाधिराजराजाय रामभद्राय मङ्गलम्॥ १२ ॥

और तलवारको धारण किये हुए हैं, उन मेरे स्वामी श्रीरामभद्रका मंगल हो॥ ६॥ जिन्होंने दण्डकवनमें निवास किया है, जो खर-दूषणके शत्रु हैं और अपने भक्त गृध्रराजको मुक्ति देनेवाले हैं, उन श्रीरामभद्रका मंगल हो॥ ७॥ जो आदरसहित शबरीके भी दिये हुए फल-मूलके अभिलाषी हुए, जो सुलभतासे पूर्ण (अर्थात् थोड़े ही परिश्रमसे प्राप्य) हैं और जिनमें सत्त्वगुणका आधिक्य है, उन श्रीरामभद्रका मंगल हो॥ ८॥ जो हनुमान्‌जीसे युक्त हैं, हरीश (सुग्रीव) के अभीष्टको देनेवाले हैं और बालिको मारनेवाले हैं, उन महाधीर श्रीरामभद्रका मंगल हो॥ ९॥ जो सेतु बाँधकर समुद्रको लाँघ गये और जिन्होंने राक्षसराज रावणपर विजय पायी, उन रणधीर श्रीमान् रघुवीरका मंगल हो॥ १०॥ जिन्होंने प्रसन्नतासे विभीषणको उनका अभीष्ट लंकाका राज्य दे दिया और जो सब लोकोंको शरणमें रखनेवाले हैं, उन श्रीराघव रामभद्रका मंगल हो॥ ११॥ वनसे दिव्य नगरी अयोध्यामें आनेपर जिनका सीताजीके सहित राज्याभिषेक हुआ, उन महाराजाओंके राजा श्रीरामभद्रका

ब्रह्मादिदेवसेव्याय ब्रह्मण्याय महात्मने।
जानकीप्राणनाथाय रघुनाथाय मङ्गलम्॥ १३॥
श्रीसौम्यजामातृमुनेः कृपयास्मानुपेयुषे।
महते मम नाथाय रघुनाथाय मङ्गलम्॥ १४॥
मङ्गलाशासनपरैर्मदाचार्यपुरोगमैः।
सर्वैश्च पूर्वैराचार्यैः सत्कृतायास्तु मङ्गलम्॥ १५॥
रम्यजामातृमुनिना मङ्गलाशासनं कृतम्।
त्रैलोक्याधिपतिः श्रीमान् करोतु मङ्गलं सदा॥ १६॥

इति श्रीवरवरमुनिस्वामिकृतश्रीराममङ्गलाशासनं सम्पूर्णम्।

मंगल हो॥ १२॥ जो ब्रह्मा आदि देवताओंके सेव्य हैं, ब्रह्मण्य (ब्राह्मणों और वेदोंकी रक्षा करनेवाले) हैं, श्रीजानकीजीके प्राणनाथ हैं, उन रघुकुलके नाथ श्रीरामभद्रका मंगल हो॥ १३॥ जो श्रीसम्पन्न सुन्दर आकारवाले जामाता मुनिकी कृपासे हमलोगोंको प्राप्त हुए हैं, उन मेरे महान् प्रभु रघुनाथजीका मंगल हो॥ १४॥ मेरे आचार्य जिनमें मुख्य हैं, उन अर्वाचीन आचार्यों तथा सम्पूर्ण प्राचीन आचार्योंने मंगलाशासनमें परायण होकर जिनका सत्कार किया है, उन श्रीरामभद्रका मंगल हो॥ १५॥ जामातामुनिने इस सुन्दर मंगलाशासनका निर्माण किया है। इससे प्रसन्न होकर तीनों लोकोंके पति श्रीमान् रामभद्र सदा ही मंगल करें॥ १६॥

४५—श्रीरामप्रेमाष्टकम्

श्यामाम्बुदाभमरविन्दविशालनेत्रं
बन्धूकपुष्पसदृशाधरपाणिपादम् ।
सीतासहायमुदितं धृतचापबाणं
रामं नमामि शिरसा रमणीयवेषम्॥ १ ॥
पटुजलधरधीरध्वानमादाय चापं
पवनदमनमेकं बाणमाकृष्य तूणात्।
अभयवचनदायी सानुजः सर्वतो मे
रणहतदनुजेन्द्रो रामचन्द्रः सहायः॥ २ ॥
दशरथकुलदीपोऽमेयबाहुप्रतापो
दशवदनसकोपः क्षालिताशेषपापः।

जो नील मेघके समान श्याम वर्ण हैं, जिनके कमलके समान विशाल नेत्र हैं, जो बन्धूक पुष्पके समान अरुण ओष्ठ, हस्त और चरणोंसे शोभित हैं, जो सीताजीके साथ विराजमान एवं अभ्युदयशील हैं, जिन्होंने धनुष-बाणको धारण किया है, जिनका वेष बड़ा ही सुन्दर है, सीताजीके सहित उन श्रीरामको मैं सिरसे नमस्कार करता हूँ॥ १ ॥ जो प्रौढ़ मेघके समान धीर-गम्भीर, टंकार-ध्वनि करनेवाले धनुषको धारणकर और अपने वेगसे वायुका भी मान-मर्दन करनेवाले एक बाणको तूणीर (तरकस) से खींचकर 'मत डरो' ऐसा कहते हुए अपने आश्रितोंको अभय-वचन देनेवाले हैं तथा जिन्होंने रणमें दानवराज (रावण) को मारा है, लक्ष्मणके सहित वे श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे सब प्रकार सहायक हैं॥ २ ॥ जो राजा दशरथके कुलके दीपक (प्रकाशक) हैं, जिनके बाहुबलका प्रताप मापा नहीं जा सकता, जो रावणके ऊपर कोप करनेवाले, समस्त पापको दूर करनेवाले, असुरोंको ताप देनेवाले और अनेक

कृतसुररिपुतापो नन्दितानेकभूपो
विगततिमिरपङ्को रामचन्द्रः सहायः ॥ ३ ॥
कुवलयदलनीलः कामितार्थप्रदो मे
कृतमुनिजनरक्षो रक्षसामेकहन्ता।
अपहृतदुरितोऽसौ नाममात्रेण पुंसा-
मखिलसुरनृपेन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥ ४ ॥
असुरकुलकृशानुर्मानसाम्भोजभानुः
सुरनरनिकराणामग्रणीर्मे रघूणाम्।
अगणितगुणसीमा नीलमेघौघधामा
शमदमितमुनीन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥ ५ ॥
कुशिकतनययागं रक्षिता लक्ष्मणाढ्यः
पवनशरनिकायक्षिप्तमारीचमायः ।

राजाओंको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं, अज्ञान और पापसे रहित वे श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे सहायक हैं॥ ३॥ जो कमल-पत्रके समान श्यामवर्ण, मेरी इष्ट वस्तुओंके दाता, मुनिजनोंकी रक्षा करनेवाले और राक्षसोंको एकमात्र मारनेवाले हैं, जो [अपने] राम-नामके उच्चारणमात्रसे ही पुरुषोंके पापका नाश करनेवाले हैं, समस्त देवताओं और राजाओंके स्वामी वे श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे सहायक हैं॥ ४॥ जो असुरकुल [को भस्म करने] के लिये अग्नि हैं, देवता और मनुष्यके समूहोंके हृदय-कमलको विकसित करनेके लिये सूर्य हैं, असंख्य गुणोंकी सीमा हैं, नील मेघ-मण्डलीके समान जिनका श्याम शरीर है और जो शममें मुनीश्वरोंको भी जीतनेवाले हैं, वे रघुकुलके अग्रणी श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे सहायक हैं॥ ५॥ जिन्होंने लक्ष्मणको साथ लेकर विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा की है और वायुवेगवाले बाणोंके समूहसे मारीच

विदलितहरचापो मेदिनीनन्दनाया
नयनकुमुदचन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥ ६ ॥

पवनतनयहस्तन्यस्तपादाम्बुजात्मा
कलशभववचोभिः प्राप्तमाहेन्द्रधन्वा।
अपरिमितशरौघैः पूर्णतूणीरधीरो
लघुनिहतकपीन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥ ७ ॥

कनकविमलकान्त्या सीतयालिङ्गिताङ्गो
मुनिमनुजवरेण्यः सर्ववागीशवन्द्यः।
स्वजननिकरबन्धुर्लीलया बद्धसेतुः
सुरमनुजकपीन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥ ८ ॥

निशाचरकी मायाका नाश किया है, जो शिवजीके धनुषका भंजन करनेवाले तथा पृथ्वीकी पुत्री (सीता) के नयनकुमुदको विकसित करनेके लिये चन्द्रमाके समान हैं, वे श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे सहायक हैं॥ ६ ॥ जो हनुमान्‌जीके हाथोंपर अपने चरण-कमलोंको रखे हुए हैं, जिन्होंने अगस्त्य ऋषिके कहनेसे इन्द्रधनुषको ग्रहण किया, जिनका तूणीर (तरकस) असंख्य बाणोंसे परिपूर्ण है, जो रणधीर हैं और जिन्होंने अति शीघ्रतासे वानरराज बालीको मार गिराया, वे श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे सहायक हैं॥ ७ ॥ जो सुवर्णके समान निर्मल और गौर कान्तिवाली सीताके सम्पर्कमें रहते हैं, ऋषियों और मनुष्योंने भी जिन्हें श्रेष्ठ एवं आदरणीय माना है, जो सम्पूर्ण वागीश्वरोंके वन्दनीय तथा अपने भक्त-समुदायकी बन्धुके समान रक्षा करनेवाले हैं, जिन्होंने लीलासे ही समुद्रपर पुल बाँध दिया था, वे देवता, मनुष्य तथा वानरोंके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे सहायक हैं॥ ८ ॥

यामुनाचार्यकृतं दिव्यं रामाष्टकमिदं शुभम्।
यः पठेत् प्रयतो भूत्वा स श्रीरामान्तिकं व्रजेत्॥ ९॥

इति श्रीयामुनाचार्यकृतं श्रीरामप्रेमाष्टकं सम्पूर्णम्।

४६—श्रीरामचन्द्राष्टकम्

चिदाकारो धाता परमसुखदः पावनतनु-
र्मुनीन्द्रैर्योगीन्द्रैर्यतिपतिसुरेन्द्रैर्हनुमता।
सदा सेव्यः पूर्णो जनकतनयाङ्गः सुरगुरू
रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम्॥ १॥
मुकुन्दो गोविन्दो जनकतनयालालितपदः
पदं प्राप्ता यस्याधमकुलभवा चापि शबरी।
गिरातीतोऽगम्यो विमलधिषणैर्वेदवचसा। रमा०॥ २॥

जो पुरुष यामुनाचार्यके द्वारा रचित इस दिव्य तथा कल्याणदायक श्रीरामप्रेमाष्टक-स्तोत्रका शुद्धभावसे पाठ करता है, वह श्रीरामचन्द्रजीके सन्निकट निवास प्राप्त करता है॥ ९॥

जो ज्ञानस्वरूप हैं, जगत्का धारण-पोषण करनेवाले हैं, परमसुखके दाता हैं, जिनका शरीर सबको पवित्र करनेवाला है, मुनीन्द्र, योगीन्द्र, यतीश्वर, देवेश्वर और हनुमान् जिनकी सदा सेवा करते हैं, जो पूर्ण हैं, सीताजी जिनकी अर्द्धांगिनी हैं; जो देवताओंके भी गुरु हैं; वे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मेरे चित्तमें सदा रमण करें॥ १॥ जो मुकुन्द, गोविन्द नामसे कहे जाते हैं, सीताजीने जिनके चरणोंका लालन किया है, [जिनका भजन करनेसे] नीच कुलमें उत्पन्न शबरी भी जिनके परमधामको प्राप्त हो गयी, जो विमल बुद्धिवालोंकी भी वाणीके परे हैं और वेदोंके वचनसे भी अगम्य हैं; वे

धराधीशोऽधीशः सुरनरवराणां रघुपतिः
किरीटी केयूरी कनककपिशः शोभितवपुः।
समासीनः पीठे रविशतनिभे शान्तमनसो। रमा० ॥ ३ ॥
वरेण्यः शारण्यः कपिपतिसखश्चान्तविधुरो
ललाटे काश्मीरो रुचिरगतिभङ्गः शशिमुखः।
नराकारो रामो यतिपतिनुतः संसृतिहरो। रमा० ॥ ४ ॥
विरूपाक्षः काश्यामुपदिशति यन्नाम शिवदं
सहस्त्रं यन्नाम्नां पठति गिरिजा प्रत्युषसि वै।
स्वलोके गायन्तीश्वरविधिमुखा यस्य चरितं। रमा० ॥ ५ ॥

लक्ष्मीपति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मेरे चित्तमें सदा रमण करें॥ २॥ जो पृथ्वीके अधीश्वर हैं, श्रेष्ठ देवताओं और मनुष्योंके भी स्वामी हैं, रघुकुलके नाथ हैं, जिन्होंने सिरपर मुकुट और बाहुओंमें केयूर धारण किये हैं, जो सोनेके समान पीतवर्ण (वस्त्र पहने हुए) हैं, जिनका शरीर शोभित हो रहा है और जो सैकड़ों सूर्यके समान देदीप्यमान सिंहासनपर बैठे हुए हैं; वे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी शान्त हृदयवाले मेरे चित्तमें सदा रमण करें॥ ३॥ जो श्रेष्ठ हैं, शरण देनेवाले हैं, सुग्रीवके मित्र हैं, अन्तसे रहित हैं, जिनके ललाटमें केशरका तिलक है, जिनकी चाल अति सुन्दर है, मुखारविन्द चन्द्रमाके समान आनन्ददायी है, जो मनुष्यरूपमें प्रतीत होनेपर भी राम (योगियोंके ध्येय परब्रह्म) हैं,* यतीश्वरगण जिनकी स्तुति करते हैं, जो जन्म-मृत्युरूप संसारके हरनेवाले हैं; वे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीरामचन्द्र मेरे चित्तमें सदा रमण करें॥ ४॥ काशीमें भगवान् शंकर जिनके कल्याणप्रद नामका [मुमूर्षु

---

* 'रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः' (इनमें योगीजन रमण करते हैं, इसलिये इनकी संज्ञा 'राम' है) इस व्युत्पत्तिके अनुसार यहाँ 'राम' का अर्थ परब्रह्म है।

परो धीरोऽधीरोऽसुरकुलभवश्चासुरहरः
परात्मा सर्वज्ञो नरसुरगणैर्गीतसुयशाः।
अहल्याशापघ्नः शरकरऋजुः कौशिकसखो। रमा० ॥ ६ ॥
हृषीकेशः शौरिर्धरणिधरशायी मधुरिपु-
रुपेन्द्रो वैकुण्ठो गजरिपुहरस्तुष्टमनसा।
बलिध्वंसी वीरो दशरथसुतो नीतिनिपुणो। रमा० ॥ ७ ॥
कविः सौमित्रीड्यः कपटमृगघाती वनचरो
रणश्लाघी दान्तो धरणिभरहर्ता सुरनुतः।
अमानी मानज्ञो निखिलजनपूज्यो हृदिशयो। रमा० ॥ ८ ॥

प्राणियोंको] उपदेश करते हैं, श्रीपार्वतीजी प्रतिदिन प्रभात-कालमें जिनके सहस्र-नामका पाठ करती हैं, शिव, ब्रह्मा आदि (देवगण) अपने-अपने लोकोंमें जिनके दिव्य चरित्रका गान करते हैं, वे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीरामचन्द्र मेरे चित्तमें सदा रमण करें॥ ५॥ जो अत्यन्त धीर होकर भी अधीर (अविद्याको दूर करनेवाले) हैं, असुर (सूर्य) के कुलमें उत्पन्न होकर भी असुर (राक्षसकुल) का संहार करनेवाले हैं, परमात्मा हैं, सर्वज्ञ हैं, मनुष्य तथा देवतागण जिनके सुयशका गान करते हैं, जिन्होंने अहल्याके शापका नाश किया, जिनके हाथमें बाण शोभित है, जो सरल स्वभाववाले और विश्वामित्रके मित्र हैं, वे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीरामचन्द्र मेरे चित्तमें सदा रमण करें॥ ६॥ जो हृषीकेश, शौरि, शेषशायी, मधुसूदन, उपेन्द्र, वैकुण्ठ आदि नामसे कहे जाते हैं, जिन्होंने प्रसन्न होकर गजराजके शत्रु (ग्राह) का नाश किया, जो बलिको पदच्युत करनेवाले हैं, वीर हैं, वे नीतिनिपुण, लक्ष्मीपति, दशरथनन्दन, भगवान् श्रीरामचन्द्र मेरे चित्तमें सदा रमण करें॥ ७॥ जो कवि (त्रिकाल-दर्शी) हैं, लक्ष्मणजीके पूज्य हैं, जिन्होंने वनमें भ्रमण करते हुए मायामृग (मारीच) का वध किया है, जो युद्धप्रिय हैं, दान्त (मन और

इदं रामस्तोत्रं वरममरदासेन रचित-
मुषःकाले भक्त्या यदि पठति यो भावसहितम्।
मनुष्यः स क्षिप्रं जनिमृतिभयं तापजनकं
परित्यज्य श्रेष्ठं रघुपतिपदं याति शिवदम्॥ ९॥

इति श्रीमद्रामदासपूज्यपादशिष्यश्रीमद्धंसदासशिष्येणामरदासाख्यकविना विरचितं श्रीरामचन्द्राष्टकं समाप्तम्।

इन्द्रियोंका दमन करनेवाले) हैं, पृथ्वीके भारको हरनेवाले तथा देवताओंसे स्तुत हैं, जो स्वयं मानरहित होकर दूसरोंके सम्मानके ज्ञाता (कृतज्ञ) हैं, सब लोगोंके पूज्य हैं, सबके हृदयमें निवास करनेवाले हैं, वे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीरामचन्द्र मेरे चित्तमें सदा रमण करें॥ ८॥ जो मनुष्य प्रातःकाल भक्ति और श्रद्धाके साथ अमरदास कविके बनाये हुए इस सुन्दर रामस्तोत्रका पाठ करेगा, वह बहुत शीघ्र ही तापजनक जन्म-मृत्युके भयका परित्याग कर श्रेष्ठ तथा कल्याणप्रद रघुनाथके पदको प्राप्त करेगा॥ ९॥

ॐ

श्रीकृष्णस्तोत्राणि

४७—गोविन्दाष्टकम्

चिदानन्दाकारं श्रुतिसरससारं समरसं
निराधाराधारं भवजलधिपारं परगुणम्।
रमाग्रीवाहारं व्रजवनविहारं हरनुतं
सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे॥ १॥
महाम्भोधिस्थानं स्थिरचरनिदानं दिविजपं
सुधाधारापानं विहगपतियानं यमरतम्।
मनोज्ञं सुज्ञानं मुनिजननिधानं ध्रुवपदं। सदा०॥ २॥

जो चिदानन्दस्वरूप है, श्रुतिका सुमधुर सार है, समरस है, निराश्रयोंका आश्रय है, संसारसागरका पार करानेवाला है, परगुणाश्रय है, श्रीलक्ष्मीजीके गलेका हार है, वृन्दावनविहारी है तथा भगवान् शंकरसे सम्पूजित है, अरे! उस परमानन्दकन्द गोविन्दका सदैव भजन कर॥ १॥ जिसका महासमुद्र आश्रय है, जो चराचरका आदिकारण है, देवोंका संरक्षक है, अमृतपान करानेवाला है, गरुड़ ही जिसका वाहन है,

धिया धीरैर्ध्येयं श्रवणपुटपेयं यतिवरै-
र्महावाक्यैर्ज्ञेयं त्रिभुवनविधेयं विधिपरम्।
मनोमानामेयं सपदि हृदि नेयं नवतनुं। सदा० ॥ ३ ॥

महामायाजालं विमलवनमालं मलहरं
सुभालं गोपालं निहतशिशुपालं शशिमुखम्।
कलातीतं कालं गतिहतमरालं मुररिपुं। सदा० ॥ ४ ॥

नभोबिम्बस्फीतं निगमगणगीतं समगतिं
सुरौघैः सम्प्रीतं दितिजविपरीतं पुरिशयम्।
गिरां मार्गातीतं स्वदितनवनीतं नयकरं। सदा० ॥ ५ ॥

जो यमों (अहिंसा, सत्यादि) में बसा हुआ है, मनोज्ञ है, ज्ञानस्वरूप है, मुनिजनोंका आश्रय है, ध्रुवस्थान है, अरे! उस परमानन्दकन्द गोविन्दको सदैव भज॥ २॥ धीर पुरुषोंद्वारा बुद्धिसे जिनका ध्यान किया जाता है और कर्णपुटोंसे पान किया जाता है, योगिजन जिसे महावाक्योंद्वारा जान पाते हैं, जो त्रिलोकीका विधाता और विधिवाक्योंसे परे है, जिसे मन प्रमाणोंद्वारा नहीं जान सकता तथा जो हृदयमें शीघ्र ही धारण करनेयोग्य है एवं नूतन तनुधारी है, अरे! उस परमानन्दकन्द गोविन्दका सदैव भजन कर॥ ३॥ जिसका मायारूपी महाजाल है, जिसने निर्मल वनमाला धारण किया है, जो मलका अपहरण करनेवाला है, जिसका सुन्दर भाल है, जो गोपाल है, शिशुपालवधकारी है, जिसका चाँद-सा मुखड़ा है, जो सम्पूर्ण कलातीत है, काल है, अपनी सुन्दर गतिसे हंसका भी विजय करनेवाला है, मुर दैत्यका शत्रु है, अरे! उस परमानन्दकन्द गोविन्दका सदैव भजन कर॥ ४॥ जो आकाशबिम्बके समान व्यापक है, जिसका शास्त्र संकीर्तन करते हैं, जो सबकी समान गति है, देवताओंसे परम प्रसन्न तथा दैत्योंका विरोधी है, बुद्धिरूपी गुहामें स्थित है, वाणीकी गतिसे

परेशं पद्मेशं शिवकमलजेशं शिवकरं
द्विजेशं देवेशं तनुकुटिलकेशं कलिहरम्।
खगेशं नागेशं निखिलभुवनेशं नगधरं। सदा० ॥ ६ ॥

रमाकान्तं कान्तं भवभयभयान्तं भवसुखं
दुराशान्तं शान्तं निखिलहृदि भान्तं भुवनपम्।
विवादान्तं दान्तं दनुजनिचयान्तं सुचरितं। सदा० ॥ ७ ॥

जगज्ज्येष्ठं श्रेष्ठं सुरपतिकनिष्ठं क्रतुपतिं
बलिष्ठं भूयिष्ठं त्रिभुवनवरिष्ठं वरवहम्।
स्वनिष्ठं धर्मिष्ठं गुरुगुणगरिष्ठं गुरुवरं। सदा० ॥ ८ ॥

बाहर है, नवनीतका आस्वादन करनेवाला है तथा नीतिका संस्थापक है, अरे! उस परमानन्दकन्द गोविन्दका सदैव भजन कर॥ ५ ॥ जो परमेश्वर है, लक्ष्मीपति है, शिव और ब्रह्माका भी स्वामी है, कल्याणकारी है, द्विज और देवोंका ईश्वर है, महीन और घुँघराले केशोंवाला है, कलिमलहारी है, आकाशसंचारी सूर्यका भी शासक है, धरातलधारी शेष है, सम्पूर्ण भुवनमण्डलका स्वामी है, गोवर्धनधारी है! अरे, उस परमानन्दकन्द गोविन्दका सदैव भजन कर॥ ६ ॥ जो लक्ष्मीपति है, विमल द्युति है, भवभयहारी है, संसारका सुख है, दुराशाका काल है, शान्त है, सम्पूर्ण हृदयोंमें भासमान है, त्रिभुवनका प्रतिपालक है, विवादका जहाँ अन्त हो जाता है, दमशील है, दैत्य-दल-दलन है, सुन्दर चरित्रवाला है, अरे! उस परमानन्दकन्द गोविन्दका सदैव भजन कर॥ ७ ॥ जो संसारमें सबसे बड़ा है, श्रेष्ठ है, सुरराज इन्द्रका अनुज (वामन) है, यज्ञपति है, बलिष्ठ है, भूयिष्ठ है, त्रिभुवनमें सर्वश्रेष्ठ है, वरदायक है, आत्मनिष्ठ है, धर्मिष्ठ है, महान् गुणोंसे गौरवयुक्त है, गुरुवर है, अरे! उस परमानन्दकन्द गोविन्दका सदैव भजन कर॥ ८ ॥

गदापाणेरेतद्दुरितदलनं दुःखशमनं
विशुद्धात्मा स्तोत्रं पठति मनुजो यस्तु सततम्।
स भुक्त्वा भोगौघं चिरमिह ततोऽपास्तवृजिनः
परं विष्णोः स्थानं व्रजति खलु वैकुण्ठभुवनम्॥ ९॥

इति श्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं गोविन्दाष्टकं सम्पूर्णम्।

४८—श्रीगोविन्दाष्टकम्

सत्यं ज्ञानमनन्तं नित्यमनाकाशं परमाकाशं
गोष्ठप्राङ्गणरिङ्गणलोलमनायासं परमायासम्।
मायाकल्पितनानाकारमनाकारं भुवनाकारं
क्ष्माया नाथमनाथं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ १॥

जो विशुद्धात्मा पुरुष गदापाणि गोविन्दके इस पापनाशन, दुःखदलन स्तोत्रको निरन्तर पढ़ता है, वह चिरकालपर्यन्त नाना भोगोंको भोगकर, पापोंसे रहित होकर भगवान् विष्णुके परमपावन धाम वैकुण्ठलोकको अवश्यमेव जाता है॥ ९॥

जो सत्य, ज्ञानस्वरूप, अनन्त एवं नित्य हैं, आकाशसे भिन्न होनेपर भी परम आकाशस्वरूप हैं, जो व्रजके प्रांगणमें चलते हुए चपल हो रहे हैं, परिश्रमसे रहित होकर भी बहुत थके-से हो जाते हैं, आकारहीन होनेपर भी मायानिर्मित नाना स्वरूप धारण किये विश्वरूपसे प्रकट हैं और पृथ्वीनाथ होकर भी अनाथ (बिना स्वामीके) हैं, उन परमानन्दमय गोविन्दकी वन्दना करो॥ १॥

मृत्स्नामत्सीहेति* यशोदाताडनशैशवसंत्रासं
व्यादितवक्त्रालोकितलोकालोकचतुर्दशलोकालिम्।
लोकत्रयपुरमूलस्तम्भं लोकालोकमनालोकं
लोकेशं परमेशं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ २॥

त्रैविष्टपरिपुवीरघ्नं क्षितिभारघ्नं भवरोगघ्नं
कैवल्यं नवनीताहारमनाहारं भुवनाहारम्।
वैमल्यस्फुटचेतोवृत्तिविशेषाभासमनाभासं
शैवं केवलशान्तं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ३॥

गोपालं भूलीलाविग्रहगोपालं कुलगोपालं
गोपीखेलनगोवर्धनधृतिलीलालालितगोपालम् ।

'क्या तू यहाँ मिट्टी खा रहा है?' यह पूछती हुई यशोदाद्वारा मारे जानेका जिन्हें शैशवकालोचित भय हो रहा है, मिट्टी न खानेका प्रमाण देनेके लिये जो मुँह फैलाकर उसमें लोकालोक पर्वतसहित चौदह भुवन दिखला देते हैं, त्रिभुवनरूपी नगरके जो आधारस्तम्भ हैं, आलोकसे परे (अर्थात् दर्शनातीत) होनेपर भी जो विश्वके आलोक (प्रकाश) हैं, उन परमानन्दस्वरूप, लोकनाथ, परमेश्वर गोविन्दको नमस्कार करो॥ २॥ जो दैत्यवीरोंके नाशक, पृथ्वीका भार हरनेवाले और संसाररोगको मिटा देनेवाले कैवल्य (मोक्ष) पद हैं, आहाररहित होकर भी नवनीतभोजी एवं विश्वभक्षी हैं, आभाससे पृथक् होनेपर भी मलरहित होनेके कारण स्वच्छ चित्तकी वृत्तिमें जिनका विशेषरूपसे आभास मिलता है, जो अद्वितीय, शान्त एवं कल्याणस्वरूप हैं, उन परमानन्दमय गोविन्दको प्रणाम करो॥ ३॥ जो गौओंके पालक हैं, जिन्होंने

---

* पाठान्तरम्—मृत्स्नामत्सि किमीह।

गोभिर्निगदितगोविन्दस्फुटनामानं बहुनामानं
गोपीगोचरदूरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ४॥
गोपीमण्डलगोष्ठीभेदं भेदावस्थमभेदाभं
शश्वद्गोखुरनिर्धूतोद्धतधूलीधूसरसौभाग्यम्।
श्रद्धाभक्तिगृहीतानन्दमचिन्त्यं चिन्तितसद्भावं
चिन्तामणिमहिमानं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ५॥
स्नानव्याकुलयोषिद्वस्त्रमुपादायागमुपारूढं
व्यादित्सन्तीरथ दिग्वस्त्रा ह्युपदातुमुपाकर्षन्तम्।
निर्धूतद्वयशोकविमोहं बुद्धं बुद्धेरन्तःस्थं
सत्तामात्रशरीरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ६॥

पृथ्वीपर लीला करनेके निमित्त गोपाल-शरीर धारण किया है, जो वंशद्वारा भी गोपाल (ग्वाला) हो चुके हैं, गोपियोंके साथ खेल करते हुए गोवर्धनधारणकी लीलासे जिन्होंने गोपजनोंका पालन किया था, गौओंने स्पष्टरूपसे जिनका गोविन्द नाम बतलाया था, जिनके अनेकों नाम हैं, उन गोप तथा गोचर (इन्द्रियोंके विषय) से पृथक् रहनेवाले परमानन्दरूप गोविन्दको प्रणाम करो॥ ४॥ जो गोपीजनोंकी गोष्ठीके भीतर प्रवेश करनेवाले हैं, भेदावस्थामें रहकर भी अभिन्न भासित होते हैं, जिन्हें सदा गायोंके खुरसे ऊपर उड़ी हुई धूलिद्वारा धूसरित होनेका सौभाग्य प्राप्त है, जो श्रद्धा और भक्ति रखनेसे आनन्दित होते हैं, अचिन्त्य होनेपर भी जिनके सद्भावका चिन्तन किया गया है, उन चिन्तामणिके समान महिमावाले परमानन्दमय गोविन्दकी वन्दना करो॥ ५॥ स्नानमें व्यग्र हुई गोपांगनाओंके वस्त्र लेकर जो वृक्षपर चढ़ गये थे और जब उन्होंने वस्त्र लेना चाहा तब देनेके लिये उन्हें पास बुलाने लगे, [ऐसा होनेपर भी] जो शोक-मोह दोनोंको ही मिटानेवाले ज्ञानस्वरूप एवं बुद्धिके भी परवर्ती हैं, सत्तामात्र ही जिनका शरीर है ऐसे परमानन्दस्वरूप

कान्तं कारणकारणमादिमनादिं कालमनाभासं
कालिन्दीगतकालियशिरसि मुहुर्नृत्यन्तं नृत्यन्तम्।
कालं कालकलातीतं कलिताशेषं कलिदोषघ्नं
कालत्रयगतिहेतुं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ७॥

वृन्दावनभुवि वृन्दारकगणवृन्दाराध्यं वन्देऽहं
कुन्दाभामलमन्दस्मेरसुधानन्दं सुहृदानन्दम्।
वन्द्याशेषमहामुनिमानसवन्द्यानन्दपदद्वन्द्वं
वन्द्याशेषगुणाब्धिं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥ ८॥

गोविन्दाष्टकमेतदधीते गोविन्दार्पितचेता यो
गोविन्दाच्युत माधवविष्णो गोकुलनायक कृष्णेति।

गोविन्दको नमस्कार करो॥ ६॥ जो कमनीय, कारणोंके भी आदिकारण, अनादि और आभासरहित कालस्वरूप होकर भी यमुनाजलमें रहनेवाले कालियनागके मस्तकपर बारंबार नृत्य कर रहे थे, जो कालरूप होनेपर भी कालकी कलाओंसे अतीत और सर्वज्ञ हैं, जो त्रिकालगतिके कारण और कलियुगीय दोषोंको नष्ट करनेवाले हैं, उन परमानन्दस्वरूप गोविन्दको प्रणाम करो॥ ७॥ जो वृन्दावनकी भूमिपर देववृन्द तथा वृन्दा नामकी वनदेवताके आराध्य देव हैं, जिनकी कुन्दके समान निर्मल मन्द मुसकानमें सुधाका आनन्द भरा है, जो मित्रोंके आनन्ददायी हैं उन भगवान्‌की मैं वन्दना करता हूँ। जिनका आमोदमय चरणयुगल समस्त वन्दनीय महामुनियोंके भी हृदयका वन्दनीय है, उन सम्पूर्ण शुभ गुणोंके सागर परमानन्दमय गोविन्दको नमस्कार करो॥ ८॥ जो भगवान् गोविन्दमें अपना चित्त लगा 'गोविन्द! अच्युत! माधव!

गोविन्दाङ्घ्रिसरोजध्यानसुधाजलधौतसमस्ताघो
गोविन्दं परमानन्दामृतमन्तःस्थं स समभ्येति॥ ९॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीगोविन्दाष्टकं सम्पूर्णम्।

४९—अच्युताष्टकम्

अच्युतं केशवं रामनारायणं
कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं
जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे॥ १॥

अच्युतं केशवं सत्यभामाधवं
माधवं श्रीधरं राधिकाराधितम्।
इन्दिरामन्दिरं चेतसा सुन्दरं
देवकीनन्दनं नन्दजं सन्दधे॥ २॥

विष्णो! गोकुलनायक! कृष्ण!' इत्यादि उच्चारणपूर्वक उनके चरणकमलोंके ध्यानरूपी सुधासलिलसे अपना समस्त पाप धोकर इस गोविन्दाष्टकका पाठ करता है, वह अपने अन्तःकरणमें विद्यमान परमानन्दामृतरूप गोविन्दको प्राप्त कर लेता है॥ ९॥

अच्युत, केशव, राम, नारायण, कृष्ण, दामोदर, वासुदेव, हरि, श्रीधर, माधव, गोपिकावल्लभ तथा जानकीनायक रामचन्द्रजीको मैं भजता हूँ॥ १॥ अच्युत, केशव, सत्यभामापति, लक्ष्मीपति, श्रीधर, राधिकाजीद्वारा आराधित, लक्ष्मीनिवास, परम सुन्दर, देवकीनन्दन, नन्दकुमारका चित्तसे ध्यान

विष्णवे जिष्णवे शङ्खिने चक्रिणे
रुक्मिणीरागिणे जानकीजानये।
वल्लवीवल्लभायार्चितायात्मने
कंसविध्वंसिने वंशिने ते नमः॥ ३॥

कृष्ण गोविन्द हे राम नारायण
श्रीपते वासुदेवाजित श्रीनिधे।
अच्युतानन्त हे माधवाधोक्षज
द्वारकानायक द्रौपदीरक्षक॥ ४॥

राक्षसक्षोभितः सीतया शोभितो
दण्डकारण्यभूपुण्यताकारणः।
लक्ष्मणेनान्वितो वानरैः सेवितो-
ऽगस्त्यसम्पूजितो राघवः पातु माम्॥ ५॥

करता हूँ॥ २॥ जो विभु हैं, विजयी हैं, शंख-चक्रधारी हैं, रुक्मिणीजीके परम प्रेमी हैं, जानकीजी जिनकी धर्मपत्नी हैं तथा जो व्रजांगनाओंके प्राणाधार हैं उन परमपूज्य, आत्मस्वरूप, कंसविनाशक मुरलीमनोहर आपको नमस्कार करता हूँ॥ ३॥ हे कृष्ण! हे गोविन्द! हे राम! हे नारायण! हे रमानाथ! हे वासुदेव! हे अजेय! हे शोभाधाम! हे अच्युत! हे अनन्त! हे माधव! हे अधोक्षज (इन्द्रियातीत)! हे द्वारकानाथ! हे द्रौपदीरक्षक! (मुझपर कृपा कीजिये)॥ ४॥ जो राक्षसोंपर अति कुपित हैं, श्रीसीताजीसे सुशोभित हैं, दण्डकारण्यकी भूमिकी पवित्रताके कारण हैं, श्रीलक्ष्मणजीद्वारा अनुगत हैं, वानरोंसे सेवित हैं और श्रीअगस्त्यजीसे पूजित हैं, वे रघुवंशी श्रीरामचन्द्रजी मेरी रक्षा करें॥ ५॥

धेनुकारिष्टकानिष्टकृद्द्वेषिहा
केशिहा कंसहृद्वंशिकावादकः।
पूतनाकोपकः सूरजाखेलनो
बालगोपालकः पातु मां सर्वदा॥ ६॥

विद्युदुद्योतवत्प्रस्फुरद्वाससं
प्रावृडम्भोदवत्प्रोल्लसद्विग्रहम्।
वन्यया मालया शोभितोरःस्थलं
लोहिताङ्घ्रिद्वयं वारिजाक्षं भजे॥ ७॥

कुञ्चितैः कुन्तलैर्भ्राजमानाननं
रत्नमौलिं लसत्कुण्डलं गण्डयोः।
हारकेयूरकं कङ्कणप्रोज्ज्वलं
किङ्किणीमञ्जुलं श्यामलं तं भजे॥ ८॥

धेनुक और अरिष्टासुर आदिका अनिष्ट करनेवाले, शत्रुओंका ध्वंस करनेवाले, केशी और कंसका वध करनेवाले, वंशीको बजानेवाले, पूतनापर कोप करनेवाले, यमुनातटविहारी बालगोपाल मेरी सदा रक्षा करें॥ ६॥ विद्युत्प्रकाशके सदृश जिनका पीताम्बर विभासित हो रहा है, वर्षाकालीन मेघोंके समान जिनका अति शोभायमान शरीर है, जिनका वक्षःस्थल वनमालासे विभूषित है और चरणयुगल अरुणवर्ण हैं, उन कमलनयन श्रीहरिको भजता हूँ॥ ७॥ जिनका मुख घुँघराली अलकोंसे सुशोभित है, मस्तकपर मणिमय मुकुट शोभा दे रहा है तथा कपोलोंपर कुण्डल सुशोभित हो रहे हैं; उज्ज्वल हार, केयूर (बाजूबन्द), कंकण और किंकिणीकलापसे सुशोभित उन मंजुलमूर्ति श्रीश्यामसुन्दरको भजता हूँ॥ ८॥

अच्युतस्याष्टकं यः पठेदिष्टदं
प्रेमतः प्रत्यहं पूरुषः सस्पृहम्।
वृत्ततः सुन्दरं कर्तृविश्वम्भर-
स्तस्य वश्यो हरिर्जायते सत्वरम्॥ ९॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतमच्युताष्टकं सम्पूर्णम्।

५०—कृष्णाष्टकम्

श्रियाश्लिष्टो विष्णुः स्थिरचरवपुर्वेदविषयो
धियां साक्षी शुद्धो हरिरसुरहन्ताब्जनयनः।
गदी शङ्खी चक्री विमलवनमाली स्थिररुचिः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः॥ १॥

जो पुरुष इस अति सुन्दर छन्दवाले और अभीष्ट फलदायक अच्युताष्टकको प्रेम और श्रद्धासे नित्य पढ़ता है, विश्वम्भर विश्वकर्ता श्रीहरि शीघ्र ही उसके वशीभूत हो जाते हैं॥ ९॥

जो श्रीलक्ष्मीजीद्वारा आलिंगित हैं, व्यापक हैं, सम्पूर्ण चराचर जिनका शरीर है, श्रुति-संवेद्य हैं, समस्त बुद्धियोंके साक्षी हैं, शुद्ध हैं, हरि हैं, दैत्यदलन हैं, कमलनयन हैं, शंख, चक्र, गदा और विमल वनमाला धारण किये हुए हैं और स्थिरकान्तिमय हैं, वे शरणागतवत्सल, निखिल भुवनेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रोंके विषय हों॥ १॥

यतः सर्वं जातं वियदनिलमुख्यं जगदिदं
स्थितौ निःशेषं योऽवति निजसुखांशेन मधुहा।
लये सर्वं स्वस्मिन् हरति कलया यस्तु स विभुः। शरण्यो० ॥ २ ॥
असूनायम्यादौ यमनियममुख्यैः सुकरणै-
र्निरुध्येदं चित्तं हृदि विमलमानीय सकलम्।
यमीड्यं पश्यन्ति प्रवरमतयो मायिनमसौ। शरण्यो० ॥ ३ ॥
पृथिव्यां तिष्ठन् यो यमयति महीं वेद न धरा
यमित्यादौ वेदो वदति जगतामीशममलम्।
नियन्तारं ध्येयं मुनिसुरनृणां मोक्षदमसौ। शरण्यो० ॥ ४ ॥
महेन्द्रादिर्देवो जयति दितिजान्यस्य बलतो
न कस्य स्वातन्त्र्यं क्वचिदपि कृतौ यत्कृतिमृते।
कवित्वादेर्गर्वं परिहरति योऽसौ विजयिनः। शरण्यो० ॥ ५ ॥

(सृष्टिकालमें) आकाश और पवनादिसे लेकर यह सम्पूर्ण जगत् जिनसे उत्पन्न हुआ है, स्थितिके समय भी जो मधुसूदन अपने आनन्दांशसे उसकी सर्वथा रक्षा करते हैं तथा लयके समय जो लीलामात्रसे उसे अपनेहीमें लीन कर लेते हैं वे विभु, शरणागतवत्सल निखिल भुवनेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रोंके विषय हों॥ २॥ जिस स्तवनीय मायापतिको बुधजन, यम-नियमादि उपायोंसे पहले प्राणोंको अपने अधीनकर फिर चित्तनिरोधद्वारा इस सम्पूर्ण जगत्को लीन करके अपने अन्तःकरणमें देखते हैं वे ही शरणागतवत्सल, निखिल भुवनेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रोंके विषय हों॥ ३॥ पृथ्वीमें रहकर जो पृथ्वीका नियमन करते हैं परन्तु पृथ्वी जिन्हें नहीं जानती (**यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिवीं यमयति यं पृथिवी न वेद**) आदि श्रुतियोंसे वेद जिन अमलस्वरूपको जगत्का स्वामी, नियामक, ध्येय और देवता, मनुष्य तथा मुनिजनोंको मोक्ष देनेवाला बतलाता है, वे शरणागतपालक, निखिल भुवनेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रोंके विषय हों॥ ४॥ जिनके बलसे इन्द्रादि देवगण

विना यस्य ध्यानं व्रजति पशुतां सूकरमुखां
विना यस्य ज्ञानं जनिमृतिभयं याति जनता।
विना यस्य स्मृत्या कृमिशतजनिं याति स विभुः। शरण्यो० ॥ ६ ॥

नरातङ्कोत्तङ्कः शरणशरणो भ्रान्तिहरणो
घनश्यामः कामो व्रजशिशुवयस्योऽर्जुनसखः।
स्वयम्भूर्भूतानां जनक उचिताचारसुखदः। शरण्यो० ॥ ७ ॥

यदा धर्मग्लानिर्भवति जगतां क्षोभकरणी
तदा लोकस्वामी प्रकटितवपुः सेतुधृगजः।
सतां धाता स्वच्छो निगमगणगीतो व्रजपतिः। शरण्यो० ॥ ८ ॥

दैत्योंको जीतते हैं, जिनकी कृतिके बिना किसी कार्यमें कोई भी स्वतन्त्र नहीं है तथा जो कवियोंके कवित्वाभिमानको और विजयियोंके विजयाभिमानको हर लेते हैं, वे शरणागतवत्सल निखिल भुवनेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रोंके विषय हों॥ ५॥ जिनका ध्यान किये बिना मनुष्य सूकरादि पशु-योनियोंमें पड़ते हैं, जिनके ज्ञान बिना जनता जन्म-मरणके भयको प्राप्त होती है तथा जिनका स्मरण किये बिना सैकड़ों कीट-पतंगादि योनियोंमें गिरना पड़ता है, वे शरणागतवत्सल, निखिल भुवनेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रोंके विषय हों॥ ६॥ जो प्राणियोंके भयको दूर करनेवाले हैं, शरणागतोंको शरण देनेवाले तथा भ्रमको दूर करनेवाले हैं, मेघश्याम हैं, सुन्दर हैं, व्रजबालकोंके समवयस्क साथी और अर्जुनके सखा हैं, स्वयम्भू हैं, समस्त प्राणियोंके पिता हैं तथा उचित आचरणोंद्वारा सुख देनेवाले हैं, वे शरणागतवत्सल, निखिल भुवनेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रोंके विषय हों॥ ७॥ जब संसारको क्षुब्ध कर देनेवाला धर्मका ह्रास होता है, उस समय जो लोक-मर्यादाकी रक्षा करनेवाले लोकेश्वर, संत-प्रतिपालक, वेदवर्णित शुद्ध एवं अजन्मा भगवान् उनकी रक्षाके लिये

इति हरिरखिलात्माराधितः शङ्करेण
श्रुतिविशदगुणोऽसौ मातृमोक्षार्थमाद्यः।
यतिवरनिकटे श्रीयुक्त आविर्बभूव
स्वगुणवृत उदारः शङ्खचक्राब्जहस्तः॥ ९॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं कृष्णाष्टकं सम्पूर्णम्।

५१—श्रीकृष्णाष्टकम्

भजे व्रजैकमण्डनं समस्तपापखण्डनं
स्वभक्तचित्तरञ्जनं सदैव नन्दनन्दनम्।
सुपिच्छगुच्छमस्तकं सुनादवेणुहस्तकं
अनङ्गरङ्गसागरं नमामि कृष्णनागरम्॥ १॥

शरीर धारण करते हैं, वे ही शरणागतवत्सल, निखिल भुवनेश्वर व्रजराज श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रोंके विषय हों॥ ८॥ इस प्रकार अपनी माताकी मुक्तिके लिये श्रीशंकराचार्यजीने श्रुतिकथित गुणोंवाले, निखिलात्मा आदि नारायण हरिकी आराधना की तो अपने उदार गुणोंसे युक्त श्रीभगवान् लक्ष्मीजीसहित उनके निकट शंख, चक्र, पद्मादि लिये प्रकट हो गये॥ ९॥

व्रज-भूमिके एकमात्र आभूषण, समस्त पापोंको नष्ट करनेवाले तथा अपने भक्तोंके चित्तोंको आनन्दित करनेवाले नन्दनन्दनको सर्वदा भजता हूँ, जिनके मस्तकपर मनोहर मोर-पंखका मुकुट है, हाथोंमें सुरीली बाँसुरी है तथा जो काम-कलाके सागर हैं, उन नटनागर श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करता हूँ॥ १॥

मनोजगर्वमोचनं विशाललोललोचनं
विधूतगोपशोचनं नमामि पद्मलोचनम्।
करारविन्दभूधरं स्मितावलोकसुन्दरं
महेन्द्रमानदारणं नमामि कृष्णवारणम्॥ २॥

कदम्बसूनकुण्डलं सुचारुगण्डमण्डलं
व्रजाङ्गनैकवल्लभं नमामि कृष्णदुर्लभम्।
यशोदया समोदया सगोपया सनन्दया
युतं सुखैकदायकं नमामि गोपनायकम्॥ ३॥

सदैव पादपङ्कजं मदीयमानसे निजं
दधानमुत्तमालकं नमामि नन्दबालकम्।
समस्तदोषशोषणं समस्तलोकपोषणं
समस्तगोपमानसं नमामि नन्दलालसम्॥ ४॥

कामदेवका मान मर्दन करनेवाले, बड़े-बड़े सुन्दर नेत्रोंवाले तथा व्रजगोपोंका शोक हरनेवाले कमलनयन भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने अपने करकमलोंपर गिरिराजको धारण किया था तथा जिनकी मुसकान और चितवन अति मनोहर है, देवराज इन्द्रका मान मर्दन करनेवाले उन श्रीकृष्णरूपी गजराजको नमस्कार करता हूँ॥ २॥ जिनके कानोंमें कदम्ब-पुष्पोंके कुण्डल हैं, परम सुन्दर कपोल हैं तथा व्रजबालाओंके जो एकमात्र प्राणाधार हैं, उन दुर्लभ कृष्णचन्द्रको नमस्कार करता हूँ; जो गोपगण और नन्दजीके सहित अतिप्रसन्ना यशोदाजीसे युक्त हैं और एकमात्र आनन्ददायक हैं, उन गोपनायक गोपालको नमस्कार करता हूँ॥ ३॥ जिन्होंने अपने चरण-कमलोंको मेरे मनरूपी सरोवरमें स्थापित कर रखा है, उन अति सुन्दर

भुवो भरावतारकं भवाब्धिकर्णधारकं
यशोमतीकिशोरकं नमामि चित्तचोरकम्।
दृगन्तकान्तभङ्गिनं सदासदालसङ्गिनं
दिने दिने नवं नवं नमामि नन्दसम्भवम्॥ ५॥

गुणाकरं सुखाकरं कृपाकरं कृपापरं
सुरद्विषन्निकन्दनं नमामि गोपनन्दनम्।
नवीनगोपनागरं नवीनकेलिलम्पटं
नमामि मेघसुन्दरं तडित्प्रभालसत्पटम्॥ ६॥

समस्तगोपनन्दनं हृदम्बुजैकमोदनं
नमामि कुञ्जमध्यगं प्रसन्नभानुशोभनम्।
निकामकामदायकं दृगन्तचारुसायकं
रसालवेणुगायकं नमामि कुञ्जनायकम्॥ ७॥

अलकोंवाले नन्दकुमारको नमस्कार करता हूँ तथा समस्त दोषोंको दूर करनेवाले समस्त लोकोंका पालन करनेवाले और समस्त व्रजगोपोंके हृदय तथा नन्दजीकी लालसारूप श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करता हूँ॥ ४॥ भूमिका भार उतारनेवाले संसारसागरके कर्णधार मनोहर यशोदाकुमारको नमस्कार करता हूँ; अति कमनीय कटाक्षवाले, सदैव सुन्दर भूषण धारण करनेवाले नित्य नूतन नन्दकुमारको नमस्कार करता हूँ॥ ५॥ गुणोंके भण्डार, सुखसागर, कृपानिधान और कृपालु गोपालको, जो देव शत्रुओंको ध्वंस करनेवाले हैं, नमस्कार करता हूँ; नित्य नूतन लीलाविहारी, मेघश्याम नटनागर गोपालको, जो बिजलीकी-सी आभावाला अति सुन्दर पीताम्बर धारण किये हुए हैं, नमस्कार करता हूँ॥ ६॥ जो समस्त गोपोंको आनन्दित करनेवाले और

विदग्धगोपिकामनोमनोज्ञतल्पशायिनं
नमामि कुञ्जकानने प्रवृद्धवह्निपायिनम्।
किशोरकान्ति रञ्जितं दृगञ्जनं सुशोभितं
गजेन्द्रमोक्षकारिणं नमामि श्रीविहारिणम्॥ ८॥
यदा तदा यथा तथा तथैव कृष्णसत्कथा
मया सदैव गीयतां तथा कृपा विधीयताम्।
प्रमाणिकाष्टकद्वयं जपत्यधीत्य यः पुमान्
भवेत्स नन्दनन्दने भवे भवे सुभक्तिमान्॥ ९॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं श्रीकृष्णाष्टकं सम्पूर्णम्।

हृदयकमलको विकसित करनेवाले, देदीप्यमान सूर्यके समान शोभायमान हैं, उन कुंजमध्यवर्ती श्यामसुन्दरको नमस्कार करता हूँ। जो कामनाओंको भलीभाँति पूर्ण करनेवाले हैं, जिनकी चारु चितवन बाणोंके समान है, सुमधुर वेणु बजाकर गान करनेवाले उन कुंजनायकको नमस्कार करता हूँ॥ ७॥ चतुर गोपिकाओंके मनरूपी सुकोमल शय्यापर शयन करनेवाले तथा कुंजवनमें बढ़ती हुई दावाग्निको पान कर जानेवाले, किशोरावस्थाकी कान्तिसे सुशोभित अंजनयुक्त सुन्दर नेत्रोंवाले, गजेन्द्रको ग्राहसे मुक्त करनेवाले, श्रीजीके साथ विहार करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करता हूँ॥ ८॥ प्रभो! मेरे ऊपर ऐसी कृपा हो कि जब-तब जैसी भी परिस्थितिमें रहूँ, सदा आपकी सत्कथाओंका गान करूँ। जो पुरुष इन दोनों प्रामाणिक अष्टकोंका पाठ या जप करेगा वह जन्म-जन्ममें नन्दनन्दन श्यामसुन्दरकी भक्तिसे युक्त होगा॥ ९॥

५२—भगवत्स्तुतिः

भीष्म उवाच

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा
भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि।
स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं
प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः॥ १॥

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं
रविकरगौरवराम्बरं दधाने।
वपुरलककुलावृताननाब्जं
विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥ २॥

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्-
कचलुलितश्रमवार्यलङ्कृतास्ये।
मम निशितशरैर्विभिद्यमान-
त्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा॥ ३॥

भीष्मजी बोले—जो निजानन्दमें मग्न है और कभी विहार (लीला) करनेकी इच्छासे प्रकृतिको स्वीकार करता है तब उससे संसारका प्रवाह चलता है ऐसे भूमास्वरूप, यदुश्रेष्ठ भगवान् कृष्णमें मैंने अपनी तृष्णारहित बुद्धि समर्पित कर दी है॥ १॥ त्रिभुवनसुन्दर तमालवर्ण सूर्यकिरणोंके समान उज्ज्वल और पवित्र वस्त्र धारण करनेवाले तथा जिनका मुखकमल अलकावलीसे आवृत है, उन अर्जुन-सखामें मेरी निष्काम प्रीति हो॥ २॥ युद्धमें घोड़ोंकी टापसे उड़ी हुई रजसे धूसरित तथा चारों ओर छिटकी हुई

सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये
निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य।
स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा
हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु॥ ४॥

व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य
स्वजनवधाद्विमुखस्य दोषबुद्ध्या।
कुमतिमहरदात्मविद्यया य-
श्चरणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु॥ ५॥

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञा-
मृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गु-
र्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः॥ ६॥

अलकोंवाले, परिश्रमजन्य पसीनेकी बूँदोंसे सुशोभित मुखवाले और मेरे तीक्ष्ण बाणोंसे विदीर्ण हुई त्वचावाले, सुन्दर कवचधारी कृष्णमें मेरी आत्मा प्रवेश करे॥ ३॥ सखाके वचनोंको सुनकर शीघ्र ही अपनी और विपक्षियोंकी सेनाओंके बीचमें रथको खड़ा करके अपने भृकुटि-विलाससे विपक्षी सैनिकोंकी आयुको हरनेवाले पार्थ-सखामें मेरी प्रीति हो॥ ४॥ दूर खड़ी सेनाके मुखका निरीक्षण करके स्वजन-वधमें दोषबुद्धिसे निवृत्त हुए अर्जुनकी कुमतिको जिसने आत्मविद्या (गीता-ज्ञान) द्वारा हर लिया था, उस परमपुरुष (कृष्ण)के चरणोंमें मेरी प्रीति हो॥ ५॥ मेरी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिये, अपनी प्रतिज्ञा छोड़कर रथसे उतर पड़े और सिंह जैसे हाथीको मारने दौड़ता है उसी तरह चक्रको लेकर पृथ्वी कँपाते हुए कृष्ण (मेरी ओर) दौड़े, उस समय

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः
क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे।
प्रसभमभिससार मद्वधार्थं
स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः॥ ७॥

विजयरथकुटुम्ब आत्ततोत्रे
धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये।
भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षो-
र्यमिह निरीक्ष्य हता गताः सरूपम्॥ ८॥

ललितगतिविलासवल्गुहास-
प्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः।
कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः
प्रकृतिमगन्किल यस्य गोपवध्वः॥ ९॥

शीघ्रताके कारण उनका दुपट्टा (पृथ्वीको सान्त्वना देनेके लिये) गिर पड़ा था॥ ६॥ मुझ आततायीके तीक्ष्ण बाणोंसे विदीर्ण होकर, फटे हुए कवचवाले, घाव और रुधिरसे सने हुए, जो भगवान् मुकुन्द मुझे हठपूर्वक मारनेको दौड़े, वे मेरी गति हों॥ ७॥ अर्जुनके रथमें—चाबुक लेकर और घोड़ोंकी लगाम पकड़कर बैठे हुए (अहा!) ऐसी शोभासे दर्शनीय भगवान्में मुझ मरणाकांक्षीकी प्रीति हो; जिनका दर्शन करके इस युद्धमें मरे हुए वीर भगवत्-स्वरूपको प्राप्त हो गये हैं॥ ८॥ ललित गति, विलास, मनोहर हास्य और प्रेमपूर्ण निरीक्षणके समय बहुत मान धारण करनेवाली तथा (कृष्णके अन्तर्धान हो जानेपर) उन्मत्त होकर भगवत्-चरित्रोंका अनुकरण करनेवाली गोपवधुएँ जिनके स्वरूपको निश्चय ही प्राप्त हो गयीं॥ ९॥

मुनिगणनृपवर्यसङ्कुलेऽन्तः-
सदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम्।
अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो
मम दृशिगोचर एष आविरात्मा॥ १०॥
तमिममहमजं शरीरभाजां
हृदि हृदि धिष्ठितमात्मकल्पितानाम्।
प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं
समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः॥ ११॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे नवमेऽध्याये भीष्मकृता भगवत्स्तुतिः सम्पूर्णा।

युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें, मुनिगण और नृपतियोंके समक्ष जिनकी अग्रपूजा हुई, अहो! ऐसे दर्शनीय भगवान् ही ये मेरी दृष्टिके सामने प्रकट हुए हैं॥ १०॥ मैं भेद और मोहसे रहित होकर अपने ही रचे हुए प्रत्येक शरीरधारीके हृदयमें स्थित सूर्यकी तरह एक होते हुए भी नाना दृष्टिसे अनेक रूप दीखनेवाले और जन्मरहित इस परमात्मा (कृष्ण) की शरणमें जाता हूँ।॥ ११॥

५३—गोविन्ददामोदरस्तोत्रम्

अग्रे कुरूणामथ पाण्डवानां दुःशासनेनाहृतवस्त्रकेशा।
कृष्णा तदाक्रोशदनन्यनाथा गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १॥
श्रीकृष्ण विष्णो मधुकैटभारे भक्तानुकम्पिन् भगवन् मुरारे।
त्रायस्व मां केशव लोकनाथ गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २॥
विक्रेतुकामाखिलगोपकन्या मुरारिपादार्पितचित्तवृत्तिः।
दध्यादिकं मोहवशादवोचद् गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३॥
उलूखले सम्भृततण्डुलांश्च संघट्टयन्त्यो मुसलैः प्रमुग्धाः।
गायन्ति गोप्यो जनितानुरागा गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४॥
काचित्कराम्भोजपुटे निषण्णं क्रीडाशुकं किंशुकरक्ततुण्डम्।
अध्यापयामास सरोरुहाक्षी गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५॥

[जिस समय] कौरव और पाण्डवोंके सामने भरी सभामें दुःशासनने द्रौपदीके वस्त्र और बालोंको पकड़कर खींचा, उस समय जिसका कोई दूसरा नाथ नहीं है ऐसी द्रौपदीने रोकर पुकारा—'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!'॥ १॥ 'हे श्रीकृष्ण! हे विष्णो! हे मधुकैटभको मारनेवाले! हे भक्तोंके ऊपर अनुकम्पा करनेवाले! हे भगवन्! हे मुरारे! हे केशव! हे लोकेश्वर! हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो'॥ २॥ जिनकी चित्तवृत्ति मुरारिके चरणकमलोंमें लगी हुई है, वे सभी गोपकन्याएँ दूध-दही बेचनेकी इच्छासे घरसे चलीं। उनका मन तो मुरारिके पास था; अतः प्रेमवश सुध-बुध भूल जानेके कारण 'दही लो दही' इसके स्थानपर जोर-जोरसे 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' आदि पुकारने लगीं॥ ३॥ ओखलीमें धान भरे हुए हैं, उन्हें मुग्धा गोपरमणियाँ मूसलोंसे कूट रही हैं और कूटते-कूटते कृष्णप्रेममें विभोर होकर 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इस प्रकार गायन करती जाती हैं॥ ४॥ कोई कमलनयनी बाला मनोविनोदके लिये पाले हुए

गृहे गृहे गोपवधूसमूहः प्रतिक्षणं पिञ्जरसारिकाणाम्।
स्खलद्गिरं वाचयितुं प्रवृत्तो गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६ ॥
पर्य्यङ्किकाभाजमलं कुमारं प्रस्वापयन्त्योऽखिलगोपकन्याः।
जगुः प्रबन्धं स्वरतालबन्धं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ७ ॥
रामानुजं वीक्षणकेलिलोलं गोपी गृहीत्वा नवनीतगोलम्।
आबालकं बालकमाजुहाव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ८ ॥
विचित्रवर्णाभरणाभिरामेऽभिधेहि वक्त्राम्बुजराजहंसि।
सदा मदीये रसनेऽग्ररङ्गे गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ९ ॥
अङ्काधिरूढं शिशुगोपगूढं स्तनं धयन्तं कमलैककान्तम्।
सम्बोधयामास मुदा यशोदा गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १० ॥

अपने करकमलपर बैठे किंशुककुसुमके समान रक्तवर्ण चोंचवाले सुग्गेको पढ़ा रही थी—पढ़ो तो तोता! 'गोविन्द! दामोदर! माधव!'॥ ५ ॥ प्रत्येक घरमें समूह-की-समूह गोपांगनाएँ पिंजरोंमें पाली हुई अपनी मैनाओंसे उनकी लड़खड़ाती हुई वाणीको क्षण-क्षणमें 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' इत्यादि रूपसे कहलानेमें लगी रहती थीं॥ ६ ॥ पालनेमें पौढ़े हुए अपने नन्हें बच्चेको सुलाती हुई सभी गोपकन्याएँ ताल-स्वरके साथ 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इस पदको ही गाती जाती थीं॥ ७॥ हाथमें माखनका गोला लेकर मैया यशोदाने आँख-मिचौनीकी क्रीडामें व्यस्त बलरामके छोटे भाई कृष्णको बालकोंके बीचसे पकड़कर पुकारा—'अरे गोविन्द! अरे दामोदर! अरे माधव!'॥ ८ ॥ विचित्र वर्णमय आभरणोंसे अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होनेवाली हे मुखकमलकी राजहंसीरूपिणी मेरी रसने! तू सर्वप्रथम 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इस ध्वनिका ही विस्तार कर॥ ९ ॥ अपनी गोदमें बैठकर दूध पीते हुए बाल-गोपालरूपधारी भगवान् लक्ष्मीकान्तको लक्ष्य करके प्रेमानन्दमें मग्न हुई यशोदामैया इस प्रकार बुलाया करती थीं—'ऐ मेरे गोविन्द! ऐ मेरे दामोदर!

क्रीडन्तमन्तर्व्रजमात्मजं स्वं समं वयस्यैः पशुपालबालैः।
प्रेम्णा यशोदा प्रजुहाव कृष्णं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ११॥
यशोदया गाढमुलूखलेन गोकण्ठपाशेन निबध्यमानः।
रुरोद मन्दं नवनीतभोजी गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १२॥
निजाङ्गणे कङ्कणकेलिलोलं गोपी गृहीत्वा नवनीतगोलम्।
आमर्दयत्पाणितलेन नेत्रे गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १३॥
गृहे गृहे गोपवधूकदम्बाः सर्वे मिलित्वा समवाययोगे।
पुण्यानि नामानि पठन्ति नित्यं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १४॥
मन्दारमूले वदनाभिरामं बिम्बाधरे पूरितवेणुनादम्।
गोगोपगोपीजनमध्यसंस्थं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १५॥

ऐ मेरे माधव! जरा बोलो तो सही!'॥ १०॥ अपने समवयस्क गोपबालकोंके साथ गोष्ठमें खेलते हुए अपने प्यारे पुत्र कृष्णको यशोदामैयाने अत्यन्त स्नेहके साथ पुकारा—'अरे ओ गोविन्द! ओ दामोदर! अरे माधव! [कहाँ चला गया?]'॥ ११॥ अधिक चपलता करनेके कारण यशोदामैयाने गौ बाँधनेकी रस्सीसे खूब कसकर ओखलीमें उन घनश्यामको बाँध दिया तब तो वे माखनभोगी कृष्ण धीरे-धीरे [आँखें मलते हुए] सिसक-सिसककर 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' कहते हुए रोने लगे॥ १२॥ श्रीनन्दनन्दन अपने ही घरके आँगनमें अपने हाथके कंकणसे खेलनेमें लगे हुए हैं, उसी समय मैयाने धीरेसे जाकर उनके दोनों कमलनयनोंको अपनी हथेलीसे मूँद लिया तथा दूसरे हाथमें नवनीतका गोला लेकर प्रेमपूर्वक कहने लगी—'गोविन्द! दामोदर! माधव [लो देखो, यह माखन खा लो]'॥ १३॥ व्रजके प्रत्येक घरमें गोपांगनाएँ एकत्र होनेका अवसर पानेपर झुंड-की-झुंड आपसमें मिलकर उन मनमोहन माधवके 'गोविन्द, दामोदर, माधव' इन पवित्र नामोंको पढ़ा करती हैं॥ १४॥ जिनका मुखारविन्द बड़ा ही मनोहर है, जो अपने बिम्बके समान अरुण अधरोंपर रखकर

उत्थाय गोप्योऽपररात्रभागे स्मृत्वा यशोदासुतबालकेलिम्।
गायन्ति प्रोच्चैर्दधि मन्थयन्त्यो गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १६॥
जग्धोऽथ दत्तो नवनीतपिण्डो गृहे यशोदा विचिकित्सयन्ती।
उवाच सत्यं वद हे मुरारे गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १७॥
अभ्यर्च्य गेहं युवतिः प्रवृद्धप्रेमप्रवाहा दधि निर्ममन्थ।
गायन्ति गोप्योऽथ सखीसमेता गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १८॥
क्वचित् प्रभाते दधिपूर्णपात्रे निक्षिप्य मन्थं युवती मुकुन्दम्।
आलोक्य गानं विविधं करोति गोविन्द दामोदर माधवेति॥ १९॥

वंशीकी मधुर ध्वनि कर रहे हैं तथा जो कदम्बके तले गौ, गोप और गोपियोंके मध्यमें विराजमान हैं, उन भगवान्‌का 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' इस प्रकार कहते हुए सदा स्मरण करना चाहिये॥ १५॥ व्रजांगनाएँ ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर और उन यशुमतिनन्दनकी बालक्रीडाओंकी बातोंको याद करके दही मथते-मथते 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इन पदोंको उच्च स्वरसे गाया करती हैं॥ १६॥ [दधि मथकर माखनका लौंदा रख दिया था। माखनभोगी कृष्णकी दृष्टि पड़ गयी, झट उसे धीरेसे उठा लाये] कुछ खाया, कुछ बाँट दिया। जब ढूँढ़ते-ढूँढ़ते न मिला तो यशोदामैयाने आपपर सन्देह करते हुए पूछा—'हे मुरारे! हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! ठीक-ठीक बता, माखनका लौंदा क्या हुआ?'॥ १७॥ जिसके हृदयमें प्रेमकी बाढ़ आ रही है ऐसी माता यशोदा घरको लीपकर दही मथने लगी। तब और सब गोपांगनाएँ तथा सखियाँ मिलकर 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इस पदका गान करने लगीं॥ १८॥ किसी दिन प्रातःकाल ज्यों ही माता यशोदा दहीभरे भाण्डमें मथानीको छोड़कर उठी त्यों ही उसकी दृष्टि शय्यापर बैठे हुए मनमोहन मुकुन्दपर पड़ी। सरकारको देखते ही वह प्रेमसे पगली हो गयी और 'मेरा गोविन्द! मेरा दामोदर! मेरा माधव!' ऐसा कहकर तरह-तरहसे गाने लगी॥ १९॥

क्रीडापरं भोजनमज्जनार्थं हितैषिणी स्त्री तनुजं यशोदा।
आजूहवत् प्रेमपरिप्लुताक्षी गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २०॥
सुखं शयानं निलये च विष्णुं देवर्षिमुख्या मुनयः प्रपन्नाः।
तेनाच्युते तन्मयतां व्रजन्ति गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २१॥
विहाय निद्रामरुणोदये च विधाय कृत्यानि च विप्रमुख्याः।
वेदावसाने प्रपठन्ति नित्यं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २२॥
वृन्दावने गोपगणाश्च गोप्यो विलोक्य गोविन्दवियोगखिन्नाम्।
राधां जगुः साश्रुविलोचनाभ्यां गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २३॥
प्रभातसञ्चारगता नु गावस्तद्रक्षणार्थं तनयं यशोदा।
प्राबोधयत् पाणितलेन मन्दं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २४॥

क्रीडाविहारी मुरारि बालकोंके साथ खेल रहे हैं [अभीतक न स्नान किया है न भोजन] अतः प्रेममें विह्वल हुई माता उन्हें स्नान और भोजनके लिये पुकारने लगी—'अरे ओ गोविन्द! ओ दामोदर! ओ माधव! [आ बेटा! आ! पानी ठंडा हो रहा है जल्दीसे नहा ले और कुछ खा ले]'॥ २०॥ नारद आदि ऋषि 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' इस प्रकार प्रार्थना करते हुए घरमें सुखपूर्वक सोये हुए उन पुराणपुरुष बालकृष्णकी शरणमें आये; अतः उन्होंने श्रीअच्युतमें तन्मयता प्राप्त कर ली॥ २१॥ वेदज्ञ ब्राह्मण प्रात:काल उठकर और अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मोंको पूर्णकर वेदपाठके अन्तमें नित्य ही 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इन मंजुल नामोंका कीर्तन करते हैं॥ २२॥ वृन्दावनमें श्रीवृषभानुकुमारीको वनवारीके वियोगसे विह्वल देख गोपगण और गोपियाँ अपने कमलनयनोंसे नीर बहाती हुई 'हा गोविन्द! हा दामोदर! हा माधव!' आदि कहकर पुकारने लगीं॥ २३॥ प्रात:काल होनेपर जब गौएँ वनमें चरने चली गयीं तब उनकी रक्षाके लिये यशोदामैया शय्यापर शयन करते हुए बालकृष्णको मीठी-मीठी थपकियोंसे जगाती हुई बोलीं—'बेटा गोविन्द! मुन्ना

प्रवालशोभा इव दीर्घकेशा वाताम्बुपर्णाशनपूतदेहाः।
मूले तरूणां मुनयः पठन्ति गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २५॥
एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः।
विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २६॥
गोपी कदाचिन्मणिपिञ्जरस्थं शुकं वचो वाचयितुं प्रवृत्ता।
आनन्दकन्द व्रजचन्द्र कृष्ण गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २७॥
गोवत्सबालैः शिशुकाकपक्षं बध्नन्तमम्भोजदलायताक्षम्।
उवाच माता चिबुकं गृहीत्वा गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २८॥
प्रभातकाले वरवल्लवौघा गोरक्षणार्थं धृतवेत्रदण्डाः।
आकारयामासुरनन्तमाद्यं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ २९॥

माधव! लल्लू दामोदर! [उठ, जा गौओंको चरा ला]'॥ २४॥ केवल वायु, जल और पत्तोंके खानेसे जिनके शरीर पवित्र हो गये हैं, ऐसे प्रवालके समान शोभायमान लंबी-लंबी एवं कुछ अरुण रंगकी जटाओंवाले मुनिगण पवित्र वृक्षोंकी छायामें विराजमान होकर निरन्तर 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इन नामोंका पाठ करते हैं॥ २५॥ श्रीवनमालीके विरहमें विह्वल हुई व्रजांगनाएँ उनके विषयमें विविध प्रकारकी बातें कहती हुई लोक-लज्जाको तिलांजलि दे बड़े आर्त्त स्वरसे 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' कहकर जोर-जोरसे रोने लगीं॥ २६॥ गोपी श्रीराधिकाजी किसी दिन मणियोंके पिंजड़ेमें पले हुए तोतेसे बार-बार 'आनन्दकन्द! व्रजचन्द्र! कृष्ण! गोविन्द! दामोदर! माधव!' इन नामोंको बुलवाने लगीं॥ २७॥ कमलनयन श्रीकृष्णचन्द्रको किसी गोपबालककी चोटी बछड़ेके पूँछके बालोंसे बाँधते देख मैया प्यारसे उनकी ठोढ़ीको पकड़कर कहने लगी— 'मेरा गोविन्द! मेरा दामोदर! मेरा माधव!'॥ २८॥ प्रातःकाल हुआ, ग्वाल-बालोंकी मित्रमण्डली हाथोंमें बेतकी छड़ी और लाठी ले गौओंको चरानेके लिये निकली। तब वे अपने प्यारे सखा अनन्त आदिपुरुष श्रीकृष्णको

जलाशये कालियमर्दनाय यदा कदम्बादपतन्मुरारिः।
गोपाङ्गनाश्चुक्रुशुरेत्य गोपा गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३०॥
अक्रूरमासाद्य यदा मुकुन्दश्चापोत्सवार्थं मथुरां प्रविष्टः।
तदा स पौरैर्जयतीत्यभाषि गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३१॥
कंसस्य दूतेन यदैव नीतौ वृन्दावनान्ताद् वसुदेवसूनू।
रुरोद गोपी भवनस्य मध्ये गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३२॥
सरोवरे कालियनागबद्धं शिशुं यशोदातनयं निशम्य।
चक्रुर्लुठन्त्यः पथि गोपबाला गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३३॥
अक्रूरयाने यदुवंशनाथं संगच्छमानं मथुरां निरीक्ष्य।
ऊचुर्वियोगात् किल गोपबाला गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३४॥

'गोविन्द! दामोदर! माधव!' कह-कहकर बुलाने लगे॥ २९॥ जिस समय कालियनागका मर्दन करनेके लिये कन्हैया कदम्बके वृक्षसे कूदे, उस समय गोपांगनाएँ और गोपगण वहाँ आकर 'हा गोविन्द! हा दामोदर! हा माधव!' कहकर बड़े जोरसे रोने लगे॥ ३०॥ जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रने कंसके धनुर्यज्ञोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये अक्रूरजीके साथ मथुरामें प्रवेश किया, उस समय पुरवासीजन 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! तुम्हारी जय हो, जय हो' ऐसा कहने लगे॥ ३१॥ जब कंसके दूत अक्रूरजी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण और बलरामको वृन्दावनसे दूर ले गये तब अपने घरमें बैठी हुई यशोदाजी 'हा गोविन्द! हा दामोदर! हा माधव!' कह-कहकर रुदन करने लगीं॥ ३२॥ यशोदानन्दन बालक श्रीकृष्णको कालियह्रदमें कालियनागसे जकड़ा हुआ सुनकर गोपबालाएँ रास्तेमें लोटती हुई 'हा गोविन्द! हा दामोदर! हा माधव!' कहकर जोरोंसे रुदन करने लगीं॥ ३३॥ अक्रूरके रथपर चढ़कर मथुरा जाते हुए श्रीकृष्णको देख समस्त गोपबालाएँ वियोगके कारण अधीर होकर कहने लगीं—'हा गोविन्द! हा दामोदर! हा माधव! [हमें छोड़कर तुम कहाँ जाते हो?]'॥ ३४॥

चक्रन्द गोपी नलिनीवनान्ते कृष्णेन हीना कुसुमे शयाना।
प्रफुल्लनीलोत्पललोचनाभ्यां गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३५॥
मातापितृभ्यां परिवार्यमाणा गेहं प्रविष्टा विललाप गोपी।
आगत्य मां पालय विश्वनाथ गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३६॥
वृन्दावनस्थं हरिमाशु बुद्ध्वा गोपी गता कापि वनं निशायाम्।
तत्राप्यदृष्ट्वातिभयादवोचद् गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३७॥
सुखं शयाना निलये निजेऽपि नामानि विष्णोः प्रवदन्ति मर्त्याः।
ते निश्चितं तन्मयतां व्रजन्ति गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३८॥
सा नीरजाक्षीमवलोक्य राधां रुरोद गोविन्द वियोगखिन्नाम्।
सखी प्रफुल्लोत्पललोचनाभ्यां गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ३९॥

श्रीराधिकाजी श्रीकृष्णके अलग हो जानेपर कमलवनमें कुसुम-शय्यापर सोकर अपने विकसित कमलसदृश लोचनोंसे आँसू बहाती हुई 'हा गोविन्द! हा दामोदर! हा माधव!' कहकर क्रन्दन करने लगीं॥ ३५॥ माता-पिता आदिसे घिरी हुई श्रीराधिकाजी घरके भीतर प्रवेश कर विलाप करने लगीं कि 'हे विश्वनाथ! हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! तुम आकर मेरी रक्षा करो! रक्षा करो!!'॥ ३६॥ रात्रिका समय था, किसी गोपीको भ्रम हो गया कि वृन्दावन-विहारी इस समय वनमें विराजमान हैं। बस, फिर क्या था, झट उसी ओर चल दी, किन्तु जब उसने निर्जन वनमें वनमालीको न देखा तो डरसे काँपती हुई 'हा गोविन्द! हा दामोदर! हा माधव!' कहने लगी॥ ३७॥ [वनमें न भी जायँ] अपने घरमें ही सुखसे शय्यापर शयन करते हुए भी जो लोग 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' इन विष्णुभगवान्‌के पवित्र नामोंको निरन्तर कहते रहते हैं, वे निश्चय ही भगवान्‌की तन्मयता प्राप्त कर लेते हैं॥ ३८॥ कमललोचना राधाको श्रीगोविन्दकी विरहव्यथासे पीड़ित देख कोई सखी अपने प्रफुल्ल कमलसदृश नयनोंसे नीर बहाती हुई 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!'

जिह्वे रसज्ञे मधुरप्रिया त्वं सत्यं हितं त्वां परमं वदामि।
आवर्णयेथा मधुराक्षराणि गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४० ॥
आत्यन्तिकव्याधिहरं जनानां चिकित्सकं वेदविदो वदन्ति।
संसारतापत्रयनाशबीजं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४१ ॥
ताताज्ञया गच्छति रामचन्द्रे सलक्ष्मणेऽरण्यचये ससीते।
चक्रन्द रामस्य निजा जनित्री गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४२ ॥
एकाकिनी दण्डककाननान्तात् सा नीयमाना दशकन्धरेण।
सीता तदाक्रन्ददनन्यनाथा गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४३ ॥*

कहकर रुदन करने लगी॥ ३९ ॥ हे रसोंको चखनेवाली जिह्वे! तुझे मीठी चीज बहुत अधिक प्यारी लगती है, इसलिये मैं तेरे हितकी एक बहुत ही सुन्दर और सच्ची बात बताता हूँ। तू निरन्तर 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' इन मधुर मंजुल नामोंकी आवृत्ति किया कर॥ ४० ॥ वेदवेत्ता विद्वान् 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इन नामोंको ही लोगोंकी बड़ी-से-बड़ी विकट व्याधिको विच्छेद करनेवाला वैद्य और संसारके आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक—तीनों तापोंके नाशका बढ़िया बीज बतलाते हैं॥ ४१ ॥ अपने पिता दशरथकी आज्ञासे भाई लक्ष्मण और जनकनन्दिनी सीताके साथ श्रीरामचन्द्रजी बीहड़ वनोंके लिये चलने लगे, तब उनकी माता श्रीकौसल्याजी 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! [हे राम! हे रघुनन्दन! हे राघव!]' ऐसा कहकर जोरोंसे विलाप करने लगीं॥ ४२ ॥ जब राक्षसराज रावण पंचवटीमें जानकीजीको अकेली देख उन्हें हरकर ले जाने लगा, तब रामचन्द्रजीके सिवा जिनका दूसरा कोई स्वामी नहीं है ऐसी सीताजी 'हा गोविन्द! हा दामोदर! हा माधव! [हे राम! हे रघुनन्दन! हे राघव!]' कहकर जोरोंसे रुदन करने लगीं॥ ४३ ॥

---

* अत्र 'हे राम रघुनन्दन राघवेति' इति पाठान्तरम्।

रामाद्वियुक्ता जनकात्मजा सा विचिन्तयन्ती हृदि रामरूपम्।
रुरोद सीता रघुनाथ पाहि गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४४॥*
प्रसीद विष्णो रघुवंशनाथ सुरासुराणां सुखदुःखहेतो।
रुरोद सीता तु समुद्रमध्ये गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४५॥
अन्तर्जले ग्राहगृहीतपादो विसृष्टविक्लिष्टसमस्तबन्धुः।
तदा गजेन्द्रो नितरां जगाद गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४६॥
हंसध्वजः शङ्खयुतो ददर्श पुत्रं कटाहे प्रपतन्तमेनम्।
पुण्यानि नामानि हरेर्जपन्तं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४७॥
दुर्वाससो वाक्यमुपेत्य कृष्णा सा चाब्रवीत् काननवासिनीशम्।
अन्तःप्रविष्टं मनसा जुहाव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४८॥

रथमें बिठाकर ले जाते हुए रावणके साथ, रामवियोगिनी सीता हृदयमें अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करती हुई 'हा रघुनाथ! हा गोविन्द! हा दामोदर! हा माधव! [हे राम! हे रघुनन्दन! हे राघव! मेरी रक्षा करो]' इस प्रकार रोती हुई जाने लगीं॥ ४४॥ जब रावणके साथ सीताजी समुद्रके मध्यमें पहुँचीं, तब यह कहकर जोर-जोरसे रुदन करने लगीं—'हे विष्णो! हे रघुकुलपते! हे देवताओंको सुख और असुरोंको दुःख देनेवाले! हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! [हे राम! हे रघुनन्दन! हे राघव!] प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये।'॥ ४५॥ पानी पीते समय जलके भीतरसे जब ग्राहने गजका पैर पकड़ लिया और उसका समस्त दुःखी बन्धुओंसे साथ छूट गया, तब वह गजराज अधीर होकर अनन्यभावसे निरन्तर 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' ऐसा कहने लगा॥ ४६॥ अपने पुरोहित शंखमुनिके साथ राजा हंसध्वजने अपने पुत्र सुधन्वाको तप्त तैलकी कड़ाहीमें कूदते और 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' इन भगवान्‌के परमपावन नामोंका जप करते हुए देखा॥ ४७॥ [एक दिन द्रौपदीके भोजन कर लेनेपर असमयमें दुर्वासा

---

* अत्र 'हे राम रघुनन्दन राघवेति' इति पाठान्तरम्।

ध्येयः सदा योगिभिरप्रमेयश्चिन्ताहरश्चिन्तितपारिजातः।
कस्तूरिकाकल्पितनीलवर्णो गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ४९॥
संसारकूपे पतितोऽत्यगाधे मोहान्धपूर्णे विषयाभितप्ते।
करावलम्बं मम देहि विष्णो गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५०॥
त्वामेव याचे मम देहि जिह्वे समागते दण्डधरे कृतान्ते।
वक्तव्यमेवं मधुरं सुभक्त्या गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५१॥
भजस्व मन्त्रं भवबन्धमुक्त्यै जिह्वे रसज्ञे सुलभं मनोज्ञम्।
द्वैपायनाद्यैर्मुनिभिः प्रजप्तं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५२॥
गोपाल वंशीधर रूपसिन्धो लोकेश नारायण दीनबन्धो।
उच्चस्वरैस्त्वं वद सर्वदैव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५३॥

ऋषिने शिष्योंसहित आकर भोजन माँगा तब] वनवासिनी द्रौपदीने भोजन देना स्वीकार कर अपने अन्तःकरणमें स्थित श्रीश्यामसुन्दरको 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' कहकर बुलाया॥ ४८॥ योगी भी जिन्हें ठीक-ठीक नहीं जान पाते, जो सभी प्रकारकी चिन्ताओंको हरनेवाले और मनोवांछित वस्तुओंको देनेके लिये कल्पवृक्षके समान हैं तथा जिनके शरीरका वर्ण कस्तूरीके समान नीला है, उन्हें सदा ही 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इन नामोंसे स्मरण करना चाहिये॥ ४९॥ जो मोहरूपी अन्धकारसे व्याप्त और विषयोंकी ज्वालासे सन्तप्त है, ऐसे अथाह संसाररूपी कूपमें मैं पड़ा हुआ हूँ। 'हे मेरे मधुसूदन! हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' मुझे अपने हाथका सहारा दीजिये॥ ५०॥ हे जिह्वे! मैं तुझीसे एक भिक्षा माँगता हूँ, तू ही मुझे दे। वह यह कि जब दण्डपाणि यमराज इस शरीरका अन्त करने आवें तो बड़े ही प्रेमसे गद्गद स्वरमें 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' इन मंजुल नामोंका उच्चारण करती रहना॥ ५१॥ हे जिह्वे! हे रसज्ञे! संसाररूपी बन्धनको काटनेके लिये तू सर्वदा 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' इस नामरूपी मन्त्रका जप किया कर, जो सुलभ एवं सुन्दर है और जिसे व्यास, वसिष्ठादि ऋषियोंने भी जपा है॥ ५२॥ रे जिह्वे! तू

जिह्वे सदैवं भज सुन्दराणि नामानि कृष्णस्य मनोहराणि।
समस्तभक्तार्तिविनाशनानि गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५४॥
गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण।
गोविन्द गोविन्द रथाङ्गपाणे गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५५॥
सुखावसाने त्विदमेव सारं दुःखावसाने त्विदमेव गेयम्।
देहावसाने त्विदमेव जाप्यं गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५६॥
दुर्वारवाक्यं परिगृह्य कृष्णा मृगीव भीता तु कथं कथञ्चित्।
सभां प्रविष्टा मनसाजुहाव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५७॥
श्रीकृष्ण राधावर गोकुलेश गोपाल गोवर्धन नाथ विष्णो।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५८॥

निरन्तर 'गोपाल! वंशीधर! रूपसिन्धो! लोकेश! नारायण! दीनबन्धो! गोविद! दामोदर! माधव!' इन नामोंका उच्च स्वरसे कीर्तन किया कर॥ ५३॥ हे जिह्वे! तू सदा ही श्रीकृष्णचन्द्रके 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इन मनोहर मंजुल नामोंको, जो भक्तोंके समस्त संकटोंकी निवृत्ति करनेवाले हैं, भजती रह॥ ५४॥ हे जिह्वे! 'गोविन्द! गोविन्द! हरे! मुरारे! गोविन्द! गोविन्द! मुकुन्द! कृष्ण! गोविन्द! गोविन्द! रथांगपाणे! गोविन्द! दामोदर! माधव!' इन नामोंको तू सदा जपती रह॥ ५५॥ सुखके अन्तमें यही सार है, दुःखके अन्तमें यही गाने योग्य है और शरीरका अन्त होनेके समय भी यही मन्त्र जपने योग्य है, कौन-सा मन्त्र? यही कि 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!'॥ ५६॥ दुःशासनके दुर्निवार्य वचनोंको स्वीकार कर मृगीके समान भयभीत हुई द्रौपदी किसी-किसी तरह सभामें प्रवेश कर मन-ही-मन 'गोविन्द! दामोदर! माधव!' इस प्रकार भगवान्‌का स्मरण करने लगी॥ ५७॥ हे जिह्वे! तू 'श्रीकृष्ण! राधारमण! व्रजराज! गोपाल! गोवर्धन! नाथ! विष्णो! गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका निरन्तर पान करती रह॥ ५८॥

श्रीनाथ विश्वेश्वर विश्वमूर्ते श्रीदेवकीनन्दन दैत्यशत्रो।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ५९॥
गोपीपते कंसरिपो मुकुन्द लक्ष्मीपते केशव वासुदेव।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६०॥
गोपीजनाह्लादकर व्रजेश गोचारणारण्यकृतप्रवेश।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६१॥
प्राणेश विश्वम्भर कैटभारे वैकुण्ठ नारायण चक्रपाणे।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६२॥
हरे मुरारे मधुसूदनाद्य श्रीराम सीतावर रावणारे।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६३॥
श्रीयादवेन्द्राद्रिधराम्बुजाक्ष गोगोपगोपीसुखदानदक्ष।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६४॥

हे जिह्वे! तू 'श्रीनाथ! सर्वेश्वर! श्रीविष्णुस्वरूप! श्रीदेवकीनन्दन! असुरनिकन्दन! गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका निरन्तर पान करती रह॥ ५९॥ हे जिह्वे! तू 'गोपीपते! कंसरिपो! मुकुन्द! लक्ष्मीपते! केशव! वासुदेव! गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका निरन्तर पान करती रह॥ ६०॥ जो व्रजराज व्रजांगनाओंको आनन्दित करनेवाले हैं, जिन्होंने गौओंको चरानेके लिये वनमें प्रवेश किया है; हे जिह्वे! तुम उन्हीं मुरारिके 'गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका निरन्तर पान करती रह॥ ६१॥ हे जिह्वे! तू 'प्राणेश! विश्वम्भर! कैटभारे! वैकुण्ठ! नारायण! चक्रपाणे! गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका निरन्तर पान करती रह॥ ६२॥ 'हे हरे! हे मुरारे! हे मधुसूदन! हे पुराणपुरुषोत्तम! हे रावणारे! हे सीतापते श्रीराम! हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!'—इस नामामृतका हे जिह्वे! तू निरन्तर पान करती रह॥ ६३॥ हे जिह्वे! 'श्रीयदुकुलनाथ! गिरिधर! कमलनयन! गौ, गोप और गोपियोंको सुख देनेमें

धराभरोत्तारणगोपवेष विहारलीलाकृतबन्धुशेष।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६५॥
बकीबकाघासुरधेनुकारे केशीतृणावर्तविघातदक्ष।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६६॥
श्रीजानकीजीवन रामचन्द्र निशाचरारे भरताग्रजेश।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६७॥
नारायणानन्त हरे नृसिंह प्रह्लादबाधाहर हे कृपालो।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६८॥
लीलामनुष्याकृतिरामरूप प्रतापदासीकृतसर्वभूप।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ६९॥

कुशल श्रीगोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका निरन्तर पान करती रह॥ ६४॥ जिन्होंने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये सुन्दर ग्वालका रूप धारण किया है और आनन्दमयी लीला करनेके निमित्त ही शेषजीको अपना भाई बनाया है, ऐसे उन नटनागरके 'गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका हे जिह्वे! तू निरन्तर पान करती रह॥ ६५॥ जो पूतना, बकासुर, अघासुर और धेनुकासुर आदि राक्षसोंके शत्रु हैं और केशी तथा तृणावर्तको पछाड़नेवाले हैं, हे जिह्वे! उन असुरारि मुरारिके 'गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका तू निरन्तर पान करती रह॥ ६६॥ 'हे जानकीजीवन भगवान् राम! हे दैत्यदलन भरताग्रज! हे ईश! हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!'—इस नामामृतका हे जिह्वे! तू निरन्तर पान करती रह॥ ६७॥ 'हे प्रह्लादकी बाधा हरनेवाले दयामय नृसिंह! नारायण! अनन्त! हरे! गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका हे जिह्वे! तू निरन्तर पान करती रह॥ ६८॥ हे जिह्वे! जिन्होंने लीलाहीसे मनुष्योंकी-सी आकृति बनाकर रामरूप प्रकट किया है और अपने प्रबल पराक्रमसे सभी भूपोंको दास बना लिया है, तू उन नीलाम्बुज श्यामसुन्दर

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ७०॥
वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिदहो जनानां व्यसनाभिमुख्यम्।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति॥ ७१॥

इति श्रीबिल्वमङ्गलाचार्यविरचितं श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

५४—श्रीप्रपन्नगीतम्

(पञ्चमस्वरमेकतालं भजनम्, विहागरागेण गीयते)

परमसखे श्रीकृष्ण भयङ्करभवार्णवेऽव्यय विनिमग्नम्।
मामुद्धर ते श्रीकरलालितचरणकमलपरिधौ लग्नम्॥

(ध्रुवपदम्)

श्रीरामके 'गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका ही निरन्तर पान करती रह॥ ६९॥ हे जिह्वे! तू 'श्रीकृष्ण! गोविन्द! हरे! मुरारे! हे नाथ! नारायण! वासुदेव! तथा गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका ही निरन्तर प्रेमपूर्वक पान करती रह॥ ७०॥ अहो! मनुष्योंकी विषयलोलुपता कैसी आश्चर्यजनक है! कोई-कोई तो बोलनेमें समर्थ होनेपर भी भगवन्नामका उच्चारण नहीं करते; किन्तु हे जिह्वे! मैं तुमसे कहता हूँ, तू 'गोविन्द! दामोदर! माधव!'—इस नामामृतका ही निरन्तर प्रेमपूर्वक पान करती रह॥ ७१॥

इस प्रकार यह श्रीबिल्वमंगलाचार्यका बनाया हुआ गोविन्द-दामोदर-स्तोत्र समाप्त हुआ।

हे परमसखे! श्रीकृष्ण! हे अच्युत! श्रीलक्ष्मीजीके करकमलोंद्वारा सेवित आपके चरणारविन्दोंकी शरणमें आये हुए एवं भयंकर भवसागरमें डूबते हुए मेरा उद्धार कीजिये। त्रिगुणमयी मायारूपिणी मृगतृष्णासे जिसकी बुद्धि चंचल हो रही है, जिसकी दसों इन्द्रियाँ विषयभोगोंके लिये उत्कण्ठित रहा करती हैं, जो दुष्ट मनुष्योंद्वारा अपमानित हो चुका है, अपनी बुद्धि मारी जानेके कारण जिसने भगवान्‌की शरण छोड़ गुणोंकी शरण ली है; उस सदा भयभीत मनवाले, कामादि छः शत्रुओंके जालमें

गुणमृगतृष्णाचलितधियं विषयार्थसमुत्सुकदशकरणम्।
परिभूतं दुर्मतिनरनिकरैर्मतिभ्रमार्जितगुणशरणम्॥
सततं सभयमनो निवहन्तं षड्रिपुभिर्निखिलेड्यगुरुम्।
कालिन्दीहृदयप्रियविष्णोश्चरणकमलरजसो विधुरम्॥
मनःशोकमतिमोहक्षतयेऽभिकाङ्क्षन्तमजमुखपद्मम्।
मामुद्धर ते श्रीकरलालितचरणकमलपरिधौ लग्नम्॥ १॥
कालिन्दीरुक्मिणीराधिकासत्याजाम्बवतीसुहृदम्।
निजशरणागतभक्तजनेभ्यः कृपया गतभवभयवरदम्॥
गोपीजनवल्लभरासेश्वरगोवर्धनधरमधुमथनम्।
वन्देऽहं निखिलाधिपतिं त्वामतिशयसुन्दरगुणभवनम्॥
कृष्णलालजीद्विजाधिपं हे मनोऽनिशं त्वं भज यज्ञम्।
मामुद्धर ते श्रीकरलालितचरणकमलपरिधौ लग्नम्॥ २॥

इति श्रीकृष्णलालद्विजविरचितायां गीताभजनसप्तशत्यां प्रपन्नगीतं सम्पूर्णम्।

फँसकर सबकी खुशामद करनेवाले, कालिन्दीके प्राणनाथ आप (श्रीकृष्ण) के चरणारविन्दपरागसे शून्य, मनके शोक और बुद्धिके भ्रमको नाश करनेके लिये अजन्मा आपके मुखकमलके दर्शनाभिलाषी तथा लक्ष्मीजीके करकमलोंद्वारा सेवित आपके चरणकमलोंकी शरणमें आये हुए मेरा आप उद्धार कीजिये॥ १॥

कालिन्दी, रुक्मिणी, राधा, सत्यभामा और जाम्बवतीके सुहृद्, अपने शरणागत भक्तजनोंपर कृपा करके उन्हें भव-भयसे मुक्त करनेवाला वर देनेवाले, गोपबालाओंके प्रियतम, रासके अधिनायक, गोवर्धनधारी, मधुसूदन, सर्वेश्वर, अत्यन्त कमनीय गुणोंके आश्रय, आपको मैं नमस्कार करता हूँ, हे मन! तू सर्वदा कृष्णलालद्विजके स्वामी यज्ञेश्वर कृष्णका भजन कर; हे परमसखे! लक्ष्मीजीके करकमलोंद्वारा सेवित आपके चरणारविन्दोंकी शरणमें आये हुए मेरा उद्धार कीजिये॥ २॥

५५—श्रीकृष्णः शरणं मम

श्रीकृष्ण एव शरणं मम श्रीकृष्ण एव शरणम्॥

(ध्रुवपदम्)

गुणमय्येषा न यत्र माया न च जनुरपि मरणम्।
यद्यतयः पश्यन्ति समाधौ परममुदाभरणम्॥ १॥

यद्धेतोर्निवहन्ति बुधा ये जगति सदाचरणम्।
सर्वापद्भ्यो विहितं महतां येन समुद्धरणम्॥ २॥

भगवति यत्सन्मतिमुद्वहतां हृदयतमोहरणम्।
हरिपरमा यद्भजन्ति सततं निषेव्य गुरुचरणम्॥ ३॥

असुरकुलक्षतये कृतममरैर्यस्य सदादरणम्।
भुवनतरुं धत्ते यन्निखिलं विविधविषयपर्णम्॥ ४॥

मेरे लिये श्रीकृष्ण ही शरण है, एकमात्र कृष्ण ही शरण है। जहाँ यह त्रिगुणमयी माया और जन्म-मृत्यु नहीं हैं तथा योगीलोग समाधिमें जिस आनन्दमयका यहीं दर्शन करते हैं॥ १॥ जिनकी प्राप्तिके लिये विद्वान् लोग संसारमें अनेक धर्माचरण करते हैं और जिन्होंने सभी आपत्तियोंसे महात्माओंका उद्धार किया है॥ २॥ जो भगवान्में सद्बुद्धि रखनेवालोंके हृदयका अज्ञानान्धकार नष्ट कर देते हैं और भगवद्भक्तजन गुरुचरणोंकी सेवा करके जिनका सदा भजन करते हैं॥ ३॥ असुरोंके विनाशके लिये देवताओंने जिनका सदा आदर किया है और जो अनेक विषयरूपी पत्रोंवाले इस संसार-वृक्षको धारण किये हुए हैं॥ ४॥

अवाप्य यद्भूयोऽच्युतभक्ता न यान्ति संसरणम्।
कृष्णलालजीद्विजस्य भूयात्तदघहरस्मरणम्॥ ५॥

इति श्रीकृष्णलालजीद्विजविरचितं 'श्रीकृष्णः शरणं मम' नामक स्तोत्रं समाप्तम्।

५६—गोपिकाविरहगीतम्

एहि मुरारे कुञ्जविहारे एहि प्रणतजनबन्धो
हे माधव मधुमथन वरेण्य केशव करुणासिन्धो।

(ध्रुवपदम्)

रासनिकुञ्जे गुञ्जति नियतं भ्रमरशतं किल कान्त
एहि निभृतपथपान्थ।
त्वामिह याचे दर्शनदानं हे मधुसूदन शान्त॥ १॥
शून्यं कुसुमासनमिह कुञ्जे शून्यः केलिकदम्बः
दीनः केकिकदम्बः।

जिनको प्राप्त करके भगवद्भक्त फिर आवागमनके चक्रमें नहीं फँसते, उन्हींकी पापनाशक स्मृति कृष्णलालजी द्विजके हृदयमें बनी रहे॥ ५॥

हे मुरारे! हे प्रणतजनोंके बन्धु! विहार-कुंजमें आइये, आइये। हे माधव! हे मधुमथन! हे पूजनीय! हे केशव! हे करुणासिन्धो! पधारिये। हे अद्वैतपथके पथिक! हे नाथ! रासनिकुंजमें सैकड़ों भ्रमर गूँज रहे हैं, पधारिये; हे शान्तिमय मधुसूदन! आपके दर्शनदानकी हम याचना करती हैं॥ १॥

हे नाथ! आपके इस क्रीडास्थल कुंजमें बिछा हुआ यह कुसुमासन और

मृदुकलनादं किल सविषादं रोदिति यमुनास्वम्भः॥ २॥
नवनीरजधरश्यामलसुन्दर चन्द्रकुसुमरुचिवेश
गोपीगणहृदयेश।
गोवर्द्धनधर वृन्दावनचर वंशीधर परमेश॥ ३॥
राधारञ्जन कंसनिषूदन प्रणतिस्तावकचरणे
निखिलनिराश्रयशरणे।
एहि जनार्दन पीताम्बरधर कुञ्जे मन्थरपवने॥ ४॥

इति श्रीगोपिकाविरहगीतं सम्पूर्णम्।

यह लीला-कदम्ब, सब आपके बिना सूना मालूम हो रहा है; मयूर आदि पक्षीगण दीन हो रहे हैं, मृदु कलरव करता हुआ श्रीयमुनाजीका निर्मल जल भी आपके वियोगमें शोकके साथ रोता-सा जान पड़ता है॥ २॥ हे नवीन कमल धारण करनेवाले! हे मेघकी-सी श्यामल सुन्दरतावाले! हे मोरपंख और पुष्पोंसे सुशोभित वेषधारी गोपीजनोंके हृदयेश! हे गोवर्धनधारी! वृन्दावन-विहारी! मुरलीधर! हे प्रभो! पधारिये॥ ३॥ हे राधिकाजीको प्रसन्न करनेवाले! कंसको मारनेवाले! सभी निराश्रयोंको आश्रय देनेवाले आपके चरणोंमें हमारा प्रणाम है, हे जनार्दन! पीताम्बरधारी! हे प्रभो! इस मन्द-मन्द वायुवाले कुंजमें पधारिये! पधारिये!! पधारिये!!!॥ ४॥

५७—मधुराष्टकम्

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ १ ॥

वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम्।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ २ ॥

वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ३ ॥

गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम्।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ४ ॥

करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं रमणं मधुरम्।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ५ ॥

श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है। उनके अधर मधुर हैं, मुख मधुर है, नेत्र मधुर हैं, हास्य मधुर है, हृदय मधुर है और गति भी अति मधुर है॥ १ ॥ उनके वचन मधुर हैं, चरित्र मधुर हैं, वस्त्र मधुर हैं, अंगभंगी मधुर है, चाल मधुर है और भ्रमण भी अति मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ २ ॥ उनका वेणु मधुर है, चरणरज मधुर है, करकमल मधुर हैं, चरण मधुर हैं, नृत्य मधुर है और सख्य भी अति मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ ३ ॥ उनका गान मधुर है, पान मधुर है, भोजन मधुर है, शयन मधुर है, रूप मधुर है और तिलक भी अति मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ ४ ॥ उनका कार्य मधुर है, तैरना मधुर है, हरण मधुर है, रमण मधुर है, उद्गार मधुर है और शान्ति भी अति

गुञ्जा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ६ ॥
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरम्।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ७ ॥
गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ८ ॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यकृतं मधुराष्टकं सम्पूर्णम्।

मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ ५ ॥ उनकी गुंजा मधुर है, माला मधुर है, यमुना मधुर है, उसकी तरंगें मधुर हैं, उसका जल मधुर है और कमल भी अति मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ ६ ॥ गोपियाँ मधुर हैं, उनकी लीला मधुर है, उनका संयोग मधुर है, वियोग मधुर है, निरीक्षण मधुर है और शिष्टाचार भी मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ ७ ॥ गोप मधुर हैं, गौएँ मधुर हैं, लकुटी मधुर है, रचना मधुर है, दलन मधुर है और उसका फल भी अति मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ ८ ॥

५८—श्रीनन्दकुमाराष्टकम्

सुन्दरगोपालम् उरवनमालं नयनविशालं दुःखहरं।
वृन्दावनचन्द्रमानन्दकन्दं परमानन्दं धरणिधरम्॥
वल्लभघनश्यामं पूर्णकामं अत्यभिरामं प्रीतिकरं।
भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम्॥ १ ॥
सुन्दरवारिजवदनं निर्जितमदनं आनन्दसदनं मुकुटधरं।
गुञ्जाकृतिहारं विपिनविहारं परमोदारं चीरहरम्॥
वल्लभपटपीतं कृतउपवीतं करनवनीतं विबुधवरं। भज०॥ २ ॥
शोभितमुखधूलं यमुनाकूलं निपटअतूलं सुखदतरं।
मुखमण्डितरेणुं चारितधेनुं वादितवेणुं मधुरसुरम्॥
वल्लभमतिविमलं शुभपदकमलं नखरुचिअमलं तिमिरहरं। भज०॥ ३ ॥

जिनके हृदयमें वनमाला है, नेत्र बड़े-बड़े हैं, जो शोकहारी, वृन्दावनके चन्द्रमा, परमानन्दमय और पृथ्वीको धारण करनेवाले हैं, जो सबके प्रिय, मेघके समान श्यामल, पूर्णकाम, अत्यन्त सुन्दर और प्रेम करनेवाले हैं; उन समस्त सुखोंके सारभूत, परब्रह्मस्वरूप, नन्दनन्दन मनमोहन, गोपाल श्रीकृष्णको तत्त्वरूप जानकर भजो॥ १॥ जिनका सुन्दर कमलके समान मुख है, जो अपनी कान्तिसे कामदेवको भी जीत चुके हैं, जो आनन्दके आगार, मुकुटधारी, गुंजाकी माला पहननेवाले, वृन्दावनविहारी परम उदार और गोपियोंके चीर हरण करनेवाले हैं, जिनको पीताम्बर प्रिय है, जो सुन्दर यज्ञोपवीत धारण किये हुए और हाथमें माखन लिये हुए हैं, उन समस्त सुखोंके सारभूत, परब्रह्मस्वरूप, देवेश्वर नन्दनन्दन, श्रीकृष्णको तत्त्वरूप जानकर भजो॥ २॥ जो यमुनातटपर मुँहमें धूल लपेटे शोभा पा रहे हैं, जिनकी कहीं तुलना नहीं है, जो परम सुखद हैं, जो धूलिधूसरित-मुख हो, धेनु चराते और मधुर स्वरसे वेणु बजाते हैं, जो सबके प्रिय

शिरमुकुटसुदेशं कुञ्चितकेशं नटवरवेशं कामवरं।
मायाकृतमनुजं हलधरअनुजं प्रतिहतदनुजं भारहरम्॥
वल्लभव्रजपालं सुभगसुचालं हितमनुकालं भाववरं। भज०॥ ४॥
इन्दीवरभासं प्रकटसुरासं कुसुमविकासं वंशिधरं।
हृतमन्मथमानं रूपनिधानं कृतकलगानं चित्तहरम्॥
वल्लभमृदुहासं कुञ्जनिवासं विविधविलासं केलिकरं। भज०॥ ५॥
अतिपरप्रवीणं पालितदीनं भक्ताधीनं कर्मकरं।
मोहनमतिधीरं फणिबलवीरं हतपरवीरं तरलतरम्॥
वल्लभव्रजरमणं वारिजवदनं हलधरशमनं शैलधरं। भज०॥ ६॥

तथा अत्यन्त विमल हैं, जिनके चरणकमल सुन्दर हैं, नखोंकी कान्ति निर्मल है, जो अज्ञानान्धकारको दूर करते हैं, उन समस्त सुखोंके सारभूत, परब्रह्मस्वरूप, नन्दनन्दन श्रीकृष्णको तत्त्वरूप जानकर भजो॥ ३॥ जिनके सुन्दर मस्तकपर मुकुट है, बाल घुँघराले हैं, नटवर वेष है, जो कामसे भी अधिक सुन्दर हैं, मायासे मनुष्य-अवतार धारण करते हैं, बलरामजीके छोटे भाई हैं, दानवोंको मारकर पृथ्वीका भार हरण करते हैं; जो व्रजके रक्षक, प्रियतम, सुन्दर गतिशील, प्रतिक्षण हित चाहनेवाले और उत्तम भाववाले हैं; उन सब सुखोंके सारभूत परब्रह्मस्वरूप, नन्दनन्दन श्रीकृष्णको तत्त्वरूप जानकर भजो॥ ४॥ जिनकी नीलकमलके समान कान्ति है, जिन्होंने पवित्र रास-रसको प्रकट किया है, जो कुसुमोंके समान विकसित रहते हैं, वंशी धारण करते हैं; जिन्होंने कन्दर्पके दर्पको चूर कर दिया है, जो रूपकी राशि हैं, मधुर गायनके द्वारा मन मोह लेते हैं, जिनका मधुर हास प्रिय लगता है, जो निकुंजोंमें रहकर नाना प्रकारकी लीलाएँ किया करते हैं, उन सब सुखोंके सारभूत, परब्रह्मस्वरूप, नन्दनन्दन श्रीकृष्णको तत्त्वरूप जानकर भजो॥ ५॥ जो परम प्रवीण हैं, दीनोंके पालक और भक्तोंके अधीन कर्म करनेवाले, जो अत्यन्त धीर मनमोहन, शेषके अवतार बलभद्ररूप, शत्रुवीरोंके

जलधरद्युतिअङ्गं ललितत्रिभङ्गं बहुकृतरङ्गं रसिकवरं।
गोकुलपरिवारं मदनाकारं कुञ्जविहारं गूढतरम्॥
वल्लभव्रजचन्द्रं सुभगसुछन्दं कृतआनन्दं भ्रान्तिहरं। भज०॥ ७॥
वन्दितयुगचरणं पावनकरणं जगदुद्धरणं विमलधरं।
कालियशिरगमनं कृतफणिनमनं घातितयमनं मृदुलतरम्॥
वल्लभदुःखहरणं निर्मलचरणम् अशरणशरणं मुक्तिकरं। भज०॥ ८॥

इति श्रीमहाप्रभुवल्लभाचार्यविरचितं श्रीनन्दकुमाराष्टकं सम्पूर्णम्।

नाशक, अतिशय चपल, प्रेममय व्रजमें रमनेवाले, कमल-वदन गोवर्धनधारी और हलधरजीको शान्त करनेवाले हैं; उन सब सुखोंके सारभूत, परब्रह्मस्वरूप, नन्दनन्दन श्रीकृष्णको तत्त्वरूप जानकर भजो॥ ६॥ जिनके अंगकी कान्ति मेघके सदृश श्याम है, उसमें ललित त्रिभंग शोभा पाता है, जो नाना रंगोंमें रहते हैं, परम रसिक हैं, गोकुल ही जिनका परिवार है, मदनके समान सुन्दर आकृति है, जो कुंजमें विहार करते हैं, सर्वत्र अत्यन्त गूढ़भावसे छिपे हैं, जो प्यारे व्रजचन्द्र, बड़भागी और दिव्य लीलामय हैं, सदा आनन्द करनेवाले और भ्रान्तिको भगानेवाले हैं, उन सब सुखोंके सारभूत, परब्रह्मस्वरूप, नन्दनन्दन श्रीकृष्णको तत्त्वरूप जानकर भजो॥ ७॥ जिनके दोनों चरण (भक्तोंद्वारा) वन्दित हैं, जो सबको पवित्र करते हैं और जगत्‌का उद्धार करनेवाले हैं, निर्मल भक्तोंको हृदयमें धारण करनेवाले तथा कालियनागके मस्तकपर नृत्य करनेवाले हैं, जिनकी शेषनाग भी स्तुति करते हैं, जो कालयवनके घातक और अति कोमल हैं, जो अपने प्रियजनोंके शोकहारी, निर्मल चरणोंवाले, अशरणोंकी शरण और मोक्ष देनेवाले हैं, उन सब सुखोंके सारभूत, परब्रह्मस्वरूप, नन्दनन्दन श्रीकृष्णका तत्त्वरूपसे भजन करो॥ ८॥

५९—चतु:श्लोकी

सदा सर्वात्मभावेन भजनीयो व्रजेश्वरः।
करिष्यति स एवास्मदैहिकं पारलौकिकम्॥ १॥
अन्याश्रयो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः।
स्वकीये स्वात्मभावश्च कर्तव्यः सर्वथा सदा॥ २॥
सदा सर्वात्मना कृष्णः सेव्यः कालादिदोषनुत्।
तद्भक्तेषु च निर्दोषभावेन स्थेयमादरात्॥ ३॥
भगवत्येव सततं स्थापनीयं मनः स्वयम्।
कालोऽयं कठिनोऽपि श्रीकृष्णभक्तान्न बाधते॥ ४॥

इति श्रीविट्ठलेश्वरोक्ता (द्वितीया) चतु:श्लोकी समाप्ता।

सबके आत्मारूपसे व्याप्त, भगवान् व्रजराज श्रीकृष्णका ही सदैव भजन करना चाहिये, वे ही हमलोगोंके लौकिक और पारलौकिक लाभ सिद्ध करेंगे॥ १॥ दूसरेका आश्रय नहीं लेना चाहिये, क्योंकि वह सर्वथा बाधक होता है; सदा स्वावलम्बी होकर, सब तरहसे आत्मभावका पालन करना चाहिये॥ २॥ कालादि दोषोंको दूर करनेवाले भगवान् कृष्णका सदा-सर्वथा सेवन करना चाहिये और दोष-दृष्टिको त्यागकर, श्रद्धापूर्वक उनके भक्तोंका संग करना चाहिये॥ ३॥ भगवान् कृष्णमें ही सदैव अपने मनको लगाये रखना चाहिये; क्योंकि उनके भक्तोंको यह कठिन काल भी बाधा नहीं पहुँचा सकता॥ ४॥

ॐ

विविधदेवस्तोत्राणि

६०—श्रीगणपतिस्तोत्रम्

जेतुं यस्त्रिपुरं हरेण हरिणा व्याजाद्बलिं बध्नता
स्त्रष्टुं वारिभवोद्भवेन भुवनं शेषेण धर्तुं धराम्।
पार्वत्या महिषासुरप्रमथने सिद्धाधिपैः सिद्धये
ध्यातः पञ्चशरेण विश्वजितये पायात्स नागाननः॥ १॥
विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिर्विघ्नाटवीहव्यवाड्
विघ्नव्यालकुलाभिमानगरुडो विघ्नेभपञ्चाननः।
विघ्नोत्तुङ्गगिरिप्रभेदनपविर्विघ्नाम्बुधेर्वाडवो
विघ्नाघौघघनप्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पातु नः॥ २॥

त्रिपुरासुरको जीतनेके लिये शिवने, बलिको छलसे बाँधते समय विष्णुने, जगत्‌को रचनेके लिये ब्रह्माने, पृथ्वी धारण करनेके लिये शेषनागने, महिषासुरको मारनेके समय पार्वतीने, सिद्धि पानेके लिये सिद्धोंके अधिपतियों (सनकादि ऋषियों) ने और सब संसारको जीतनेके लिये कामदेवने जिन गणेशजीका ध्यान किया है, वे हमलोगोंका पालन करें॥ १॥ विघ्नरूप अन्धकारका नाश करनेवाले एकमात्र सूर्य, विघ्नरूप वनके जलानेवाले अग्नि, विघ्नरूप सर्पकुलका दर्प नष्ट करनेके लिये गरुड, विघ्नरूप हाथीको मारनेवाले सिंह, विघ्नरूप ऊँचे पहाड़के तोड़नेवाले वज्र, विघ्नरूप

खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं
प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम् ।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम्॥ ३ ॥

गजाननाय महसे प्रत्यूहतिमिरच्छिदे।
अपारकरुणापूरतरङ्गितदृशे नमः ॥ ४ ॥
अगजाननपद्मार्कं गजाननमहर्निशम्।
अनेकदन्तं भक्तानामेकदन्तमुपास्महे॥ ५ ॥

श्वेताङ्गं श्वेतवस्त्रं सितकुसुमगणैः पूजितं श्वेतगन्धैः
क्षीराब्धौ रत्नदीपैः सुरनरतिलकं रत्नसिंहासनस्थम्।

महासागरके वडवानल, विघ्नरूपी मेघ-समूहको उड़ा देनेवाले प्रचण्ड वायुसदृश गणेशजी हमलोगोंका पालन करें॥ २॥ जो नाटे और मोटे शरीरवाले हैं, जिनका गजराजके समान मुँह और लंबा उदर है, जो सुन्दर हैं तथा बहते हुए मदकी सुगन्धके लोभी भौंरोंके चाटनेसे जिनका गण्डस्थल चपल हो रहा है, दाँतोंकी चोटसे विदीर्ण हुए शत्रुओंके खूनसे जो सिन्दूरकी-सी शोभा धारण करते हैं, कामनाओंके दाता और सिद्धि देनेवाले उन पार्वतीके पुत्र, गणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ३ ॥ विघ्नरूप अन्धकारका नाश करनेवाले, अथाह करुणारूप जलराशिसे तरंगित नेत्रोंवाले, गणेश नामक ज्योतिको नमस्कार है॥ ४॥ जो पार्वतीके मुखरूप कमलको प्रकाशित करनेमें सूर्यरूप हैं, जो भक्तोंको अनेक प्रकारके फल देते हैं, उन एक दाँतवाले गणेशजीकी मैं सदैव उपासना करता हूँ॥ ५॥ जिनका शरीर श्वेत है, कपड़े श्वेत हैं, श्वेत फूल, चन्दन और रत्नदीपोंसे क्षीरसमुद्रके तटपर

दोर्भिः पाशाङ्कुशाब्जाभयवरमनसं चन्द्रमौलिं त्रिनेत्रं
ध्यायेच्छान्त्यर्थमीशं गणपतिममलं श्रीसमेतं प्रसन्नम्॥ ६ ॥
आवाहये तं गणराजदेवं रक्तोत्पलाभासमशेषवन्द्यम्।
विघ्नान्तकं विघ्नहरं गणेशं भजामि रौद्रं सहितं च सिद्ध्या॥ ७ ॥
यं ब्रह्म वेदान्तविदो वदन्ति परं प्रधानं पुरुषं तथान्ये।
विश्वोद्गतेः कारणमीश्वरं वा तस्मै नमो विघ्नविनाशनाय॥ ८ ॥
विघ्नेश वीर्याणि विचित्रकाणि वन्दीजनैर्मागधकैः स्मृतानि।
श्रुत्वा समुत्तिष्ठ गजानन त्वं ब्राह्मे जगन्मङ्गलकं कुरुष्व॥ ९ ॥
गणेश हेरम्ब गजाननेति महोदर स्वानुभवप्रकाशिन्।
वरिष्ठ सिद्धिप्रिय बुद्धिनाथ वदन्त एवं त्यजत प्रभीतीः॥ १०॥

जिनकी पूजा हुई है; देवता और मनुष्य जिनको अपना प्रधान पूज्य समझते हैं, जो रत्नके सिंहासनपर बैठे हैं, जिनके हाथोंमें पाश (एक प्रकारकी डोरी), अंकुश और कमलके फूल हैं, जो अभयदान और वरदान देनेवाले हैं, जिनके सिरमें चन्द्रमा रहते हैं और जिनके तीन नेत्र हैं; निर्मल लक्ष्मीके साथ रहनेवाले, उन प्रसन्नप्रभु गणेशजीका अपनी शान्तिके लिये ध्यान करे॥ ६॥ जो देवताओंके गणके राजा हैं, लाल कमलके समान जिनके देहकी आभा है, जो सबके वन्दनीय हैं, विघ्नके काल हैं, विघ्नके हरनेवाले हैं, शिवजीके पुत्र हैं; उन गणेशजीका मैं सिद्धिके साथ आवाहन और भजन करता हूँ॥ ७॥ जिनको वेदान्ती लोग ब्रह्म कहते हैं और दूसरे लोग परम प्रधान पुरुष अथवा संसारकी सृष्टिके कारण या ईश्वर कहते हैं; उन विघ्नविनाशक गणेशजीको नमस्कार है॥ ८॥ हे विघ्नेश! हे गजानन! मागध और वन्दीजनोंके मुखसे गाये जाते हुए अपने विचित्र पराक्रमोंको सुनकर, ब्राह्ममुहूर्तमें उठो और जगत्का कल्याण करो॥ ९॥ 'हे गणेश! हे हेरम्ब! हे गजानन! हे लम्बोदर!

अनेकविघ्नान्तक वक्रतुण्ड स्वसंज्ञवासिंश्च चतुर्भुजेति।
कवीश देवान्तकनाशकारिन् वदन्त एवं त्यजत प्रभीतीः ॥ ११ ॥
अनन्तचिद्रूपमयं गणेशं ह्यभेदभेदादिविहीनमाद्यम्।
हृदि प्रकाशस्य धरं स्वधीस्थं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥ १२ ॥
विश्वादिभूतं हृदि योगिनां वै प्रत्यक्षरूपेण विभान्तमेकम्।
सदा निरालम्बसमाधिगम्यं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥ १३ ॥
यदीयवीर्येण समर्थभूता माया तया संरचितं च विश्वम्।
नागात्मकं ह्यात्मतया प्रतीतं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥ १४ ॥
सर्वान्तरे संस्थितमेकगूढं यदाज्ञया सर्वमिदं विभाति।
अनन्तरूपं हृदि बोधकं वै तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥ १५ ॥

हे अपने अनुभवसे प्रकाशित होनेवाले! हे श्रेष्ठ! हे सिद्धिके प्रियतम! हे बुद्धिनाथ!' ऐसा कहते हुए हे मनुष्यो! अपना भय छोड़ दो॥ १०॥ 'हे अनेक विघ्नोंका नाश करनेवाले! हे वक्रतुण्ड! गणेश आदि अपने नामवालोंमें भी निवास करनेवाले! हे चतुर्भुज! हे कवियोंके नाथ! हे दैत्योंका नाश करनेवाले!' ऐसा कहते हुए हे मनुष्यो! अपने भयको भगा दो॥ ११॥ जो गणेश अनन्त हैं, चेतनरूप हैं, अभेद और भेद आदिसे रहित और सृष्टिके आदि कारण हैं, अपने हृदयमें जो सदा प्रकाश धारण करते हैं तथा अपनी ही बुद्धिमें स्थित रहते हैं; उन एकदन्त गणेशजीकी शरणमें हम जाते हैं॥ १२॥ जो संसारके आदि कारण हैं, योगियोंके हृदयमें अद्वितीय रूपसे साक्षात् प्रकाशित होते हैं और निरालम्ब समाधिके द्वारा ही जानने योग्य हैं, उन एकदन्त गणेशकी शरणमें हम जाते हैं॥ १३॥ जिनके बलसे माया समर्थ हुई है और उसके द्वारा यह संसार रचा गया है, उन नागस्वरूप तथा आत्मारूपसे प्रतीत होनेवाले एकदन्त गणेशजीकी शरणमें हम जाते हैं॥ १४॥ जो सब लोगोंके अन्तःकरणमें अकेले

यं योगिनो योगबलेन साध्यं कुर्वन्ति तं कः स्तवनेन नौति।
अतः प्रणामेन सुसिद्धिदोऽस्तु तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥ १६॥
देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः।
विघ्नान् हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः॥ १७॥
एकदन्तं महाकायं लम्बोदरगजाननम्।
विघ्ननाशकरं देवं हेरम्बं प्रणमाम्यहम्॥ १८॥
यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर॥ १९॥

इति श्रीगणपतिस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

गूढ़भावसे स्थित रहते हैं, जिनकी आज्ञासे यह जगत् विराजमान है, जो अनन्तरूप हैं और हृदयमें ज्ञान देनेवाले हैं; उन एकदन्त गणेशकी शरणमें हम जाते हैं॥ १५॥ जिनको योगीजन योगबलसे साध्य करते (जान पाते) हैं, स्तुतिसे उनका वर्णन कौन कर सकता है ? इसलिये हम उनको केवल प्रणाम करते हैं कि हमें सिद्धि दें; उन प्रसिद्ध एकदन्तकी शरणमें हम जाते हैं॥ १६॥ जो इन्द्रके मुकुटमें गुँथे हुए मन्दारपुष्पोंके मकरन्दकणोंसे लाल हो रही है, वह गणेशजीके चरण-कमलोंकी रज विघ्नोंका हरण करे॥ १७॥ एक दाँतवाले, बड़े शरीरवाले, स्थूल उदरवाले, हाथीके समान मुखवाले और विघ्नोंका नाश करनेवाले गणेशदेवको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १८॥ हे देव! जो अक्षर, पद अथवा मात्रा छूट गयी हो, उसके लिये क्षमा करो और हे परमेश्वर! प्रसन्न होओ॥ १९॥

६१—सङ्कटनाशनगणेशस्तोत्रम्

नारद उवाच

प्रणम्य शिरसा देवं गौरीपुत्रं विनायकम्।
भक्तावासं स्मरेन्नित्यमायु:कामार्थसिद्धये॥ १॥

प्रथमं वक्रतुण्डं च एकदन्तं द्वितीयकम्।
तृतीयं कृष्णपिङ्गाक्षं गजवक्त्रं चतुर्थकम्॥ २॥

लम्बोदरं पञ्चमं च षष्ठं विकटमेव च।
सप्तमं विघ्नराजं च धूम्रवर्णं तथाष्टमम्॥ ३॥

नवमं भालचन्द्रं च दशमं तु विनायकम्।
एकादशं गणपतिं द्वादशं तु गजाननम्॥ ४॥

द्वादशैतानि नामानि त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः।
न च विघ्नभयं तस्य सर्वसिद्धिकरं प्रभो॥ ५॥

नारदजी बोले—पार्वतीनन्दन देवदेव श्रीगणेशजीको सिर झुकाकर प्रणाम करे और फिर अपनी आयु, कामना और अर्थकी सिद्धिके लिये उन भक्तनिवासका नित्यप्रति स्मरण करे॥ १॥ पहला वक्रतुण्ड (टेढ़े मुखवाले), दूसरा एकदन्त (एक दाँतवाले), तीसरा कृष्णपिंगाक्ष (काली और भूरी आँखोंवाले), चौथा गजवक्त्र (हाथीके-से मुखवाले)॥ २॥ पाँचवाँ लम्बोदर (बड़े पेटवाले), छठा विकट (विकराल), सातवाँ विघ्नराजेन्द्र (विघ्नोंका शासन करनेवाले राजाधिराज) तथा आठवाँ धूम्रवर्ण (धूसर वर्णवाले)॥ ३॥ नवाँ भालचन्द्र (जिसके ललाटपर चन्द्रमा सुशोभित है), दसवाँ विनायक, ग्यारहवाँ गणपति और बारहवाँ गजानन॥ ४॥ इन बारह नामोंका जो पुरुष (प्रातः,

विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम्।
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्मोक्षार्थी लभते गतिम्॥ ६॥
जपेद्गणपतिस्तोत्रं षड्भिर्मासैः फलं लभेत्।
संवत्सरेण सिद्धिं च लभते नात्र संशयः॥ ७॥
अष्टभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च लिखित्वा यः समर्पयेत्।
तस्य विद्या भवेत्सर्वा गणेशस्य प्रसादतः॥ ८॥

इति श्रीनारदपुराणे सङ्कटनाशनगणेशस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

६२—सूर्याष्टकम्

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते॥ १॥

मध्याह्न और सायंकाल) तीनों सन्ध्याओंमें पाठ करता है, हे प्रभो! उसे किसी प्रकारके विघ्नका भय नहीं रहता; इस प्रकारका स्मरण सब प्रकारकी सिद्धियाँ देनेवाला है॥ ५॥ इससे विद्याभिलाषी विद्या, धनाभिलाषी धन, पुत्रेच्छु पुत्र तथा मुमुक्षु मोक्षगति प्राप्त कर लेता है॥ ६॥ इस गणपतिस्तोत्रका जप करे तो छः मासमें इच्छित फल प्राप्त हो जाता है तथा एक वर्षमें पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो जाती है—इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है॥ ७॥ जो पुरुष इसे लिखकर आठ ब्राह्मणोंको समर्पण करता है, गणेशजीकी कृपासे उसे सब प्रकारकी विद्या प्राप्त हो जाती है॥ ८॥

हे आदिदेव भास्कर! आपको प्रणाम है, आप मुझपर प्रसन्न हों, हे दिवाकर! आपको नमस्कार है, हे प्रभाकर! आपको प्रणाम है॥ १॥

सप्ताश्वरथमारूढं प्रचण्डं कश्यपात्मजम्।
श्वेतपद्मधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ २॥

लोहितं रथमारूढं सर्वलोकपितामहम्।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ ३॥

त्रैगुण्यं च महाशूरं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरम्।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ ४॥

बृंहितं तेजःपुञ्जं च वायुमाकाशमेव च।
प्रभुं च सर्वलोकानां तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ ५॥

बन्धूकपुष्पसङ्काशं हारकुण्डलभूषितम्।
एकचक्रधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ ६॥

तं सूर्यं जगत्कर्तारं महातेजःप्रदीपनम्।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ ७॥

सात घोड़ोंवाले रथपर आरूढ़, हाथमें श्वेत कमल धारण किये हुए, प्रचण्ड तेजस्वी कश्यपकुमार सूर्यको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २॥ लोहितवर्ण रथारूढ़ सर्वलोकपितामह महापापहारी सूर्यदेवको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३॥ जो त्रिगुणमय ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप हैं, उन महापापहारी महान् वीर सूर्यदेवको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ४॥ जो बढ़े हुए तेजके पुंज हैं और वायु तथा आकाशस्वरूप हैं, उन समस्त लोकोंके अधिपति सूर्यको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ५॥ जो बन्धूक (दुपहरिया)के पुष्पसमान रक्तवर्ण और हार तथा कुण्डलोंसे विभूषित हैं, उन एक चक्रधारी सूर्यदेवको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ६॥ महान् तेजके प्रकाशक, जगत्के कर्ता, महापापहारी उन सूर्य भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ॥ ७॥

तं सूर्यं जगतां नाथं ज्ञानविज्ञानमोक्षदम्।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ ८॥

इति श्रीशिवप्रोक्तं सूर्याष्टकं सम्पूर्णम्।

६३—श्रीसूर्यमण्डलाष्टकम्

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने॥ १॥
यन्मण्डलं दीप्तिकरं विशालं रत्नप्रभं तीव्रमनादिरूपम्।
दारिद्र्यदुःखक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ २॥
यन्मण्डलं देवगणैः सुपूजितं विप्रैः स्तुतं भावनमुक्तिकोविदम्।
तं देवदेवं प्रणमामि सूर्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ ३॥

उन सूर्यदेवको, जो जगत्‌के नायक हैं, ज्ञान, विज्ञान तथा मोक्षको भी देते हैं, साथ ही जो बड़े-बड़े पापोंको भी हर लेते हैं, मैं प्रणाम करता हूँ॥ ८॥

जो जगत्‌के एकमात्र नेत्र (प्रकाशक) हैं; संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशके कारण हैं; उन वेदत्रयीस्वरूप, सत्त्वादि तीनों गुणोंके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामक तीन रूप धारण करनेवाले सूर्यभगवान्‌को नमस्कार है॥ १॥ जो प्रकाश करनेवाला, विशाल, रत्नोंके समान प्रभावाला, तीव्र, अनादिरूप और दारिद्र्यदुःखके नाशका कारण है; वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ २॥ जिनका मण्डल देवगणोंसे अच्छी प्रकार पूजित है; ब्राह्मणोंसे स्तुत है और भक्तोंको मुक्ति देनेवाला है; उन देवाधिदेव सूर्यभगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ और वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ ३॥

यन्मण्डलं ज्ञानघनं त्वगम्यं त्रैलोक्यपूज्यं त्रिगुणात्मरूपम्।
समस्ततेजोमयदिव्यरूपं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ ४॥
यन्मण्डलं गूढमतिप्रबोधं धर्मस्य वृद्धिं कुरुते जनानाम्।
यत्सर्वपापक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ ५॥
यन्मण्डलं व्याधिविनाशदक्षं यदृग्यजुःसामसु संप्रगीतम्।
प्रकाशितं येन च भूर्भुवः स्वः पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ ६॥
यन्मण्डलं वेदविदो वदन्ति गायन्ति यच्चारणसिद्धसंघाः।
यद्योगिनो योगजुषां च संघाः पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ ७॥
यन्मण्डलं सर्वजनेषु पूजितं ज्योतिश्च कुर्यादिह मर्त्यलोके।
यत्कालकल्पक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ ८॥

जो ज्ञानघन, अगम्य, त्रिलोकीपूज्य, त्रिगुणस्वरूप, पूर्ण तेजोमय और दिव्यरूप है, वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ ४॥ जो सूक्ष्म बुद्धिसे जाननेयोग्य है और सम्पूर्ण मनुष्योंके धर्मकी वृद्धि करता है तथा जो सबके पापोंके नाशका कारण है; वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ ५॥ जो रोगोंका विनाश करनेमें समर्थ है, जो ऋक्, यजु और साम—इन तीनों वेदोंमें सम्यक् प्रकारसे गाया गया है तथा जिसने भूः, भुवः और स्वः—इन तीनों लोकोंको प्रकाशित किया है; वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ ६॥ वेदज्ञाता लोग जिसका वर्णन करते हैं; चारणों और सिद्धोंका समूह जिसका गान किया करता है तथा योगका सेवन करनेवाले और योगीलोग जिसका गुणगान करते हैं; वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ ७॥ जो समस्त जनोंमें पूजित है और इस मर्त्यलोकमें प्रकाश करता है तथा जो काल और कल्पके क्षयका कारण भी है; वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ ८॥

यन्मण्डलं विश्वसृजां प्रसिद्धमुत्पत्तिरक्षाप्रलयप्रगल्भम्।
यस्मिञ्जगत्संहरतेऽखिलञ्च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ ९ ॥
यन्मण्डलं सर्वगतस्य विष्णोरात्मा परं धाम विशुद्धतत्त्वम्।
सूक्ष्मान्तरैर्योगपथानुगम्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ १० ॥
यन्मण्डलं वेदविदो वदन्ति गायन्ति यच्चारणसिद्धसंघाः।
यन्मण्डलं वेदविदः स्मरन्ति पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ११ ॥
यन्मण्डलं वेदविदोपगीतं यद्योगिनां योगपथानुगम्यम्।
तत्सर्ववेदं प्रणमामि सूर्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥ १२ ॥
मण्डलाष्टतयं पुण्यं यः पठेत्सततं नरः।
सर्वपापविशुद्धात्मा सूर्यलोके महीयते॥ १३ ॥

इति श्रीमदादित्यहृदये मण्डलाष्टकं सम्पूर्णम्।

जो संसारकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा आदिमें प्रसिद्ध है; जो संसारकी उत्पत्ति, रक्षा और प्रलय करनेमें समर्थ है; और जिसमें समस्त जगत् लीन हो जाता है, वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ ९ ॥ जो सर्वान्तर्यामी विष्णुभगवान्‌का आत्मा तथा विशुद्ध तत्त्ववाला परमधाम है; और जो सूक्ष्म बुद्धिवालोंके द्वारा योगमार्गसे गमन करनेयोग्य है; वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ १० ॥ वेदके जाननेवाले जिसका वर्णन करते हैं; चारण और सिद्धगण जिसको गाते हैं; और वेदज्ञलोग जिसका स्मरण करते हैं; वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ ११ ॥ जिनका मण्डल वेदवेत्ताओंके द्वारा गाया गया है; और जो योगियोंसे योगमार्गद्वारा अनुगमन करनेयोग्य हैं; उन सब वेदोंके स्वरूप सूर्यभगवान्‌को प्रणाम करता हूँ; और वह सूर्यभगवान्‌का श्रेष्ठ मण्डल मुझे पवित्र करे॥ १२॥ जो पुरुष परम पवित्र इस मण्डलाष्टकस्तोत्रका पाठ सर्वदा करता है; वह पापोंसे मुक्त हो, विशुद्धचित्त होकर सूर्यलोकमें प्रतिष्ठा पाता है॥ १३ ॥

६४—वीरविंशतिकाख्यं श्रीहनुमत्स्तोत्रम्

लाङ्गूलमृष्टवियदम्बुधिमध्यमार्ग-
मुत्प्लुत्य यान्तममरेन्द्रमुदो निदानम्।
आस्फालितस्वकभुजस्फुटिताद्रिकाण्डं
द्राङ्मैथिलीनयननन्दनमद्य वन्दे॥ १ ॥
मध्येनिशाचरमहाभयदुर्विषह्यं
घोराद्भुतव्रतमियं यददश्चचार।
पत्ये तदस्य बहुधापरिणामदूतं
सीतापुरस्कृततनुं हनुमन्तमीडे॥ २ ॥
यः पादपङ्कजयुगं रघुनाथपत्न्या
नैराश्यरूषितविरक्तमपि स्वरागैः।
प्रागेव रागि विदधे बहु वन्दमानो
वन्देऽञ्जनाजनुषमेष विशेषतुष्ट्यै॥ ३ ॥

जो अपनी पूँछसे साफ किये हुए आकाश तथा समुद्रके मध्यवर्ती मार्गपर उछलकर चलते समय इन्द्रके आनन्दका कारण हो रहे थे और आगेकी ओर फैलायी हुई जिनकी भुजाओंसे पर्वतखण्ड फूटते जाते थे, जानकीजीके नेत्रोंको शीघ्र ही आनन्द देनेवाले उन हनुमान्जीकी आज मैं वन्दना करता हूँ॥ १ ॥ जानकीजीने पतिके लिये जो निशाचरोंके बीच अत्यन्त भयके कारण दु:सह, घोर एवं अद्भुत व्रत किया था, उसीके विविध फल-स्वरूप दूतवेषमें सीताके सम्मुख अपने शरीरको प्रकट किये हुए हनुमान्जीकी मैं स्तुति करता हूँ॥ २ ॥ जिन्होंने श्रीरघुनाथपत्नी जानकीके दोनों

ताञ्जानकीविरहवेदनहेतुभूतान्
द्रागाकलय्य सदशोकवनीयवृक्षान्।
लङ्कालकानिव घनानुदपाटयद्य-
स्तं हेमसुन्दरकपिं प्रणमामि पुष्ट्यै॥ ४॥
घोषप्रतिध्वनितशैलगुहासहस्र-
सम्भ्रान्तनादितवलन्मृगनाथयूथम्।
अक्षक्षयक्षणविलक्षितराक्षसेन्द्र-
मिन्द्रं कपीन्द्रपृतनावलयस्य वन्दे॥ ५॥
हेलाविलङ्घितमहार्णवमप्यमन्दं
घूर्णद्गदाविहतिविक्षतराक्षसेषु।

चरणारविन्दोंको, जो निराशारूप धूलिसे धूसरित होनेके कारण रागशून्य हो गये थे, बारंबार प्रणाम करते हुए, अपने अनुरागोंद्वारा [पतिमिलनके—] पहले ही रागरंजित कर दिया; उन अञ्जनीनन्दन महावीरजीकी मैं विशेष सन्तोषके लिये वन्दना करता हूँ॥ ३॥ सुन्दर अशोकवनके घने वृक्षोंको जानकीजीकी विरहवेदना [को बढ़ाने] का कारण समझकर जिन्होंने लङ्कानगरीकी स्निग्ध अलकावलीके समान उन्हें शीघ्र ही उखाड़ डाला, उन सुवर्णके सदृश सुन्दर शरीरवाले कपिवर हनुमान्जीको मैं अपने पालन-पोषणके लिये प्रणाम करता हूँ॥ ४॥ अपने गम्भीर घोषसे प्रतिध्वनित पर्वतोंकी सहस्रों कन्दराओंमें रहनेवाले सिंहोंके समूहको जिन्होंने सम्भ्रमवश शब्दायमान एवं विचलित कर दिया और अक्षकुमारके विनाशकालमें राक्षसराज रावणको भी आश्चर्यमें डाल दिया, उन कपिराज सुग्रीवकी सेनाके नायक हनुमान्जीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ५॥ लीलासे ही महासागरको लाँघ जानेपर भी जो तीव्र गतिसे

स्वम्भोदवारिधिमपारमिवेक्षमाणं
वन्देऽहमक्षयकुमारकमारकेशम्॥ ६ ॥
जम्भारिजित्प्रसभलम्भितपाशबन्धं
ब्रह्मानुरोधमिव तत्क्षणमुद्वहन्तम्।
रौद्रावतारमपि रावणदीर्घदृष्टि-
सङ्कोचकारणमुदारहरिं भजामि॥ ७ ॥
दर्पोन्नमन्निशिचरेश्वरमूर्धचञ्च-
त्कोटीरचुम्बि निजबिम्बमुदीक्ष्य हृष्टम्।
पश्यन्तमात्मभुजयन्त्रणपिष्यमाण-
तत्कायशोणितनिपातमपेक्षि वक्षः॥ ८ ॥
अक्षप्रभृत्यमरविक्रमवीरनाश-
क्रोधादिव द्रुतमुदञ्चितचन्द्रहासाम्।
निद्रापिताभ्रघनगर्जनघोरघोषैः
संस्तम्भयन्तमभिनौमि दशास्यमूर्तिम्॥ ९ ॥

घूमती हुई गदाद्वारा राक्षसोंके क्षत-विक्षत होनेपर अपने आनन्दसमुद्रको अपार-सा देख रहे थे, उन अक्षयकुमारके मारकेशरूप महावीरजीको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ६ ॥ जिन्होंने इन्द्रजित् (मेघनाद) के हठात् फेंके हुए पाशबन्धको ब्रह्माजीके अनुरोधकी भाँति तत्काल ग्रहण कर लिया और रुद्रका अवतार होनेपर भी जो रावणकी विशालदृष्टिके संकोचका कारण बन गये, उन उदार वानरवीरको मैं भजता हूँ॥ ७॥ जो अभिमानसे ऊपर उठे हुए रावणके मस्तकोंपर देदीप्यमान किरीटोंमें अपने प्रतिबिम्बको देखकर उसमें अपने भुजयन्त्रद्वारा पीसे जानेवाले रावणके शरीरके रक्तपातकी अपेक्षा रखनेवाली अपनी छातीकी ओर निहारते हुए प्रसन्न हो रहे थे, उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ॥ ८ ॥ देवताओंके समान पराक्रम रखनेवाले अक्षकुमार आदि वीरोंके

आशंस्यमानविजयं रघुनाथधाम
शंसन्तमात्मकृतभूरिपराक्रमेण।
दौत्ये समागमसमन्वयमादिशन्तं
वन्दे हरेः क्षितिभृतः पृतनाप्रधानम्॥ १०॥
यस्यौचितीं समुपदिष्टवतोऽधिपुच्छं
दम्भान्धितां धियमपेक्ष्य विवर्धमानः।
नक्तञ्चराधिपतिरोषहिरण्यरेता
लङ्कां दिधक्षुरपतत्तमहं वृणोमि॥ ११॥
क्रन्दन्निशाचरकुलां ज्वलनावलीढैः
साक्षाद्गृहैरिव बहिः परिदेवमानाम्।
स्तब्धस्वपुच्छतटलग्नकृपीटयोनि-
दन्दह्यमाननगरीं परिगाहमानाम्॥ १२॥

नाशजनित क्रोधसे ही मानो जिसने शीघ्र ही बदला लेनेके लिये चन्द्रहास नामक तलवार उठा ली है, उस दशशीश (रावण)के शरीरका, गम्भीर मेघगर्जनाको भी मूक बनानेवाले अपने भयंकर सिंहनादसे स्तम्भन करते हुए हनुमान्जीको प्रणाम करता हूँ॥ ९॥ जो अपने किये हुए प्रचुर पराक्रमोंद्वारा विजयकी आशंसासे युक्त श्रीरामचन्द्रजीके तेजका वर्णन कर रहे हैं और दूतधर्ममें प्राप्त होनेके समन्वयका [अथवा समस्त शास्त्रोंके अन्वयका] उपदेश करते हैं, उन राजा सुग्रीवकी सेनाके प्रधान (सेनापति) वीरकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १०॥ उचित उपदेश दे चुकनेपर, जिनकी पूँछमें निशाचरराज रावणका कोपानल ही उसकी दम्भसे अन्धी हुई बुद्धिके सहारे बढ़कर, लंकाको जलानेकी इच्छासे वहाँ कूद पड़ा था, उन्हीं हनुमान्जीका मैं वरण करता हूँ॥ ११॥ उनकी तनी हुई पूँछके

मूर्तैर्गृहासुभिरिव द्युपुरं व्रजद्भि-
व्योम्नि क्षणं परिगतं पतगैर्ज्वलद्भिः।
पीताम्बरं दधतमुच्छ्रितदीप्ति पुच्छं
सेनां वहद्विहगराजमिवाहमीडे॥ १३॥

स्तम्भीभवत्स्वगुरुवालधिलग्नवह्नि-
ज्वालोल्ललद्ध्वजपटामिव देवतुष्ट्यै।
वन्दे यथोपरि पुरो दिवि दर्शयन्त-
मद्यैव रामविजयाजिकवैजयन्तीम्॥ १४॥

किनारे अग्नि लगी थी, उससे समस्त लंकानगरी अत्यन्त वेगसे जल रही थी, बाहर निशाचरकुलका करुणक्रन्दन मचा हुआ था, उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो अग्निज्वालासे झुलसे हुए घर ही बाहर निकलकर रो रहे हैं, ऐसी लंकामें चारों ओर दौड़ते हुए हनूमान्‌जीको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १२॥ प्रासादशिखरपर रहनेवाले तोता और कबूतर आदि पक्षी जलते हुए जब आकाशमें उड़ते थे तो ऐसा मालूम होता था मानो उन दग्ध होनेवाले गृहोंके प्राण ही मूर्तिमान् होकर स्वर्गमें जा रहे हैं; उन पक्षियोंसे क्षणभर घिरकर ऊपर उठी हुई ज्वालाओंवाली पूँछ धारण किये, जिनकी शोभा पीताम्बरधारी भगवान् विष्णुको पीठपर चढ़ाकर अपना समूह साथ लिये विचरनेवाले पक्षिराज गरुडकी-सी हो रही थी, उन हनुमान्‌जीकी मैं स्तुति करता हूँ॥ १३॥ लंकानगरके ऊपर अपनी विशाल पूँछ खंभेमें लगी हुई अग्निकी ज्वाला ही जिसमें पताकाके समान है, ऐसी रामचन्द्रजीकी रणविजयवैजयन्तीको देवताओंकी प्रसन्नताके लिये मानो आज ही आकाशमें दिखलाते हुए महावीरजीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १४॥

रक्षश्चयैकचितकक्षकपूश्चितौ यः
सीताशुचो निजविलोकनतो मृतायाः।
दाहं व्यधादिव तदन्त्यविधेयभूतं
लाङ्गूलदत्तदहनेन मुदे स नोऽस्तु॥ १५॥
आशुद्धये रघुपतिप्रणयैकसाक्ष्ये
वैदेहराजदुहितुः सरिदीश्वराय।
न्यासं ददानमिव पावकमापतन्त-
मब्धौ प्रभञ्जनतनूजनुषं भजामि॥ १६॥
रक्षस्स्वतृप्तिरुडशान्तिविशेषशोण-
मक्षक्षयक्षणविधानुमितात्मदाक्ष्यम्।
भास्वत्प्रभातरविभानुभरावभासं
लङ्काभयङ्करममुं भगवन्तमीडे॥ १७॥

जिन्होंने सीताजीकी पीड़ाको, जो उनके दर्शनमात्रसे मर चुकी थी, एकमात्र राक्षस-समूहरूप काठ-कबाड़ोंसे बनी हुई लंकारूपिणी चितापर सुलाकर, अपनी पूँछकी लगायी हुई अग्निसे उसका मरणान्त कालोचित दाह-संस्कार किया, वे हनूमान्जी हमारी प्रसन्नताके कारण हों॥ १५॥ विदेहनन्दिनी सीताकी शुद्धिके लिये श्रीरामचन्द्रजीके प्रति प्रेमके एकमात्र साक्षीपदपर स्थित पावकको मानो समुद्रके यहाँ धरोहर रखनेके निमित्त, उसमें कूद पड़नेवाले, वायुनन्दनको मैं भजता हूँ॥ १६॥ राक्षसों [के साथ संग्राम] में तृप्त न होनेके कारण, क्रोध एवं अशान्तिसे जो विशेष रक्तवर्ण हो गये हैं, अक्षकुमारके संहारकालके कार्योंसे जिनकी दक्षताका अनुमान किया जा चुका है तथा जो प्रभातसमयके प्रभामय सूर्यके किरणोंके समान कान्तिमान् हैं, लंकाको भय देनेवाले उन

तीर्त्वोदधिं जनकजार्पितमाप्य चूडा-
रत्नं रिपोरपि पुरं परमस्य दग्ध्वा।
श्रीरामहर्षगलदश्र्वभिषिच्यमानं
तं ब्रह्मचारिवरवानरमाश्रयेऽहम्॥ १८॥

यः प्राणवायुजनितो गिरिशस्य शान्तः
शिष्योऽपि गौतमगुरुर्मुनिशङ्करात्मा।
हृद्यो हरस्य हरिवद्धरितां गतोऽपि
धीधैर्यशास्त्रविभवेऽतुलमाश्रये तम्॥ १९॥

स्कन्धेऽधिवाह्य जगदुत्तरगीतिरीत्या
यः पार्वतीश्वरमतोषयदाशुतोषम्।
तस्मादवाप च वरानपरानवाप्यान्
तं वानरं परमवैष्णवमीशमीडे॥ २०॥

भगवान् हनूमान्की मैं स्तुति करता हूँ॥ १७॥ समुद्र लाँघकर, सीताके दिये हुए चूडारत्नको पाकर और शत्रुके महान् नगरको भी जलाकर, श्रीरामचन्द्रजीके आनन्दाश्रुसे सींचे जानेवाले, ब्रह्मचारिश्रेष्ठ वानरवीरकी मैं शरण लेता हूँ॥ १८॥ जो पूर्वजन्ममें गौतम ऋषिके शंकरात्मा नामक शान्त शिष्य होनेपर भी उनके गुरुके समान श्रद्धापात्र थे; शंकरजीके प्राणवायुसे जिनका प्रादुर्भाव हुआ है, जो हरि (वानर) भावको प्राप्त होकर भी हरि (विष्णु) की भाँति शंकरजीके हार्दिक प्रेमी हैं तथा बुद्धि, धैर्य और शास्त्रके वैभवमें जिनकी कहीं समता नहीं है, उन हनूमान्जीकी मैं शरण लेता हूँ॥ १९॥ जिन्होंने आशुतोष उमानाथको कंधेपर चढ़ाकर, अपनी लोकोत्तर गायन-शैलीसे उन्हें प्रसन्न किया और उनसे पानेयोग्य उत्तम वरोंको भी प्राप्त

उमापतेः कविपतेः स्तुतिर्बाल्यविजृम्भिता।
हनूमतस्तुष्टयेऽस्तु वीरविंशतिकाभिधा॥

इति श्रीकविपत्युपनामकोमापतिशर्मद्विवेदिविरचितं
वीरविंशतिकाख्यं श्रीहनुमत्स्तोत्रं सम्पूर्णम्।

६५—गङ्गाष्टकम्

मातः शैलसुतासपत्नि वसुधाशृङ्गारहारावलि
स्वर्गारोहणवैजयन्ति भवतीं भागीरथि प्रार्थये।
त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बु पिबतस्त्वद्वीचिषु प्रेङ्खत-
स्त्वन्नाम स्मरतस्त्वदर्पितदृशः स्यान्मे शरीरव्ययः॥ १॥

त्वत्तीरे तरुकोटरान्तरगतो गङ्गे विहङ्गो वरं
त्वन्नीरे नरकान्तकारिणि वरं मत्स्योऽथवा कच्छपः।

कर लिया, मैं उन परम वैष्णव भगवान् वानरवीरकी स्तुति करता हूँ॥ २०॥ कविपति श्रीउमापतिजीकी बालकालमें रचित, यह वीरविंशतिका नामकी स्तुति हनुमान्जीकी प्रसन्नताके लिये हो।

पृथ्वीकी शृंगारमाला, पार्वतीजीकी सपत्नी और स्वर्गारोहणके लिये वैजयन्ती पताकारूपिणी हे माता भागीरथि! मैं तुमसे यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारे तटपर निवास करते हुए, तुम्हारा जल पान करते हुए, तुम्हारी तरंगभंगीमें तरंगायमान होते हुए, तुम्हारा नामस्मरण करते हुए और तुम्हींमें दृष्टि लगाये हुए मेरा शरीरपात हो॥ १॥ हे गंगे! तुम्हारे तटवर्ती तरुवरके कोटरमें

नैवान्यत्र मदान्धसिन्धुरघटासङ्घट्टघण्टारण-
त्कारत्रस्तसमस्तवैरिवनितालब्धस्तुतिर्भूपतिः ॥ २ ॥

उक्षा पक्षी तुरग उरगः कोऽपि वा वारणो वा
वारीणः स्यां जननमरणक्लेशदुःखासहिष्णुः ।
न त्वन्यत्र प्रविरलरणत्कङ्कणक्वाणमिश्रं
वारस्त्रीभिश्चमरमरुता वीजितो भूमिपालः ॥ ३ ॥

काकैर्निष्कुषितं श्वभिः कवलितं गोमायुभिर्लुण्ठितं
स्त्रोतोभिश्चलितं तटाम्बुलुलितं वीचीभिरान्दोलितम् ।
दिव्यस्त्रीकरचारुचामरमरुत्संवीज्यमानः कदा
द्रक्ष्येऽहं परमेश्वरि त्रिपथगे भागीरथि स्वं वपुः ॥ ४ ॥

पक्षी होकर रहना अच्छा है तथा हे नरकनिवारिणि! तुम्हारे जलमें मत्स्य या कच्छप होकर जन्म लेना भी बहुत अच्छा है, किन्तु दूसरी जगह मदमत्त गजराजोंके जमघटके घण्टारवसे भयभीत हुई शत्रुमहिलाओंसे स्तुत पृथ्वीपति भी होना अच्छा नहीं ॥ २ ॥ हे मातः! मैं भले ही आपके आरपार रहनेवाला जन्म-मरणरूप क्लेशको सहन न करनेवाला कोई बैल, पक्षी, घोड़ा, सर्प अथवा हाथी हो जाऊँ, किन्तु [आपसे दूर] किसी अन्य स्थानपर ऐसा राजा भी न होऊँ, जिसपर वारांगनाएँ मन्द-मन्द झनकारते हुए कंकणोंकी सुमधुर ध्वनिसे युक्त चमर डुला रही हों ॥ ३ ॥ हे परमेश्वरि! हे त्रिपथगे! हे भागीरथि! [मरनेके अनन्तर] देवांगनाओंके करकमलोंमें सुशोभित सुन्दर चमरोंकी हवासे सेवित हुआ मैं अपने मृत शरीरको काकोंसे कुरेदा जाता हुआ, कुत्तोंसे भक्षित होता हुआ, गीदड़ोंसे लुण्ठित होता हुआ, तुम्हारे स्त्रोतमें पड़कर बहता हुआ, कभी किनारेके स्वल्प जलमें हिलता हुआ और फिर तरंगभंगियोंसे आन्दोलित होता

अभिनवबिसवल्ली पादपद्मस्य विष्णो-
र्मदनमथनमौलेर्मालतीपुष्पमाला।
जयति जयपताका काप्यसौ मोक्षलक्ष्म्याः
क्षपितकलिकलङ्का जाह्नवी नः पुनातु॥ ५॥

एतत्तालतमालसालसरलव्यालोलवल्लीलता-
च्छन्नं सूर्यकरप्रतापरहितं शङ्खेन्दुकुन्दोज्ज्वलम्।
गन्धर्वामरसिद्धकिन्नरवधूत्तुङ्गस्तनास्फालितं
स्नानाय प्रतिवासरं भवतु मे गाङ्गं जलं निर्मलम्॥ ६॥

गाङ्गं वारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम्।
त्रिपुरारिशिरश्चारि पापहारि पुनातु माम्॥ ७॥

पापापहारि दुरितारि तरङ्गधारि
शैलप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि।

हुआ कब देखूँगा ?॥ ४॥ जो भगवान् विष्णुके चरणकमलका नूतनमृणाल (कमलनाल) है तथा कामारि त्रिपुरारिके ललाटकी मालती-माला है, वह मोक्षलक्ष्मीकी विलक्षण विजयपताका जयको प्राप्त हो। कलिकलंकको नष्ट करनेवाली, वह जाह्नवी हमें पवित्र करे॥ ५॥ जो ताल, तमाल, साल,सरल तथा चंचल वल्लरी और लताओंसे आच्छादित है, सूर्यकिरणोंके तापसे रहित है, शंख, कुन्द और चन्द्रके समान उज्ज्वल है तथा गन्धर्व, देवता, सिद्ध और किन्नरोंकी कामिनियोंके पीन पयोधरोंसे आस्फालित (टकराया हुआ) है, वह अत्यन्त निर्मल गंगाजल नित्यप्रति मेरे स्नानके लिये हो॥ ६॥ जो श्रीमुरारिके चरणोंसे उत्पन्न हुआ है, श्रीशंकरके सिरपर विराजमान है तथा सम्पूर्ण पापोंको हरण करनेवाला है, वह मनोहर गंगाजल मुझे पवित्र करे॥ ७॥ जो पापोंको हरण करनेवाला,

झङ्कारकारि हरिपादरजोऽपहारि
गाङ्गं पुनातु सततं शुभकारि वारि॥ ८॥

गङ्गाष्टकं पठति यः प्रयतः प्रभाते
वाल्मीकिना विरचितं शुभदं मनुष्यः।
प्रक्षाल्य गात्रकलिकल्मषपङ्कमाशु
मोक्षं लभेत्पतति नैव नरो भवाब्धौ॥ ९॥

इति श्रीमहर्षिवाल्मीकिविरचितं गङ्गाष्टकं सम्पूर्णम्।

६६—श्रीगङ्गाष्टकम्

भगवति तव तीरे नीरमात्राशनोऽहं
विगतविषयतृष्णः कृष्णमाराधयामि।
सकलकलुषभङ्गे स्वर्गसोपानसङ्गे
तरलतरतरङ्गे देवि गङ्गे प्रसीद॥ १॥

दुष्कर्मोंका शत्रु, तरंगमय, शैल-खण्डोंपर बहनेवाला, पर्वतराज हिमालयकी गुहाओंको विदीर्ण करनेवाला, मधुर कलकल-ध्वनियुक्त और श्रीहरिकी चरणरजको धोनेवाला है, वह निरन्तर शुभकारी गंगाजल मुझे पवित्र करे॥ ८॥ जो पुरुष वाल्मीकिजीके रचे हुए इस कल्याणप्रद गंगाष्टकको प्रातःकाल एकाग्रचित्तसे पढ़ता है, वह अपने शरीरकी कलिकल्मषरूप कीचड़को धोकर, शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करता है और फिर संसार-समुद्रमें नहीं गिरता॥ ९॥

हे देवि! तुम्हारे तीरपर केवल तुम्हारा जलपान करता हुआ, विषय-

भगवति भवलीलामौलिमाले तवाम्भः-
कणमणुपरिमाणं प्राणिनो ये स्पृशन्ति।
अमरनगरनारीचामरग्राहिणीनां
विगतकलिकलङ्कातङ्कमङ्के लुठन्ति॥ २॥

ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती
स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती।
क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमूर्निर्भरं भर्त्सयन्ती
पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित्पावनी नः पुनातु॥ ३॥

मज्जन्मातङ्गकुम्भच्युतमदमदिरामोदमत्तालिजालं
स्नानैः सिद्धाङ्गनानां कुचयुगविगलत्कुङ्कुमासङ्गपिङ्गम्।
सायंप्रातर्मुनीनां कुशकुसुमचयैश्छन्नतीरस्थनीरं
पायान्नो गाङ्गमम्भः करिकलभकराक्रान्तरंहस्तरङ्गम्॥ ४॥

तृष्णासे रहित हो, मैं श्रीकृष्णचन्द्रकी आराधना करूँ। हे सकल पापविनाशिनि स्वर्ग-सोपानरूपिणि! तरलतरंगिणि! देवि गंगे! मुझपर प्रसन्न हो॥ १॥ हे भगवति! तुम महादेवजीके मस्तककी लीलामयी माला हो, जो प्राणी तुम्हारे जलकणके अणुमात्रको भी स्पर्श करते हैं, वे कलिकलंकके भयको त्यागकर, देवपुरीकी चँवरधारिणी अप्सराओंकी गोदमें शयन करते हैं॥ २॥ ब्रह्माण्डको फोड़कर निकलनेवाली, महादेवजीकी जटा-लताको उल्लसित करती हुई, स्वर्गलोकसे गिरती हुई, सुमेरुकी गुफा और पर्वतमालासे झड़ती हुई, पृथ्वीपर लोटती हुई, पापसमूहकी सेनाको कड़ी फटकार देती हुई, समुद्रको भरती हुई, देवपुरीकी पवित्र नदी गंगा हमें पवित्र करे॥ ३॥ स्नान करते हुए हाथियोंके कुम्भस्थलसे झरते हुए मदरूपी मदिराकी गन्धके कारण मधुपवृन्द जिससे

आदावादिपितामहस्य नियमव्यापारपात्रे जलं
पश्चात्पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम्।
भूयः शम्भुजटाविभूषणमणिर्जह्नोर्महर्षेरियं
कन्या कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते॥ ५॥
शैलेन्द्रादवतारिणी निजजले मज्जज्जनोत्तारिणी
पारावारविहारिणी भवभयश्रेणीसमुत्सारिणी।
शेषाहेरनुकारिणी हरशिरोवल्लीदलाकारिणी
काशीप्रान्तविहारिणी विजयते गङ्गा मनोहारिणी॥ ६॥
कुतो वीचिर्वीचिस्तव यदि गता लोचनपथं
त्वमापीता पीताम्बरपुरनिवासं वितरसि।
त्वदुत्सङ्गे गङ्गे पतति यदि कायस्तनुभृतां
तदा मातः शातक्रतवपदलाभोऽप्यतिलघुः॥ ७॥

मतवाले हो रहे हैं, सिद्धोंकी स्त्रियोंके स्तनोंसे बहे हुए कुंकुमके मिलनेसे जो पिंगलवर्ण हो रहा है तथा सायं-प्रातः मुनियोंद्वारा अर्पित कुश और पुष्पोंके समूहसे जो किनारेपर ढका हुआ है, हाथियोंके बच्चोंकी सूँड़ोंसे जिनकी तरंगोंका वेग आक्रान्त हो रहा है, वह गङ्गाजल हमारा कल्याण करे॥ ४॥ जह्नु महर्षिकी कन्या, पापनाशिनी भगवती भागीरथी, पहले ब्रह्माके कमण्डलुमें जलरूपसे, फिर शेषशायी भगवान्के पवित्र चरणोदकरूपसे और तदनन्तर महादेवजीकी जटाको सुशोभित करनेवाली मणिरूपसे दीख रही है॥ ५॥ हिमालयसे उतरनेवाली, अपने जलमें गोता लगानेवालोंका उद्धार करनेवाली, समुद्रविहारिणी, संसार-संकटोंका नाश करनेवाली, [विस्तारमें] शेषनागका अनुकरण करनेवाली, शिवजीके मस्तकपर लताके समान सुशोभित, काशीक्षेत्रमें बहनेवाली, मनोहारिणी गंगाजी विजयिनी हो रही हैं॥ ६॥ यदि तुम्हारी तरंग नेत्रोंके सामने आ जाय तो फिर संसारकी तरंग कहाँ रह सकती है? तुम अपना जलपान

गङ्गे त्रैलोक्यसारे सकलसुरवधूधौतविस्तीर्णतोये
पूर्णब्रह्मस्वरूपे हरिचरणरजोहारिणी स्वर्गमार्गे।
प्रायश्चित्तं यदि स्यात्तव जलकणिका ब्रह्महत्यादिपापे
कस्त्वां स्तोतुं समर्थस्त्रिजगदघहरे देवि गङ्गे प्रसीद॥ ८ ॥
मातर्जाह्नवि शम्भुसङ्गवलिते मौलौ निधायाञ्जलिं
त्वत्तीरे वपुषोऽवसानसमये नारायणाङ्घ्रिद्वयम्।
सानन्दं स्मरतो भविष्यति मम प्राणप्रयाणोत्सवे
भूयाद्भक्तिरविच्युताहरिहराद्वैतात्मिका शाश्वती॥ ९ ॥
गङ्गाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतो नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥ १० ॥

इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितं श्रीगङ्गाष्टकं सम्पूर्णम्।

करनेपर वैकुण्ठलोकमें निवास देती हो, हे गंगे! यदि जीवोंका शरीर तुम्हारी गोदमें छूट जाता है, तो हे मातः! उस समय इन्द्रपदकी प्राप्ति भी अत्यन्त तुच्छ मालूम होती है॥ ७॥ तीनों लोकोंकी सार, सर्वदेवांगनाएँ जिसमें स्नान करती हैं, ऐसे विस्तृत जलवाली, पूर्ण ब्रह्मस्वरूपिणी, स्वर्ग-मार्गमें भगवान्‌के चरणोंकी धूलि धोनेवाली, हे गंगे! जब तुम्हारे जलका एक कणमात्र ही ब्रह्महत्यादि पापोंका प्रायश्चित्त है तो हे त्रैलोक्यपापनाशिनि! तुम्हारी स्तुति करनेमें कौन समर्थ है? हे देवि गंगे! प्रसन्न हो॥ ८॥ हे शिवकी संगिनी मातः गंगे! शरीर शान्त होनेके समय प्राण-यात्राके उत्सवमें, तुम्हारे तीरपर, सिर नवाकर हाथ जोड़े हुए, आनन्दसे भगवान्‌के चरणयुगलका स्मरण करते हुए मेरी अविचल भावसे हरि-हरमें अभेदात्मिका नित्य भक्ति बनी रहे॥ ९॥ जो पुरुष शुद्ध होकर इस पवित्र गंगाष्टकका पाठ करता है; वह सब पापोंसे मुक्त होकर वैकुण्ठलोकमें जाता है॥ १०॥

६७—श्रीगङ्गास्तोत्रम्

देवि सुरेश्वरि भगवति गङ्गे त्रिभुवनतारिणि तरलतरङ्गे।
शङ्करमौलिविहारिणि विमले मम मतिरास्तां तव पदकमले॥ १॥
भागीरथि सुखदायिनि मातस्तव जलमहिमा निगमे ख्यातः।
नाहं जाने तव महिमानं पाहि कृपामयि मामज्ञानम्॥ २॥
हरिपदपाद्यतरङ्गिणि गङ्गे हिमविधुमुक्ताधवलतरङ्गे।
दूरीकुरु मम दुष्कृतिभारं कुरु कृपया भवसागरपारम्॥ ३॥
तव जलममलं येन निपीतं परमपदं खलु तेन गृहीतम्।
मातर्गङ्गे त्वयि यो भक्तः किल तं द्रष्टुं न यमः शक्तः॥ ४॥
पतितोद्धारिणि जाह्नवि गङ्गे खण्डितगिरिवरमण्डितभङ्गे।
भीष्मजननि हे मुनिवरकन्ये पतितनिवारिणि त्रिभुवनधन्ये॥ ५॥

हे देवि गंगे! तुम देवगणकी ईश्वरी हो, हे भगवति! तुम त्रिभुवनको तारनेवाली, विमल और तरल तरंगमयी तथा शंकरके मस्तकपर विहार करनेवाली हो। हे मातः! तुम्हारे चरणकमलोंमें मेरी मति लगी रहे॥ १॥ हे भागीरथि! तुम सब प्राणियोंको सुख देती हो, हे मातः! वेद-शास्त्रमें तुम्हारे जलका माहात्म्य वर्णित है, मैं तुम्हारी महिमा कुछ नहीं जानता, हे दयामयि! मुझ अज्ञानीकी रक्षा करो॥ २॥ हे गंगे! तुम श्रीहरिके चरणोंकी चरणोदकमयी नदी हो, हे देवि! तुम्हारी तरंगें हिम, चन्द्रमा और मोतीकी भाँति श्वेत हैं, तुम मेरे पापोंका भार दूर कर दो और कृपा करके मुझे भवसागरके पार उतारो॥ ३॥ हे देवि! जिसने तुम्हारा जल पी लिया, अवश्य ही उसने परमपद पा लिया, हे मातः गंगे! जो तुम्हारी भक्ति करता है उसको यमराज नहीं देख सकता (अर्थात् तुम्हारे भक्तगण यमपुरीमें न जाकर वैकुण्ठमें जाते हैं)॥ ४॥ हे पतितजनोंका उद्धार करनेवाली जह्नुकुमारी गंगे! तुम्हारी तरंगें

कल्पलतामिव फलदां लोके प्रणमति यस्त्वां न पतति शोके।
पारावारविहारिणि गङ्गे विमुखयुवतिकृततरलापाङ्गे॥ ६ ॥
तव चेन्मातः स्त्रोतः स्नातः पुनरपि जठरे सोऽपि न जातः।
नरकनिवारिणि जाह्नवि गङ्गे कलुषविनाशिनि महिमोत्तुङ्गे॥ ७ ॥
पुनरसदङ्गे पुण्यतरङ्गे जय जय जाह्नवि करुणापाङ्गे।
इन्द्रमुकुटमणिराजितचरणे सुखदे शुभदे भृत्यशरण्ये॥ ८ ॥
रोगं शोकं तापं पापं हर मे भगवति कुमतिकलापम्।
त्रिभुवनसारे वसुधाहारे त्वमसि गतिर्मम खलु संसारे॥ ९ ॥
अलकानन्दे परमानन्दे कुरु करुणामयि कातरवन्द्ये।
तव तटनिकटे यस्य निवासः खलु वैकुण्ठे तस्य निवासः॥ १० ॥

गिरिराज हिमालयको खण्डित करके बहती हुई सुशोभित होती हैं, तुम भीष्मकी जननी और जह्नुमुनिकी कन्या हो, पतितपावनी होनेके कारण तुम त्रिभुवनमें धन्य हो॥५॥ हे मातः! तुम इस लोकमें कल्पलताकी भाँति फल प्रदान करनेवाली हो, तुम्हें जो प्रणाम करता है वह कभी शोकमें नहीं पड़ता। हे गंगे! तुम समुद्रके साथ विहार करती हो और तुम्हारा चपल अपांग (नेत्र-कोण) विमुख वनिताकी तरह चंचल है॥६॥ हे गंगे! जिसने तुम्हारे प्रवाहमें स्नान कर लिया, वह फिर मातृगर्भमें प्रवेश नहीं करता, हे जाह्नवि! तुम भक्तोंको नरकसे बचाती हो और उनके पापोंका नाश करती हो, तुम्हारा माहात्म्य अतीव उच्च है॥७॥ हे करुणाकटाक्षवाली जह्नुपुत्री गंगे! मेरे अपावन अंगोंपर अपनी पावन तरंगोंसे युक्त हो उल्लसित होनेवाली, तुम्हारी जय हो! जय हो!! तुम्हारे चरण इन्द्रके मुकुटमणिसे प्रदीप्त हैं, तुम सबको सुख और शुभ देनेवाली हो और अपने सेवकको आश्रय प्रदान करती हो॥८॥ हे भगवति! तुम मेरे रोग, शोक, ताप, पाप और कुमति-कलापको हर लो, तुम त्रिभुवनकी सार और वसुधाका हार हो, हे देवि! इस संसारमें एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो॥९॥ हे दुःखियोंकी वन्दनीया देवि गंगे! तुम

वरमिह नीरे कमठो मीनः किं वा तीरे शरटः क्षीणः।
अथवा श्वपचो मलिनो दीनस्तव न हि दूरे नृपतिकुलीनः॥ ११॥
भो भुवनेश्वरि पुण्ये धन्ये देवि द्रवमयि मुनिवरकन्ये।
गङ्गास्तवमिमममलं नित्यं पठति नरो यः स जयति सत्यम्॥ १२॥
येषां हृदये गङ्गाभक्तिस्तेषां भवति सदा सुखमुक्तिः।
मधुराकान्तापज्झटिकाभिः परमानन्दकलितललिताभिः॥ १३॥
गङ्गास्तोत्रमिदं भवसारं वाञ्छितफलदं विमलं सारम्।
शङ्करसेवकशङ्कररचितं पठति सुखी स्तव इति च समाप्तः॥ १४॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं गङ्गास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

अलकापुरीको आनन्द देनेवाली और परमानन्दमयी हो, तुम मुझपर कृपा करो, हे मातः! जो तुम्हारे तटके निकट वास करता है, वह मानो वैकुण्ठमें ही वास करता है॥ १०॥ हे देवि! तुम्हारे जलमें कच्छप या मीन बनकर रहना अच्छा है, तुम्हारे तीरपर दुबला-पतला गिरगिट (कृकलास) बनकर रहना अच्छा है या अति मलिन, दीन चाण्डालकुलमें जन्म ग्रहण कर रहना अच्छा है; परन्तु (तुमसे) दूर कुलीन नरपति होकर रहना भी अच्छा नहीं॥ ११॥ हे देवि! तुम त्रिभुवनकी ईश्वरी हो, तुम पावन और धन्य हो, जलमयी तथा मुनिवरकी कन्या हो। जो प्रतिदिन इस गंगास्तवका पाठ करता है, वह निश्चय ही संसारमें जयलाभ कर सकता है॥ १२॥ जिनके हृदयमें गंगाके प्रति अचला भक्ति है, वे सदा ही आनन्द और मुक्ति लाभ करते हैं; यह स्तुति परमानन्दमयी सुललित पदावलीसे युक्त, मधुर और कमनीय है॥ १३॥ इस असार संसारमें उक्त गंगास्तव ही निर्मल सारवान् पदार्थ है, यह भक्तोंको अभिलषित फल प्रदान करता है; शंकरके सेवक शंकराचार्यकृत इस स्तोत्रको जो पढ़ता है, वह सुखी होता है—इस प्रकार यह स्तोत्र समाप्त हुआ॥ १४॥

६८—श्रीयमुनाष्टकम्

मुरारिकायकालिमाललामवारिधारिणी
तृणीकृतत्रिविष्टपा त्रिलोकशोकहारिणी।
मनोऽनुकूलकूलकुञ्जपुञ्जधूतदुर्मदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा॥ १॥
मलापहारिवारिपूरभूरिमण्डितामृता
भृशं प्रपातकप्रवञ्चनातिपण्डितानिशम्।
सुनन्दनन्दनाङ्गसङ्गरागरञ्जिता हिता। धुनोतु०॥ २॥
लसत्तरङ्गसङ्गधूतभूतजातपातका
नवीनमाधुरीधुरीणभक्तिजातचातका।
तटान्तवासदासहंससंसृता हि कामदा। धुनोतु०॥ ३॥

जो भगवान् कृष्णचन्द्रके अंगोंकी नीलिमा लिये हुए मनोहर जलौघ धारण करती है, त्रिभुवनका शोक हरनेवाली होनेके कारण स्वर्गलोकको तृणके समान सारहीन समझती है, जिसके मनोरम तटपर निकुंजोंका पुंज वर्तमान है, जो लोगोंका दुर्मद दूर कर देती है; वह कालिन्दी यमुना सदा हमारे आन्तरिक मलको धोवे॥ १॥ जो मलापहारी सलिलसमूहसे अत्यन्त सुशोभित है, मुक्तिदायक है, सदा ही बड़े-बड़े पातकोंको लूट लेनेमें अत्यन्त प्रवीण है, सुन्दर नन्द-नन्दनके अंगस्पर्शजनित रागसे रंजित है, सबकी हितकारिणी है, वह कालिन्दी यमुना सदा ही हमारे मानसिक मलको धोवे॥ २॥ जो अपनी सुहावनी तरंगोंके सम्पर्कसे समस्त प्राणियोंके पापोंको धो डालती है, जिसके तटपर नूतन मधुरिमासे भरे भक्तिरसके अनेक चातक रहा करते हैं, तटके समीप वास करने-वाले भक्तरूपी हंसोंसे जो सेवित रहती है और उनकी कामनाओंको

विहाररासखेदभेदधीरतीरमारुता
गता गिरामगोचरे यदीयनीरचारुता।
प्रवाहसाहचर्यपूतमेदिनीनदीनदा ।धुनोतु० ॥ ४ ॥

तरङ्गसङ्गसैकताञ्चितान्तरा सदासिता
शरन्निशाकरांशुमञ्जुमञ्जरीसभाजिता।
भवार्चनाय चारुणाम्बुनाधुना विशारदा।धुनोतु० ॥ ५ ॥

जलान्तकेलिकारिचारुराधिकाङ्गरागिणी
स्वभर्तुरन्यदुर्लभाङ्गसङ्गतांशभागिनी।
स्वदत्तसुप्तसप्तसिन्धुभेदनातिकोविदा ।धुनोतु० ॥ ६ ॥

पूर्ण करनेवाली है; वह कलिन्द-कन्या यमुना सदा हमारे मानसिक मलको मिटावे॥ ३॥ जिसके तटपर विहार और रास-विलासके खेदको मिटा देनेवाली मन्द-मन्द वायु चल रही है, जिसके नीरकी सुन्दरताका वाणीद्वारा वर्णन नहीं हो सकता, जो अपने प्रवाहके सहयोगसे पृथ्वी, नदी और नदोंको पावन बनाती है; वह कलिन्दनन्दिनी यमुना सदा हमारे मानसिक मलको दूर करे॥ ४॥ लहरोंसे सम्पर्कित वालुकामय तटसे जिसका मध्यभाग सुशोभित है, जिसका वर्ण सदा ही श्यामल रहता है, जो शरद्‌ऋतुके चन्द्रमाकी किरणमयी मनोहर मञ्जरीसे अलंकृत होती है और सुन्दर सलिलसे संसारको सन्तोष देनेमें जो कुशल है, वह कलिन्द-कन्या यमुना सदा हमारे मानसिक मलको नष्ट करे॥ ५॥ जो जलके भीतर क्रीडा करनेवाली सुन्दरी राधाके अंगरागसे युक्त है, अपने स्वामी श्रीकृष्णके अंगस्पर्शसुखका जो अन्य किसीके लिये दुर्लभ है, उपभोग करती है, जो अपने प्रवाहसे प्रशान्त सप्त-समुद्रोंमें हलचल पैदा करनेमें अत्यन्त कुशल है; वह कालिन्दी यमुना सदा हमारे आन्तरिक मलको धोवे॥ ६॥

जलच्युताच्युताङ्गरागलम्पटालिशालिनी
विलोलराधिकाकचान्तचम्पकालिमालिनी।
सदावगाहनावतीर्णभर्तृभृत्यनारदा । धुनोतु० ॥ ७॥
सदैव नन्दनन्दकेलिशालिकुञ्जमञ्जुला
तटोत्थफुल्लमल्लिकाकदम्बरेणुसूज्ज्वला।
जलावगाहिनां नृणां भवाब्धिसिन्धुपारदा। धुनोतु० ॥ ८॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीयमुनाष्टकं सम्पूर्णम्।

६९—यमुनाष्टकम्

कृपापारावारां तपनतनयां तापशमनीं
मुरारिप्रेयस्कां भवभयदवां भक्तवरदाम्।

जलमें धुलकर गिरे हुए श्रीकृष्णके अंगरागसे अपना अंगस्नान करती हुई सखियोंसे जिसकी शोभा बढ़ रही है, जो राधाकी चंचल अलकोंमें गुँथी हुई चम्पक-मालासे मालाधारिणी हो गयी है, स्वामी श्रीकृष्णके भृत्य नारद आदि जिसमें सदा ही स्नान करनेके लिये आया करते हैं; वह कलिन्द-कन्या यमुना हमारे आन्तरिक मलको धो डाले॥७॥ जिसके तटवर्ती मंजुल निकुंज सदा ही नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी लीलाओंसे सुशोभित होते हैं; किनारेपर बढ़कर खिली हुई मल्लिका और कदम्बके पुष्प-परागसे जिसका वर्ण उज्ज्वल हो रहा है, जो अपने जलमें डुबकी लगानेवाले मनुष्योंको भवसागरसे पार कर देती है, वह कलिन्द-कन्या यमुना सदा ही हमारे मानसिक मलको दूर बहावे॥८॥

जो कृपाकी समुद्र, सूर्यकुमारी, तापको शान्त करनेवाली, श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रेमिका, संसारभीतिके लिये दावानलस्वरूप, भक्तोंको वर देनेवाली और आकाशजालसे मुक्त लक्ष्मीस्वरूपा हैं, उन नित्यफलदायनी यमुनाजीका धीर

वियज्जालान्मुक्तां श्रियमपि सुखाप्तेः प्रतिदिनं
सदा धीरो नूनं भजति यमुनां नित्यफलदाम्॥ १ ॥
मधुवनचारिणि भास्करवाहिनि जाह्नविसङ्गिनि सिन्धुसुते
मधुरिपुभूषिणि माधवतोषिणि गोकुलभीतिविनाशकृते।
जगदघमोचिनि मानसदायिनि केशवकेलिनिदानगते
जय यमुने जय भीति निवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम्॥ २ ॥
अयि मधुरे मधुमोदविलासिनि शैलविहारिणि वेगभरे
परिजनपालिनि दुष्टनिषूदिनि वाञ्छितकामविलासधरे।
व्रजपुरवासिजनार्जितपातकहारिणि विश्वजनोद्धरिके। जय० ॥ ३ ॥
अतिविपदम्बुधिमग्नजनं भवतापशताकुलमानसकं
गतिमतिहीनमशेषभयाकुलमागतपादसरोजयुगम् ।
ऋणभयभीतिमनिष्कृतिपातककोटिशतायुतपुञ्जतरं। जय० ॥ ४ ॥

पुरुष सुखप्राप्तिके लिये निश्चयपूर्वक निरन्तर प्रतिदिन भजन करता है॥ १ ॥ हे मधुवनमें विहार करनेवाली! हे भास्करवाहिनि! हे गंगाजीकी सहचरी! हे सिन्धुसुते! हे श्रीमधुसूदनविभूषिणि! हे माधवतृप्तिकारिणि! हे गोकुलका भय दूर करनेवाली! हे जगत्पापविनाशिनि! हे वांछितफलदायिनि! हे कृष्णकेलिकी आश्रयभूता सकल भयनिवारिणी संकटनाशिनी यमुने! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥ २ ॥ अयि मधुरे! अयि मधुगन्धविलासिनि! हे पर्वतोंमें विहार करनेवाली! परम वेगवती अपने तीरवर्ती भक्तजनोंका पालन करनेवाली, दुष्टोंका संहार करनेवाली, इच्छित कामनाओंकी विलासभूमि, व्रजभूमिनिवासियोंके अर्जित पापोंको हरण करनेवाली तथा सम्पूर्ण जीवोंका उद्धार करनेवाली, सकलभयनिवारिणी संकटनाशिनी यमुने! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥ ३ ॥ जो महान् विपत्तिसागरमें निमग्न है, सैकड़ों सांसारिक संतापोंसे जिसका मन व्याकुल है, जो गति (आश्रय) और मति (विचार)-से शून्य तथा सब प्रकारके भयोंसे व्याकुल है, जो ऋण और भयसे दबा हुआ तथा

नवजलदद्युतिकोटिलसत्तनुहेममयाभररञ्जितके
तडिदवहेलिपदाञ्चलचञ्चलशोभितपीतसुचैलधरे ।
मणिमयभूषणचित्रपटासनरञ्जितगञ्जितभानुकरे। जय० ॥ ५ ॥
शुभपुलिने मधुमत्तयदूद्भवरासमहोत्सवकेलिभरे
उच्चकुलाचलराजितमौक्तिकहारमयाभररोदसिके ।
नवमणिकोटिकभास्करकञ्चुकिशोभिततारकहारयुते। जय० ॥ ६ ॥
करिवरमौक्तिकनासिकभूषणवातचमत्कृतचञ्चलके
मुखकमलामलसौरभचञ्चलमत्तमधुव्रतलोचनिके ।
मणिगणकुण्डललोलपरिस्फुरदाकुलगण्डयुगामलके। जय० ॥ ७ ॥

सैकड़ों-हजारों-करोड़ों प्रतिकारशून्य पापोंका पुतला है, तुम्हारे चरणकमलयुगलमें प्राप्त हुए ऐसे मुझको, हे सकल भयनिवारिणी संकटनाशिनी यमुने! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥४॥ तुम्हारा शरीर करोड़ों नवीन मेघोंकी कान्तिसे सुशोभित तथा सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित है, जिसका चंचल अंचल चपलाकी भी अवहेलना करता है, ऐसे पीत दुकूलको धारण करके तुम परम शोभायमान हो रही हो तथा मणिमय आभूषण और चित्र-विचित्र वस्त्र एवं आसनसे रंजित होकर तुमने सूर्यकी किरणोंको भी कुण्ठित कर दिया है; हे सकल भयनिवारिणी संकटहारिणी यमुने! तुम्हारी जय हो, जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥५॥ हे सुन्दर तटोंवाली! हे मधुमत्त-यदुकुलोत्पन्न श्रीकृष्ण और बलरामके रासमहोत्सवकी क्रीडाभूमि! हे ऊँचे-ऊँचे कुलपर्वतोंकी श्रेणियोंपर शोभायमान मुक्तावलीरूप आभूषणोंसे पृथ्वी और आकाशको विभूषित करनेवाली, हे करोड़ों भास्करोंके समान नवीन मणियोंकी कंचुकीसे सुशोभित तथा तारावलीरूप हारसे युक्त, सकल भयनिवारिणी संकटहारिणी यमुने! तुम्हारी जय हो, जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥६॥ तुम्हारी नासिकाकी भूषणरूप गजमुक्ता वायुसे चंचल होकर झिलमिला रही है, तुम्हारे नेत्ररूप मतवाले भौंरे मानो मुखकमलकी सुवाससे चंचल हो रहे हैं तथा दोनों अमल कपोल हिलते हुए

कलरवनूपुरहेममयाचितपादसरोरुहसारुणिके
धिमिधिमिधिमिधिमिधिमितालविनोदितमानसमञ्जुलपादगते।
तव पदपङ्कजमाश्रितमानवचित्तसदाखिलतापहरे। जय० ॥ ८ ॥
भवोत्तापाम्भोधौ निपतितजनो दुर्गतियुतो
यदि स्तौति प्रातः प्रतिदिनमनन्याश्रयतया।
हयाह्रेषैः कामं करकुसुमपुञ्जैरविरतं
सदा भोक्ता भोगान्मरणसमये याति हरिताम्॥ ९ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं यमुनाष्टकं सम्पूर्णम्।

मणिमय कुण्डलोंकी झलकसे झिलमिला रहे हैं, हे सकल भयनिवारिणी संकटहारिणी यमुने! तुम्हारी जय हो, जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥ ७॥ तुम्हारे अरुण चरणकमल सुवर्णमय नूपुरोंके कलरवसे युक्त हैं, तुम मनको प्रसन्न करनेवाली 'धिमि धिमि' स्वरमयी मनोहर गतिसे गमन करती हो, जो मनुष्य तुम्हारे चरणकमलोंमें चित्त लगाता है, तुम उसके सम्पूर्ण ताप हर लेती हो; हे सकल भयनिवारिणी संकटहारिणी यमुने! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम मुझे पवित्र करो॥ ८॥ जो मनुष्य संसारके सन्तापसमुद्रमें डूबकर अत्यन्त दुर्गतिग्रस्त हो रहा है, वह यदि प्रतिदिन प्रातःकाल अनन्य चित्तसे (इस स्तोत्रद्वारा श्रीयमुनाजीकी) स्तुति करेगा, वह (यावज्जीवन) घोड़ोंकी हिनहिनाहट तथा हाथोंमें पुष्पपुंजसे सुशोभित होकर, निरन्तर सम्पूर्ण भोगोंको भोगेगा और मरनेके समय भगवद्रूप हो जायगा॥ ९ ॥

ॐ

प्रकीर्णस्तोत्राणि

७०—प्रातःस्मरणम्

(क) परब्रह्मणः

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम्।
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिमवैति नित्यं
तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसङ्घः॥ १॥
प्रातर्भजामि मनसा वचसामगम्यं
वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण।
यन्नेतिनेतिवचनैर्निगमा अवोचं-
स्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम्॥ २॥

मैं प्रातःकाल, हृदयमें स्फुरित होते हुए आत्मतत्त्वका स्मरण करता हूँ, जो सत्, चित् और आनन्दरूप है, परमहंसोंका प्राप्य स्थान है और जाग्रदादि तीनों अवस्थाओंसे विलक्षण है, जो स्वप्न, सुषुप्ति और जाग्रत् अवस्थाको नित्य जानता है, वह स्फुरणारहित ब्रह्म ही मैं हूँ, पंचभूतोंका संघात (शरीर) मैं नहीं हूँ॥ १॥ जो मन और वाणीसे अगम्य है, जिसकी कृपासे समस्त वाणी भास रही हैं, जिसका शास्त्र 'नेति-नेति' कहकर निरूपण करते हैं, जिस अजन्मा देवदेवेश्वर

प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं
पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम्।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ
रज्ज्वां भुजङ्गम इव प्रतिभासितं वै॥ ३॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं लोकत्रयविभूषणम्।
प्रातःकाले पठेद्यस्तु स गच्छेत्परमं पदम्॥ ४॥

इति श्रीमच्छङ्करभगवतः कृतौ परब्रह्मणः प्रातःस्मरणस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(ख) श्रीविष्णोः

प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिशान्त्यै
नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम्।
ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं
चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम्॥ १॥
प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना
पादारविन्दयुगलं परमस्य पुंसः।

अच्युतको अग्र्य (आदि) पुरुष कहते हैं, मैं उसका प्रातःकाल भजन करता हूँ॥ २॥ जिस सर्वस्वरूप परमेश्वरमें यह समस्त संसार रज्जुमें सर्पके समान प्रतिभासित हो रहा है, उस अज्ञानातीत, दिव्यतेजोमय, पूर्ण सनातन पुरुषोत्तमको मैं प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ॥ ३॥ ये तीनों श्लोक तीनों लोकोंके भूषण हैं, इन्हें जो कोई प्रातःकालके समय पढ़ता है, उसे परमपदकी प्राप्ति होती है॥ ४॥

गरुडवाहन, कमलनाभ, ग्राहसे ग्रसित गजेन्द्रकी मुक्तिके कारण, सुदर्शनचक्रधारी नवविकसित कमलपत्र-से नेत्रवाले नारायणका भव-भयरूपी महान् दुःखकी शान्तिके लिये, मैं प्रातः स्मरण करता हूँ॥ १॥ वेदोंका स्वाध्याय करनेवाले विप्रोंके परम आश्रय, नरकरूप संसारसमुद्रसे तारनेवाले,

नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य
पारायणप्रवणविप्रपरायणस्य ॥ २ ॥
प्रातर्भजामि भजतामभयङ्करं तं
प्राक्सर्वजन्मकृतपापभयापहत्यै ।
यो ग्राहवक्त्रपतिताङ्घ्रिगजेन्द्रघोर-
शोकप्रणाशनकरो धृतशङ्खचक्रः ॥ ३ ॥

॥ इति श्रीविष्णोः प्रातःस्मरणम् ॥

(ग) श्रीरामस्य

प्रातः स्मरामि रघुनाथमुखारविन्दं
मन्दस्मितं मधुरभाषि विशालभालम् ।
कर्णावलम्बिचलकुण्डलशोभिगण्डं
कर्णान्तदीर्घनयनं नयनाभिरामम् ॥ १ ॥

उस परमपुरुषके चरणारविन्दयुगलमें सिर झुकाकर मैं मन-वचनसे प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ॥ २ ॥ जिसने शंख-चक्र धारण करके ग्राहके मुखमें पड़े हुए चरणवाले गजेन्द्रके घोर संकटका नाश किया, भक्तको अभय करनेवाले उन भगवान्‌को मैं अपने पूर्वजन्मोंके सब पापोंका नाश करनेके लिये प्रातःकाल भजता हूँ॥ ३ ॥

जो मधुर मुसकानयुक्त, मधुरभाषी और विशाल भालसे सुशोभित हैं; कानोंमें लटके हुए चंचल कुण्डलोंसे जिनके दोनों कपोल शोभित हो रहे हैं तथा जो कर्णपर्यन्त विस्तृत बड़े-बड़े नेत्रोंसे शोभायमान और नेत्रोंको आनन्द देनेवाले हैं, श्रीरघुनाथजीके ऐसे मुखारविन्दका मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ॥ १ ॥

प्रातर्भजामि रघुनाथकरारविन्दं
रक्षोगणाय भयदं वरदं निजेभ्यः।
यद्राजसंसदि विभज्य महेशचापं
सीताकरग्रहणमङ्गलमाप सद्यः॥ २॥

प्रातर्नमामि रघुनाथपदारविन्दं
वज्राङ्कुशादिशुभरेखि सुखावहं मे।
योगीन्द्रमानसमधुव्रतसेव्यमानं
शापापहं सपदि गौतमधर्मपत्न्याः॥ ३॥

प्रातर्वदामि वचसा रघुनाथनाम
वाग्दोषहारि सकलं शमलं निहन्ति।
यत्पार्वती स्वपतिना सह भोक्तुकामा
प्रीत्या सहस्रहरिनामसमं जजाप॥ ४॥

मैं प्रात:काल श्रीरघुनाथजीके करकमलोंका स्मरण करता हूँ, जो राक्षसोंको भय देनेवाले और भक्तोंके वरदायक हैं तथा जिन्होंने राजसभामें शंकरका धनुष तोड़कर शीघ्र ही सीताका मंगलमय पाणिग्रहण किया था॥ २॥ मैं प्रात:काल श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंको नमस्कार करता हूँ, जो वज्र, अंकुश आदि शुभ रेखाओंसे युक्त, मेरे लिये सुखदायी, योगियोंके मन-मधुपद्वारा सेवित और गौतमपत्नी अहल्याके शापको दूर करनेवाले हैं॥ २॥ मैं प्रात:काल अपनी वाणीसे श्रीरघुनाथजीके नामका जप करता हूँ, जो वाणीके दोषोंको नाश करनेवाला और सर्व पापोंको हरनेवाला है तथा जिसे पार्वतीजीने अपने पति (शंकर)के साथ भोजन करनेकी इच्छासे भगवान्‌के सहस्रनामके सदृश प्रीतिसहित जपा था॥ ४॥

प्रातः श्रये श्रुतिनुतां रघुनाथमूर्तिं
नीलाम्बुजोत्पलसितेतररत्ननीलाम्।
आमुक्तमौक्तिकविशेषविभूषणाढ्यां
ध्येयां समस्तमुनिभिर्जनमुक्तिहेतुम्॥ ५॥

यः श्लोकपञ्चकमिदं प्रयतः पठेद्धि
नित्यं प्रभातसमये पुरुषः प्रबुद्धः।
श्रीरामकिङ्करजनेषु स एव मुख्यो
भूत्वा प्रयाति हरिलोकमनन्यलभ्यम्॥ ६॥

॥ इति श्रीरामस्य प्रातःस्मरणम्॥

(घ) श्रीशिवस्य

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं
गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम्।
खट्वाङ्गशूलवरदाभयहस्तमीशं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्॥ १॥

मैं प्रातःकाल श्रीरघुनाथजीकी वेदवन्दित मूर्तिका आश्रय लेता हूँ, जो नीलकमल और नीलमणिके समान नीलवर्ण, लटकते हुए मोतियोंकी मालासे विभूषित, समस्त मुनियोंकी ध्येय तथा भक्तोंको मोक्ष प्रदान करनेवाली है॥ ५॥ जो पुरुष प्रातःकाल नींदसे जगकर जितेन्द्रियभावसे इन पाँचों श्लोकोंका नित्य पाठ करता है, वह श्रीरामजीके सेवकोंमें मुख्य होकर श्रीहरिके लोकको, जो दूसरोंके लिये दुर्लभ है, प्राप्त होता है॥ ६॥

जो सांसारिक भयको हरनेवाले और देवताओंके स्वामी हैं, जो गंगाजीको धारण करते हैं, जिनका वृषभ वाहन है, जो अम्बिकाके ईश हैं तथा जिनके

प्रातर्नमामि गिरिशं गिरजार्द्धदेहं
सर्गस्थितिप्रलयकारणमादिदेवम्।
विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोऽभिरामं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्॥ २॥
प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं
वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम्।
नामादिभेदरहितं षड्भावशून्यं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्॥ ३॥
प्रातः समुत्थाय शिवं विचिन्त्य
श्लोकत्रयं येऽनुदिनं पठन्ति।
ते दुःखजातं बहुजन्मसञ्चितं
हित्वा पदं यान्ति तदेव शम्भोः॥ ४॥

॥ इति श्रीशिवस्य प्रातःस्मरणम्॥

हाथमें खट्वाङ्ग, त्रिशूल और वरद तथा अभयमुद्रा है, उन संसाररोगको हरनेके निमित्त अद्वितीय औषधरूप 'ईश' (महादेवजी) को मैं प्रातःसमयमें स्मरण करता हूँ॥ १॥ भगवती पार्वती जिनका आधा अंग हैं, जो संसारकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कारण हैं, आदिदेव हैं, विश्वनाथ हैं, विश्व-विजयी और मनोहर हैं, सांसारिक रोगको नष्ट करनेके लिये अद्वितीय औषधरूप उन गिरीश (शिव)-को मैं प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ॥ २॥ जो अन्तसे रहित आदिदेव हैं, वेदान्तसे जाननेयोग्य, पापरहित एवं महान् पुरुष हैं तथा जो नाम आदि भेदोंसे रहित, छः भाव-विकारों (जन्म, वृद्धि, स्थिरता, परिणमन, अपक्षय और विनाश)-से शून्य, संसाररोगको हरनेके निमित्त अद्वितीय औषध हैं, उन एक शिवजीको मैं प्रातःकाल भजता हूँ॥ ३॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर शिवका ध्यान कर प्रतिदिन इन तीनों श्लोकोंका पाठ करते हैं, वे

(ङ) श्रीदेव्याः

चाञ्चल्यारुणलोचनाञ्चितकृपां चन्द्रार्कचूडामणिं
चारुस्मेरमुखां चराचरजगत्संरक्षणीं सत्पदाम्।
चञ्चच्चम्पकनासिकाग्रविलसन्मुक्तामणीरञ्जितां
श्रीशैलस्थलवासिनीं भगवतीं श्रीमातरं भावये॥ १ ॥

कस्तूरीतिलकाञ्चितेन्दुविलसत्प्रोद्भासिभालस्थलीं
कर्पूरद्रवमिश्रचूर्णखदिरामोदोल्लसद्वीटिकाम्।
लोलापाङ्गतरङ्गितैरधिकृपासारैर्नतानन्दिनीं
श्रीशैलस्थलवासिनीं भगवतीं श्रीमातरं भावये॥ २ ॥

॥ इति श्रीदेव्याः प्रातःस्मरणम् ॥

लोग अनेक जन्मोंके संचित दुःखसमूहसे मुक्त होकर शिवजीके उसी कल्याणमय पदको पाते हैं॥ ४ ॥

जिनके चंचल और अरुण नेत्रोंसे करुणा प्रकट हो रही है, चन्द्रमा और सूर्य जिनके मस्तकके आभूषण हैं, जिनका मुख सुन्दर मुसकानसे सुशोभित है, जो चराचर जगत्की रक्षिका हैं, सत्पुरुष जिनके विश्रामस्थान हैं, शोभायमान चम्पाके समान सुन्दर नासिकाके अग्रभागमें मोतीकी बुलाक जिनकी शोभा बढ़ा रही है, उन श्रीशैलपर निवास करनेवाली भगवती श्रीमाताका मैं स्मरण करता हूँ॥ १ ॥ जिनका ललाट कस्तूरीकी बेंदीसे विभूषित और चन्द्रमाके समान प्रकाशमान है, जिनके मुखमें कपूरके रससे युक्त चूना और खैरकी सुगन्धसे पूर्ण पानका बीड़ा शोभा दे रहा है, जो अपने चंचल कटाक्षोंसे तरंगायमान करुणाकी धारावाहिनी वृष्टिसे प्रणत भक्तोंको आनन्द देनेवाली हैं, श्रीशैलपर निवास करनेवाली उन भगवती श्रीमाताका मैं स्मरण करता हूँ॥ २ ॥

(च) श्रीगणेशस्य

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धुं
सिन्दूरपूरपरिशोभितगण्डयुग्मम्।
उद्दण्डविघ्नपरिखण्डनचण्डदण्ड-
माखण्डलादिसुरनायकवृन्दवन्द्यम् ॥ १ ॥

प्रातर्नमामि चतुराननवन्द्यमान-
मिच्छानुकूलमखिलं च वरं ददानम्।
तं तुन्दिलं द्विरसनाधिपयज्ञसूत्रं
पुत्रं विलासचतुरं शिवयोः शिवाय॥ २ ॥

प्रातर्भजाम्यभयदं खलु भक्तशोक-
दावानलं गणविभुं वरकुञ्जरास्यम्।
अज्ञानकाननविनाशनहव्यवाह-
मुत्साहवर्धनमहं सुतमीश्वरस्य॥ ३ ॥

जो इन्द्र आदि देवेश्वरोंके समूहसे वन्दनीय हैं, अनाथोंके बन्धु हैं, जिनके युगल कपोल सिन्दूरराशिसे अनुरंजित हैं, जो उद्दण्ड (प्रबल) विघ्नोंका खण्डन करनेके लिये प्रचण्ड दण्डस्वरूप हैं; उन श्रीगणेशजीको मैं प्रात:काल स्मरण करता हूँ॥ १॥ जो ब्रह्मासे वन्दनीय हैं, अपने सेवकको उसकी इच्छाके अनुकूल पूर्ण वरदान देनेवाले हैं, तुन्दिल हैं, सर्प ही जिनका यज्ञोपवीत है, उन क्रीडाकुशल शिव-पार्वतीके पुत्र (श्रीगणेशजी) को मैं कल्याण-प्राप्तिके लिये प्रात:काल नमस्कार करता हूँ॥ २॥ जो अपने जनको अभय प्रदान करनेवाले हैं, भक्तोंके शोकरूप वनके लिये दावानल (वनाग्नि) हैं, गणोंके नायक हैं, जिनका मुख हाथीके समान और सुन्दर है और जो

श्लोकत्रयमिदं पुण्यं सदा साम्राज्यदायकम्।
प्रातरुत्थाय सततं यः पठेत्प्रयतः पुमान्॥ ४॥

॥ इति श्रीगणेशप्रातःस्मरणम्॥

(छ) श्रीसूर्यस्य

प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं
रूपं हि मण्डलमृचोऽथ तनुर्यजूंषि।
सामानि यस्य किरणाः प्रभवादिहेतुं
ब्रह्माहरात्मकमलक्ष्यमचिन्त्यरूपम्॥ १॥
प्रातर्नमामि तरणिं तनुवाङ्मनोभि-
र्ब्रह्मेन्द्रपूर्वकसुरैर्नुतमर्चितं च।
वृष्टिप्रमोचनविनिग्रहहेतुभूतं
त्रैलोक्यपालनपरं त्रिगुणात्मकं च॥ २॥

अज्ञानरूप वनको नष्ट करने (जलाने) के लिये अग्नि हैं; उन उत्साह बढ़ानेवाले शिवसुत (श्रीगणेशजी)को मैं प्रातःकाल भजता हूँ॥ ३॥ जो पुरुष प्रातःसमय उठकर संयतचित्तसे इन तीनों पवित्र श्लोकोंका नित्य पाठ करता है, उसको यह स्तोत्र सर्वदा साम्राज्यके समान सुख देता है॥ ४॥

मैं सूर्यभगवान्के उस श्रेष्ठरूपको प्रातःसमय स्मरण करता हूँ; जिसका मण्डल ऋग्वेद है, तनु यजुर्वेद है और किरणें सामवेद हैं और जो ब्रह्माका दिन है, जगत्की उत्पत्ति, रक्षा और नाशका कारण है तथा लक्ष्य और अचिन्त्यस्वरूप है॥ १॥ मैं प्रातःसमय शरीर, वाणी और मनके द्वारा ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओंसे स्तुत और पूजित, वृष्टिके कारण एवं अवृष्टिके हेतु, तीनों लोकोंके पालनमें तत्पर और सत्त्व आदि त्रिगुणरूप धारण करनेवाले तरणि

प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्तिं
पापौघशत्रुभयरोगहरं परं च।
तं सर्वलोककलनात्मककालमूर्तिं
गोकण्ठबन्धनविमोचनमादिदेवम् ॥ ३ ॥
श्लोकत्रयमिदं भानोः प्रातःकाले पठेत्तु यः।
स सर्वव्याधिनिर्मुक्तः परं सुखमवाप्नुयात्॥ ४॥

॥ इति श्रीसूर्यप्रातःस्मरणम् ॥

(ज) श्रीभगवद्भक्तानाम्

प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीक-
व्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणादीन्
पुण्यानिमान् परमभागवतान् स्मरामि॥ १ ॥

(पाण्डवगीतायाः)

(सूर्यभगवान्)को नमस्कार करता हूँ॥ २॥ जो पापोंके समूह तथा शत्रुजनित भय एवं रोगोंका नाश करनेवाले हैं, सबसे उत्कृष्ट हैं, सम्पूर्ण लोकोंके समयकी गणनाके निमित्तभूत कालस्वरूप हैं और गौओंके कण्ठबन्धन छुड़ानेवाले हैं, उन अनन्तशक्तिसम्पन्न आदिदेव सविता (सूर्यभगवान्) को मैं प्रातःकाल भजता हूँ॥ ३॥ जो मनुष्य प्रातःकाल सूर्यके स्मरणरूप इन तीनों श्लोकोंका पाठ करता है; वह सब रोगोंसे मुक्त होकर परम सुख प्राप्त कर सकता है॥ ४॥

प्रह्लाद, नारद, पराशर, पुण्डरीक, व्यास, अम्बरीष, शुक, शौनक, भीष्म, दाल्भ्य, रुक्मांगद, अर्जुन, वसिष्ठ और विभीषण आदि इन परम पवित्र

वाल्मीकिः सनकः सनन्दनतरुर्व्यासो वसिष्ठो भृगु-
र्जाबालिर्जमदग्निकच्छजनको गर्गोऽङ्गिरा गौतमः।
मान्धाता ऋतुपर्णवैन्यसगरा धन्यो दिलीपो नलः
पुण्यो धर्मसुतो ययातिनहुषौ कुर्वन्तु नो मङ्गलम्॥ २॥

(मङ्गलाष्टकात्)

॥ इति प्रातःस्मरणम्॥

७१—श्रीशिवरामाष्टकस्तोत्रम्

शिव हरे शिव राम सखे प्रभो त्रिविधतापनिवारण हे विभो।
अज जनेश्वर यादव पाहि मां शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ १॥
कमललोचन राम दयानिधे हर गुरो गजरक्षक गोपते।
शिवतनो भव शङ्कर पाहि मां शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ २॥

वैष्णवोंका मैं (प्रातःकाल) स्मरण करता हूँ॥ १॥ वाल्मीकि, सनक, सनन्दन, तरु, व्यास, वसिष्ठ, भृगु, जाबालि, जमदग्नि, कच्छ, जनक, गर्ग, अंगिरा, गौतम, मान्धाता, ऋतुपर्ण, पृथु, सगर, धन्यवाद देनेयोग्य दिलीप और नल, पुण्यात्मा युधिष्ठिर, ययाति और नहुष—ये सब हमारा मंगल करें॥ २॥

हे शिव! हे हरे, हे शिव, हे राम, हे सखे! हे प्रभो, हे त्रिविध तापनिवारण विभो! हे अज, हे जगन्नाथ, हे यादव! मेरी रक्षा करो; हे शिव! हे हरे! मेरी कल्याणमय विजय करो॥ १॥ हे कमललोचन दयानिधे राम! हे हर! हे गुरो! हे गजरक्षक! हे गोपते! हे कल्याण-रूपधारी भव! हे शंकर! मेरी रक्षा करो; हे शिव! हे हरे! मेरा उत्तम विजय-साधन करो॥ २॥

सुजनरञ्जन मङ्गलमन्दिरं भजति ते पुरुषः परमं पदम्।
भवति तस्य सुखं परमद्भुतं शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ ३॥
जय युधिष्ठिरवल्लभ भूपते जय जयार्जितपुण्यपयोनिधे।
जय कृपामय कृष्ण नमोऽस्तु ते शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ ४॥
भवविमोचन माधव मापते सुकविमानसहंस शिवारते।
जनकजारत राघव रक्ष मां शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ ५॥
अवनिमण्डलमङ्गल मापते जलदसुन्दर राम रमापते।
निगमकीर्तिगुणार्णव गोपते शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ ६॥
पतितपावन नाममयी लता तव यशो विमलं परिगीयते।
तदपि माधव मां किमुपेक्षसे शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ ७॥

हे सज्जन-मनरंजन! जो पुरुष तुम्हारे मंगलमन्दिर (शिव और विष्णुरूप) परमपदका आश्रय लेते हैं, उन्हें परम दिव्य सुख प्राप्त होता है; अतएव हे शिव! हे हरे! मेरा वर विजय-साधन करो॥ ३॥ हे युधिष्ठिरके प्रियतम! हे भूपते! आप विजयी हों। हे पुण्यमहासागरके उपार्जन करनेवाले! आपकी जय हो, जय हो; हे दयामय कृष्ण! आपकी जय हो, आपको नमस्कार है; हे शिव! हे हरे! आप मेरी कल्याणमय विजय करें॥ ४॥ हे भवभयहारी माधव! हे लक्ष्मीपते! हे सुकवि-मानस-हंस! हे पार्वतीप्रिय! हे जानकीजीवन राघव! मेरी रक्षा करो, हे शिव! हे हरे! मेरा वर विजयसम्पादन करो॥ ५॥ हे भूमिमण्डलके मंगलस्वरूप! हे श्रीपते! हे घनश्याम सुन्दर! हे राम! हे रमापते! हे वेदवर्णित गुण-सागर! हे गोपते! हे शिव! हे हरे! मेरी कल्याणमय विजय करो॥ ६॥ हे पतितपावन! तुम्हारा नाम कल्पलता है, तुम्हारा यश नित्य सर्वत्र गाया जाता है तथापि हे माधव! तुम मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हो ? हे शिव! हे हरे! मेरा शुभ विजय-साधन करो॥ ७॥

अमरतापरदेव रमापते विजयतस्तव नामधनोपमा।
मयि कथं करुणार्णव जायते शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ ८ ॥
हनुमतः प्रिय चापकर प्रभो सुरसरिद्धृतशेखर हे गुरो।
मम विभो किमु विस्मरणं कृतं शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ ९ ॥
अहरहर्जनरञ्जनसुन्दरं पठति यः शिवरामकृतं स्तवम्।
विशति रामरमाचरणाम्बुजे शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ १० ॥
प्रातरुत्थाय यो भक्त्या पठेदेकाग्रमानसः।
विजयो जायते तस्य विष्णुमाराध्यमाप्नुयात्॥ ११ ॥

इति श्रीरामानन्दस्वामिना विरचितं श्रीशिवरामाष्टकं सम्पूर्णम्।

हे देवोंमें श्रेष्ठ देव! हे दयासागर रमापते! सर्वत्र विजय पानेवाले तुझ परमेश्वरके नामरूपी धनका आदर्श कोष मेरे पास किस प्रकार संचित हो जायगा? हे शिव! हे हरे! मेरा परम विजय-साधन करो॥ ८॥ हे हनुमत्प्रिय! हे चापधारी प्रभो! हे शीशपर गंगाजीको धारण करनेवाले गुरुदेव! हे विभो! तुम क्यों मुझे भूल गये ? हे शिव! हे हरे! मेरा परम जय-साधन करो॥ ९ ॥ जो मनुष्य इस लोकप्रिय सुन्दर रामानन्द स्वामीके विरचित शिवराम-स्तवका पाठ करता है, वह राम-रमाके चरणकमलोंमें प्रवेश करनेमें समर्थ होता है। हे शिव! हे शिव! हे हरे! मेरा श्रेष्ठ विजय-साधन करो॥ १० ॥ जो प्रात:काल उठकर एकाग्रचित्तसे इस शिवरामस्तोत्रका पाठ करता है, उसकी सर्वत्र जय होती है और वह अपने आराध्यदेव विष्णुको प्राप्त होता है॥ ११ ॥

७२—कैवल्याष्टकम्

मधुरं मधुरेभ्योऽपि मङ्गलेभ्योऽपि मङ्गलम्।
पावनं पावनेभ्योऽपि हरेर्नामैव केवलम्॥ १॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मायामयं जगत्।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं हरेर्नामैव केवलम्॥ २॥
स गुरुः स पिता चापि सा माता बान्धवोऽपि सः।
शिक्षयेच्चेत्सदा स्मर्तुं हरेर्नामैव केवलम्॥ ३॥
निःश्वासे न हि विश्वासः कदा रुद्धो भविष्यति।
कीर्तनीयमतो बाल्याद्धरेर्नामैव केवलम्॥ ४॥
हरिः सदा वसेत्तत्र यत्र भागवता जनाः।
गायन्ति भक्तिभावेन हरेर्नामैव केवलम्॥ ५॥
अहो दुःखं महादुःखं दुःखाद् दुःखतरं यतः।
काचार्थं विस्मृतं रत्नं हरेर्नामैव केवलम्॥ ६॥

केवल हरिका नाम ही मधुरसे भी मधुर, मंगलमयसे भी मंगलमय और पवित्रसे भी पवित्र है॥ १॥ ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त सारा संसार मायामय है, केवल एक हरिका नाम ही सत्य है; नाम ही सत्य है, फिर भी [कहता हूँ कि] नाम ही सत्य है॥ २॥ जो सर्वदा केवल हरिनाम स्मरण करना ही सिखलाता है, वही गुरु है, वही पिता है, वही माता है और बन्धु भी वही है॥ ३॥ श्वासका कुछ विश्वास नहीं, न मालूम कब रुक जायगा, इसलिये बाल्यावस्थासे ही केवल हरिनामका ही कीर्तन करना चाहिये॥ ४॥ जहाँ भक्तजन भक्तिभावसे केवल हरिनामका ही गान करते हैं, वहाँ सर्वदा भगवान् विराजते हैं॥ ५॥ अहो! महान् दुःख है! भयंकर कष्ट है!! सबसे बढ़कर शोक है!!! जो विषयरूपी काचके लिये हरिनामरूपी रत्नको बिसार दिया॥ ६॥

दीयतां दीयतां कर्णो नीयतां नीयतां वचः।
गीयतां गीयतां नित्यं हरेर्नामैव केवलम्॥ ७॥
तृणीकृत्य जगत्सर्वं राजते सकलोपरि।
चिदानन्दमयं शुद्धं हरेर्नामैव केवलम्॥ ८॥

इति श्रीकैवल्याष्टकं सम्पूर्णम्।

७३—साधनपञ्चकम्

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां
तेनेशस्य विधीयतामपचितिः काम्ये मतिस्त्यज्यताम्।
पापौघः परिधूयतां भवसुखे दोषोऽनुसन्धीयता-
मात्मेच्छा व्यवसीयतां निजगृहात्तूर्णं विनिर्गम्यताम्॥ १॥
सङ्गः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिर्दृढा धीयतां
शान्त्यादिः परिचीयतां दृढतरं कर्माशु सन्त्यज्यताम्।

केवल एक हरिनामके ही श्रवणमें कान लगाओ, वाणीसे बोलो और उसीका निरन्तर गान करो॥ ७॥ सम्पूर्ण जगत्को तृणतुल्य करके, सबके ऊपर केवल एक हरिका शुद्ध सच्चिदानन्दघन नाम ही विराजता है॥ ८॥

सर्वदा वेदाध्ययन करो, इसके बताये हुए कर्मोंका भलीभाँति अनुष्ठान करो, उनके द्वारा भगवान्की पूजा करो और काम्यकर्मोंमें चित्तको मत जाने दो, पापसमूहका परिमार्जन करो, संसारसुखमें दोषानुसन्धान करो, आत्मजिज्ञासाके लिये प्रयत्न करो और शीघ्र ही गृहका त्याग कर दो॥ १॥ सज्जनोंका संग करो, भगवान्की दृढ़ भक्तिका आश्रय लो, शम-दमादिका भलीभाँति संचय करो

सद्विद्वानुपसर्प्यतां प्रतिदिनं तत्पादुका सेव्यतां
ब्रह्मैकाक्षरमर्थ्यतां श्रुतिशिरोवाक्यं समाकर्ण्यताम्॥ २॥
वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुतिशिरःपक्षः समाश्रीयतां
दुस्तर्कात्सुविरम्यतां श्रुतिमतस्तर्कोऽनुसन्धीयताम्।
ब्रह्मैवास्मि विभाव्यतामहरहर्गर्वः परित्यज्यतां
देहेऽहम्मतिरुज्झ्यतां बुधजनैर्वादः परित्यज्यताम्॥ ३॥
क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यतां
स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात्प्राप्तेन सन्तुष्यताम्।
शीतोष्णादि विषह्यतां न तु वृथा वाक्यं समुच्चार्यता-
मौदासीन्यमभीप्स्यतां जनकृपा नैष्ठुर्यमुत्सृज्यताम्॥ ४॥
एकान्ते सुखमास्यतां परतरे चेतः समाधीयतां
पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्बाधितं दृश्यताम्।

और कर्मोंका शीघ्र ही दृढ़तापूर्वक त्याग कर दो, सच्चे (परमार्थ जाननेवाले) विद्वान्‌के पास नित्य जाओ और उनकी चरणपादुकाका सेवन करो, उनसे एकाक्षरब्रह्मकी जिज्ञासा करो और वेदोंके महावाक्योंका श्रवण करो॥ २॥ महावाक्यके अर्थका विचार करो, महावाक्यका आश्रय लो, कुतर्कसे दूर रहो और श्रुति-सम्मत तर्कका अनुसन्धान करो; 'मैं भी ब्रह्म ही हूँ'—नित्य ऐसी भावना करो, अभिमानको त्याग दो, देहमें अहंबुद्धि छोड़ दो और विचारवान् पुरुषोंके साथ वाद-विवाद मत करो॥ ३॥ क्षुधारूप व्याधिकी प्रतिदिन चिकित्सा करो, भिक्षारूप औषधका सेवन करो, स्वादु अन्नकी याचना मत करो, दैवयोगसे जो मिल जाय उसीसे सन्तोष करो, सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंको सहन करो और व्यर्थ वाक्य मत उच्चारण करो, उदासीनता धारण करो, अन्य मनुष्योंकी कृपाकी इच्छा तथा निष्ठुरताको त्याग दो॥ ४॥ एकान्तमें सुखसे बैठो, परब्रह्ममें चित्त लगा दो, पूर्णात्माको अच्छी तरह देखो,

प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चितिबलान्नाप्युत्तरैः श्लिष्यतां
प्रारब्धं त्विह भुज्यतामथ परब्रह्मात्मना स्थीयताम्॥ ५॥
यः श्लोकपञ्चकमिदं पठते मनुष्यः
सञ्चिन्तयत्यनुदिनं स्थिरतामुपेत्य।
तस्याशु संसृतिदवानलतीव्रघोर-
तापः प्रशान्तिमुपयाति चितिप्रसादात्॥ ६॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं साधनपंचकं सम्पूर्णम्।

७४—धन्याष्टकम्

तज्ज्ञानं प्रशमकरं यदिन्द्रियाणां
तज्ज्ञेयं यदुपनिषत्सु निश्चितार्थम्।
ते धन्या भुवि परमार्थनिश्चितेहाः
शेषास्तु भ्रमनिलये परिभ्रमन्ति॥ १॥

और इस जगत्‌को उसके द्वारा बाधित देखो, संचित कर्मोंका नाश कर दो, ज्ञानके बलसे क्रियमाण कर्मोंसे लिप्त मत होओ; प्रारब्ध कर्मको यहीं भोग लो, इसके बाद परब्रह्मरूपसे (एकीभाव होकर) स्थित हो जाओ॥ ५॥ जो मनुष्य इन पाँचों श्लोकोंको पढ़ता है और स्थिरचित्तसे प्रतिदिन इनका मनन करता है, उसके संसारदावानलके तीव्र घोर ताप, आत्मप्रसादके होनेसे शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं॥ ६॥

जो इन्द्रियोंको शान्त करनेवाला है, वही ज्ञान है। जो उपनिषदोंका निश्चितार्थ है, वही ज्ञेय है। जिनकी समस्त चेष्टाएँ परमार्थदृष्टिसे ही होती हैं, वे ही पृथ्वीतलमें धन्य हैं और सब तो भूलभुलैयेमें ही भटकते रहते हैं॥ १॥

आदौ विजित्य विषयान्मदमोहराग-
द्वेषादिशत्रुगणमाहृतयोगराज्याः।
ज्ञात्वामृतं समनुभूतपरात्मविद्या-
कान्तासुखा बत गृहे विचरन्ति धन्याः॥ २॥

त्यक्त्वा गृहे रतिमधोगतिहेतुभूता-
मात्मेच्छयोपनिषदर्थरसं पिबन्तः।
वीतस्पृहा विषयभोगपदे विरक्ता
धन्याश्चरन्ति विजनेषु विरक्तसङ्गाः॥ ३॥

त्यक्त्वा ममाहमिति बन्धकरे पदे द्वे
मानावमानसदृशाः समदर्शिनश्च।
कर्तारमन्यमवगम्य तदर्पितानि
कुर्वन्ति कर्मपरिपाकफलानि धन्याः॥ ४॥

प्रथम विषयसमूह तथा मद, मोह, राग और द्वेष आदि शत्रुओंको जीतकर, योगसाम्राज्यको पाकर, अमृतपदका ज्ञान प्राप्तकर, ब्रह्मविद्यारूपिणी कान्ताका सुखानुभव करते हुए, मानो घरमें ही विचरण करते हैं, वे योगीजन धन्य हैं॥ २॥ अधोगतिके हेतुभूत घरके मोहको छोड़कर, आत्मजिज्ञासासे उपनिषदर्थभूत ब्रह्मानन्दका पान करते हुए, निःस्पृह होकर, विषय-भोगोंसे विरक्त हो, जो निःसंगभावसे जनशून्य स्थानोंमें विचरते हैं, वे धन्य हैं॥ ३॥ जो मैं और मेरा रूप दोनों बन्धनकारी भावोंको छोड़कर, मानापमानको समान समझते हुए, समदर्शी होकर तथा अपनेसे पृथग्भूत कर्ताको जानकर सम्पूर्ण कर्मफल उसको समर्पण करते हैं, वे पुरुष धन्य हैं॥ ४॥

त्यक्त्वैषणात्रयमवेक्षितमोक्षमार्गा
भैक्षामृतेन परिकल्पितदेहयात्राः।
ज्योतिः परात्परतरं परमात्मसंज्ञं
धन्या द्विजा रहसि हृद्यवलोकयन्ति॥ ५॥

नासन्न सन्न सदसन्न महन्न चाणु
न स्त्री पुमान्न च नपुंसकमेकबीजम्।
यैर्ब्रह्म तत्समनुपासितमेकचित्ता
धन्या विरेजुरितरे भवपाशबद्धाः॥ ६॥

अज्ञानपङ्कपरिमग्नमपेतसारं
दुःखालयं मरणजन्मजरावसक्तम्।
संसारबन्धनमनित्यमवेक्ष्य धन्या
ज्ञानासिना तदवशीर्य विनिश्चयन्ति॥ ७॥

लोकैषणा, पुत्रैषणा तथा वित्तैषणा—तीनोंको छोड़कर मुक्तिमार्गका अनुशीलन करके भिक्षामृतसे शरीरयात्राका निर्वाह करते हुए; जो परमात्मसंज्ञक परात्पर ज्योतिको एकान्तदेशमें अपने हृदयमें अवलोकन करते हैं, वे द्विज धन्य हैं॥ ५॥ जो न असत् है, न सत् है और न सदसत् है; न महान् है, न अणु है; न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक है; संसारका एकमात्र कारण है, उस ब्रह्मकी जिन्होंने उपासना की है, एकाग्रचित्त वे ही धन्य पुरुष सुशोभित होते हैं, और तो सब संसारबन्धनमें बँधे हुए हैं॥ ६॥ जो पंकमें सने हुए, अज्ञान, निःसार, दुःखरूप, जन्मजरामरणादिसमन्वित, संसारबन्धनको अनित्य देखकर उसको ज्ञानरूपी खड्गसे काटकर आत्मतत्त्वका निश्चय करते हैं, वे पुरुष धन्य हैं॥ ७॥

शान्तैरनन्यमतिभिर्मधुरस्वभावै-
रेकत्वनिश्चितमनोभिरपेतमोहैः।
साकं वनेषु विजितात्मपदस्वरूपं
शास्त्रेषु सम्यगनिशं विमृशन्ति धन्याः॥ ८ ॥
अहिमिव जनयोगं सर्वदा वर्जयेद्यः
कुणपमिव सुनारीं त्यक्तुकामो विरागी।
विषमिव विषयान्यो मन्यमानो दुरन्तान्
जयति परमहंसो मुक्तिभावं समेति॥ ९ ॥
सम्पूर्णं जगदेव नन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमा
गाङ्गं वारि समस्तवारिनिवहाः पुण्याः समस्ताः क्रियाः।
वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी
सर्वावस्थितिरस्य वस्तु विषया दृष्टे परब्रह्मणि॥ १० ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं धन्याष्टकं सम्पूर्णम्।

जिन्होंने मनके द्वारा एकत्वका निश्चय किया है और मोहको त्याग दिया है ऐसे शान्त, अनन्यमति और कोमलचित्त महात्माओंके साथ जो लोग वनमें शास्त्रोंद्वारा आत्मतत्त्वका निरन्तर विचार करते हैं, वे धन्य हैं॥ ८॥ जो जनसमूहको सदा सर्प-सहवासके समान त्यागता है, सुन्दर स्त्रीकी वैराग्यभावसे शवके समान उपेक्षा करता है, दुस्त्यज विषयोंको विषके समान छोड़ता है, उस परमहंसकी जय हो, जय हो। वही मुक्तिको प्राप्त होता है॥ ९ ॥ जिसने परब्रह्मका साक्षात्कार कर लिया है, उसके लिये सारा संसार नन्दनवन है, समस्त वृक्ष कल्पवृक्ष हैं, सम्पूर्ण जल गंगाजल है, उसकी सारी क्रियाएँ पवित्र हैं, उसकी वाणी प्राकृत हो अथवा संस्कृत हो वेदकी सारभूत है, उसके लिये सम्पूर्ण भूमण्डल काशी (मुक्तिक्षेत्र) ही है तथा और भी उसकी जो-जो चेष्टाएँ हैं, सब परमार्थमयी ही हैं॥ १० ॥

७५—कौपीनपञ्चकं स्तोत्रम्

वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तो भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः।
अशोकवन्तः करुणैकवन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥ १॥
मूलं तरोः केवलमाश्रयन्तः पाणिद्वये भोक्तुममत्रयन्तः।
कन्थामपि स्त्रीमिव कुत्सयन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥ २॥
देहाभिमानं परिहृत्य दूरादात्मानमात्मन्यवलोकयन्तः।
अहर्निशं ब्रह्मणि ये रमन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥ ३॥
स्वानन्दभावे परितुष्टिमन्तः स्वशान्तसर्वेन्द्रियवृत्तिमन्तः।
नान्तं न मध्यं न बहिः स्मरन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥ ४॥
पञ्चाक्षरं पावनमुच्चरन्तः पतिं पशूनां हृदि भावयन्तः।
भिक्षाशना दिक्षु परिभ्रमन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥ ५॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं कौपीनपञ्चकं (यतिपंचकं) सम्पूर्णम्।

सदैव उपनिषद्-वाक्योंमें रमते हुए, भिक्षाके अन्नमात्रमें ही सन्तोष रखते हुए, शोकरहित तथा दयावान्, कौपीन धारण करनेवाले ही भाग्यवान् हैं॥ १॥ केवल वृक्षतलोंमें रहनेवाले, दोनों हाथोंको ही भोजनपात्र बनानेवाले, गुदड़ीको भी स्त्रीकी भाँति तुच्छ बुद्धिसे देखनेवाले कौपीनधारी ही भाग्यवान् हैं॥ २॥ देहाभिमानको दूरसे ही छोड़कर, अपनी आत्माको अपनेमें ही देखते हुए रात-दिन ब्रह्ममें रमण करनेवाले कौपीनधारी ही भाग्यवान् हैं॥ ३॥ आत्मानन्दमें ही सन्तुष्ट रहनेवाले, अपने भीतर ही सारी इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ शान्त कर लेनेवाले, अन्त, मध्य और बाहरकी स्मृतिसे शून्य रहनेवाले कौपीनधारी ही भाग्यवान् हैं॥ ४॥ पवित्र पञ्चाक्षरमन्त्र (**नमः शिवाय**) का जप करते हुए, हृदयमें परमेश्वरकी भावना करते तथा भिक्षाका भोजन करते हुए सब दिशाओंमें विचरनेवाले कौपीनधारी ही भाग्यवान् हैं॥ ५॥

७६—परापूजा

अखण्डे सच्चिदानन्दे निर्विकल्पैकरूपिणि।
स्थितेऽद्वितीयभावेऽस्मिन्कथं पूजा विधीयते॥ १॥

पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम्।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः॥ २॥

निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्य च।
अगोत्रस्य त्ववर्णस्य कुतस्तस्योपवीतकम्॥ ३॥

निर्लेपस्य कुतो गन्धः पुष्पं निर्वासनस्य च।
निर्विशेषस्य का भूषा कोऽलङ्कारो निराकृतेः॥ ४॥

निरञ्जनस्य किं धूपैर्दीपैर्वा सर्वसाक्षिणः।
निजानन्दैकतृप्तस्य नैवेद्यं किं भवेदिह॥ ५॥

अखण्ड, सच्चिदानन्द और निर्विकल्पैकरूप अद्वितीय भावके स्थिर हो जानेपर, किस प्रकार पूजा की जाय?॥ १॥ जो पूर्ण है उसका आवाहन कहाँ किया जाय? जो सबका आधार है, उसे आसन किस वस्तुका दें? जो स्वच्छ है, उसको पाद्य और अर्घ्य कैसे दें? और जो नित्य शुद्ध है, उसको आचमनकी क्या अपेक्षा?॥ २॥ निर्मलको स्नान कैसा? सम्पूर्ण विश्व जिसके पेटमें है, उसे वस्त्र कैसा? और जो वर्ण तथा गोत्रसे रहित है, उसके लिये यज्ञोपवीत कैसा?॥ ३॥ निर्लेपको गन्ध कैसी? निर्वासनिकको पुष्पोंसे क्या? निर्विशेषको शोभाकी क्या अपेक्षा और निराकारके लिये आभूषण क्या?॥ ४॥ निरंजनको धूपसे क्या? सर्वसाक्षीको दीप कैसा तथा जो निजानन्दरूपी अमृतसे तृप्त है, उसे नैवेद्यसे क्या?॥ ५॥

विश्वानन्दपितुस्तस्य किं ताम्बूलं प्रकल्प्यते।
स्वयंप्रकाशचिद्रूपो योऽसावर्कादिभासकः॥ ६॥

प्रदक्षिणा ह्यनन्तस्य ह्यद्वयस्य कुतो नतिः।
वेदवाक्यैरवेद्यस्य कुतः स्तोत्रं विधीयते॥ ७॥

स्वयंप्रकाशमानस्य कुतो नीराजनं विभोः।
अन्तर्बहिश्च पूर्णस्य कथमुद्वासनं भवेत्॥ ८॥

एवमेव परापूजा सर्वावस्थासु सर्वदा।
एकबुद्ध्या तु देवेशे विधेया ब्रह्मवित्तमैः॥ ९॥

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विविधोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।

जो स्वयंप्रकाश, चित्स्वरूप, सूर्य-चन्द्रादिका भी अवभासक और विश्वको आनन्दित करनेवाला है, उसे ताम्बूल क्या समर्पण किया जाय?॥ ६॥ अनन्तकी परिक्रमा कैसी ? अद्वितीयको नमस्कार कैसा ? और जो वेदवाक्योंसे भी जाना नहीं जा सकता, उसका स्तवन कैसे किया जाय ?॥ ७॥ जो स्वयंप्रकाश और विभु है, उसकी आरती कैसे की जाय ? तथा जो बाहर-भीतर सब ओर परिपूर्ण है, उसका विसर्जन कैसे हो ?॥ ८॥ ब्रह्मवेत्ताओंको सर्वदा, सब अवस्थाओंमें इसी प्रकार एक बुद्धिसे भगवान्‌की परापूजा करनी चाहिये॥ ९॥ हे शम्भो! मेरी आत्मा ही तुम हो, बुद्धि श्रीपार्वतीजी हैं, प्राण आपके गण हैं, शरीर आपकी कुटिया है, नाना प्रकारकी भोगसामग्री आपका पूजोपचार है, निद्रा समाधि

संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥ १०॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं परापूजास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

७७—चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम्

दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः॥ १॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते।
प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे॥

(ध्रुवपदम्)

अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू रात्रौ चिबुकसमर्पितजानुः।
करतलभिक्षा तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः। भज०॥ २॥

है, मेरे चरणोंका चलना आपकी प्रदक्षिणा है और मैं जो कुछ भी बोलता हूँ वह सब आपके स्तोत्र हैं, अधिक क्या ? मैं जो कुछ भी करता हूँ, वह सब आपकी आराधना ही है॥ १०॥

दिन और रात, सायंकाल और प्रातःकाल, शिशिर और वसन्त पुनः-पुनः आते हैं; इसी प्रकार कालकी लीला होती रहती है और आयु बीत जाती है, किन्तु आशारूपी वायु छोड़ती ही नहीं; अतः हे मूढ! निरन्तर गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर '**डुकृञ् करणे**'* यह रटना रक्षा नहीं कर सकेगी॥ १॥ दिनमें आगे अग्नि और पीछे सूर्यसे शरीर तपाते हैं, रात्रिके समय जानुओंमें ठोड़ी दबाये पड़े रहते हैं, हाथमें ही भिक्षा माँग लाते हैं, वृक्षके

---

* व्याकरणमें 'डुकृञ् करणे' एक धातु है, इसे एक ब्राह्मणको वृद्ध होनेपर भी रटते देखकर श्रीशंकराचार्यजीने यह उपदेश किया।

यावद्वित्तोपार्जनसक्तस्तावन्निजपरिवारो रक्तः।
पश्चाद्धावति जर्जरदेहे वार्तां पृच्छति कोऽपि न गेहे। भज० ॥ ३ ॥
जटिलो मुण्डी लुञ्चितकेशः काषायाम्बरबहुकृतवेषः।
पश्यन्नपि च न पश्यति लोको ह्युदरनिमित्तं बहुकृतशोकः। भज० ॥ ४ ॥
भगवद्गीता किञ्चिदधीता गङ्गाजललवकणिकापीता।
सकृदपि यस्य मुरारिसमर्चा तस्य यमः किं कुरुते चर्चाम्। भज० ॥ ५ ॥
अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम्। भज० ॥ ६ ॥

तले ही पड़े रहते हैं, फिर भी आशाका जाल जकड़े ही रहता है; अतः हे मूढ! निरन्तर गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा नहीं कर सकेगी॥ २॥ अरे, जबतक तू धन कमानेमें लगा हुआ है तभीतक तेरा परिवार तुझसे प्रेम करता है, जब जराग्रस्त होगा तो घरमें कोई बात भी न पूछेगा; अतः हे मूढ! निरन्तर गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ ३॥ जटाजूटधारी होकर, मुण्डित होकर, लुंचितकेश होकर, काषायाम्बरधारी होकर, ऐसे नाना प्रकारके वेष धारण करके यह मनुष्य देखता हुआ भी नहीं देखता और पेटके लिये ही नाना प्रकारसे शोक किया करता है; अतः हे मूढ! निरन्तर गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर यह '**डुकृञ् करणे**' रटना रक्षा न कर सकेगी॥ ४॥ जिसने भगवद्गीताको कुछ भी पढ़ा है, गंगाजलकी जिसने एक बूँद भी पी है, एक बार भी जिसने भगवान् कृष्णचन्द्रका अर्चन किया है, उसकी यमराज क्या चर्चा कर सकता है? अतः हे मूढ! निरन्तर गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर '**डुकृञ् करणे**' रटना रक्षा न कर सकेगी॥ ५॥ अंग गलित हो गये, सिरके बाल पक गये, मुखमें दाँत नहीं रहे, बूढ़ा हो गया, लाठी लेकर चलने लगा, फिर भी आशा पिण्ड नहीं छोड़ती; अरे मूढ! निरन्तर गोविन्दको भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर '**डुकृञ् करणे**' रटना रक्षा न कर सकेगी॥ ६॥

बालस्तावत्क्रीडासक्तस्तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः ।
वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः पारे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्न :। भज०॥ ७ ॥
पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्।
इह संसारे खलु दुस्तारे कृपयापारे पाहि मुरारे। भज०॥ ८ ॥
पुनरपि रजनी पुनरपि दिवसः पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः।
पुनरप्ययनं पुनरपि वर्षं तदपि न मुञ्चत्याशामर्षम्। भज०॥ ९ ॥
वयसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः।
नष्टे द्रव्ये कः परिवारो ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः। भज०॥ १०॥

बालक तो खेल-कूदमें आसक्त रहता है, तरुण तो स्त्रीमें आसक्त है और वृद्ध भी नाना प्रकारकी चिन्ताओंमें मग्न रहता है, परब्रह्ममें तो कोई संलग्न नहीं होता; अतः अरे मूढ! तू सदा गोविन्दका ही भजन कर, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ ७॥ इस संसारमें पुनः-पुनः जन्म, पुनः-पुनः मरण और बारंबार माताके गर्भमें रहना पड़ता है, अतः हे मुरारे! मैं आपकी शरण हूँ, इस दुस्तर और अपार संसारसे कृपया पार कीजिये; इस प्रकार अरे मूढ! तू तो सदा गोविन्दका ही भजन कर, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ ८॥ रात्रि, दिन, पक्ष, मास, अयन और वर्ष कितनी ही बार आये और गये तो भी लोग ईर्ष्या और आशाको नहीं छोड़ते, अतः अरे मूढ! तू सदा गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर यह '**डुकृञ् करणे**' रटना रक्षा न कर सकेगी॥ ९॥ अवस्था ढलनेपर काम-विकार कैसा ? जल सूखनेपर जलाशय क्या ? तथा धन नष्ट होनेपर परिवार ही क्या ? इसी प्रकार तत्त्वज्ञान होनेपर संसार ही कहाँ रह सकता है ? अतः हे मूढ! सदा गोविन्दको भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर यह '**डुकृञ् करणे**' रटना रक्षा न कर सकेगी॥ १०॥

नारीस्तनभरनाभिनिवेशं मिथ्यामायामोहावेशम्।
एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचारय बारम्बारम्। भज० ॥ ११ ॥
कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः का मे जननी को मे तातः।
इति परिभावय सर्वमसारं विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम्। भज० ॥ १२ ॥
गेयं गीतानामसहस्त्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्त्रम्।
नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम्। भज० ॥ १३ ॥
यावज्जीवो निवसति देहे कुशलं तावत्पृच्छति गेहे।
गतवति वायौ देहापाये भार्या बिभ्यति तस्मिन्काये। भज० ॥ १४ ॥
सुखतः क्रियते रामाभोगः पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः।
यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुञ्चति पापाचरणम्। भज० ॥ १५ ॥

नारीके स्तनों और नाभिनिवेशमें मिथ्या माया और मोहका ही आवेश है, ये मांस और मेदके ही विकार हैं—ऐसा बार-बार मनमें विचार, हे मूढ! सदा गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर यह '**डुकृञ् करणे**' रटना रक्षा न कर सकेगी॥ ११॥ स्वप्नवत् मिथ्या संसारकी आस्था छोड़कर 'तू कौन है, मैं कौन हूँ कहाँसे आया हूँ, मेरी माता कौन है और पिता कौन है ?'—इस प्रकार सबको असार समझ तथा हे मूढ! निरन्तर गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ १२॥ गीता और विष्णुसहस्त्रनामका नित्य पाठ करना चाहिये, भगवान् विष्णुके स्वरूपका निरन्तर ध्यान करना चाहिये, चित्तको संतजनोंके संगमें लगाना चाहिये और दीनजनोंको धन दान करना चाहिये और हे मूढ! नित्य गोविन्दका ही भजन कर, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ १३॥ जबतक प्राण शरीरमें है तबतक ही लोग घरमें कुशल पूछते हैं, प्राण निकलनेपर शरीरका पतन हुआ कि फिर अपनी स्त्री भी उससे भय मानती है; अतः हे मूढ! नित्य गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ १४॥ पहले तो सुखसे स्त्री-सम्भोग किया जाता है, किन्तु पीछे शरीरमें रोग घर कर लेते हैं, यद्यपि संसारमें मरना अवश्य है तथापि लोग

रथ्याचर्पटविरचितकन्थः पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः।
नाहं न त्वं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः। भज०॥ १६॥
कुरुते गङ्गासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम्।
ज्ञानविहीनः सर्वमतेन मुक्तिं न भजति जन्मशतेन। भज०॥ १७॥

इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितं चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

७८—द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रम्

मूढ जहीहि धनागमतृष्णां कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम्।
यल्लभसे निजकर्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम्॥ १॥

पापाचरणको नहीं छोड़ते; अतः हे मूढ! सदा गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ १५॥ गलीमें पड़े चिथड़ोंकी कन्था बना ली, पुण्यापुण्यसे निराला मार्ग अवलम्बन कर लिया, 'न मैं हूँ, न तू है और न यह संसार है'—(ऐसा भी जान लिया), फिर भी किस लिये शोक किया जाता है? अतः हे मूढ! सदा गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर '**डुकृञ् करणे**' यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ १६॥ चाहे गंगा-सागरको जाय, चाहे नाना व्रतोपवासोंका पालन अथवा दान करे तथापि बिना ज्ञानके इन सबसे सौ जन्ममें भी मुक्ति नहीं हो सकती; अतः हे मूढ! सर्वदा गोविन्दका भजन कर, क्योंकि मृत्युके निकट आनेपर '**डुकृञ् करणे**' (अथवा हा धन! हा कुटुम्ब!! हा संसार!!!) यह रटना रक्षा न कर सकेगी॥ १७॥

हे मूढ! धनसंचयकी लालसाको छोड़, सुबुद्धि धारण कर, मनसे तृष्णाहीन हो, अपने प्रारब्धानुसार तुझे जो कुछ वित्त मिल जाय, उसीसे चित्तको प्रसन्न रख और हे मूढमते! निरन्तर गोविन्दको भज॥ १॥

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥

(ध्रुवपदम्)

अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता नीतिः। भज० ॥ २ ॥
का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः।
कस्य त्वं कः कुत आयातस्तत्त्वं चिन्तय यदिदं भ्रातः। भज० ॥ ३ ॥
मा कुरु धनजनयौवनगर्वं हरति निमेषात्कालः सर्वम्।
मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा। भज० ॥ ४ ॥
कामं क्रोधं लोभं मोहं त्यक्त्वात्मानं भावय कोऽहम्।
आत्मज्ञानविहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः। भज० ॥ ५ ॥
सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः शय्या भूतलमजिनं वासः।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः। भज० ॥ ६ ॥

अर्थको नित्य अनर्थरूप जान, उसमें सचमुच ही सुखका लेश भी नहीं है, अरे! सभी जगह ऐसी नीति देखी है कि धनवान्‌को तो अपने पुत्रसे भी भय रहता है; इसलिये सदा गोविन्दको भज॥ २॥ कौन तेरी स्त्री है ? कौन तेरा पुत्र! अरे ? यह संसार बड़ा विचित्र है, भाई! इसी तत्त्वका निरन्तर विचार कर कि, 'तू कौन है ? किसका है ? और कहाँसे आया है ?' और गोविन्दको भज॥ ३॥ धन, जन और यौवनका गर्व मत कर, काल पलक मारते ही इन सबको नष्ट कर देता है, इस सम्पूर्ण मायामय प्रपंचको छोड़कर, ब्रह्मपदको जानकर उसीमें प्रवेश कर; और हे मूढ! सदा! गोविन्दको भज॥ ४॥ काम, क्रोध, लोभ, मोहको त्यागकर अपने लिये विचार कर कि 'मैं कौन हूँ' जो मूढ़ आत्मज्ञानसे रहित हैं, वे नरकमें पड़े हुए सन्तप्त होते रहते हैं; अतः सदा गोविन्दको भज॥ ५॥ देवमन्दिर अथवा वृक्षतलका निवास, पृथ्वीकी ही शय्या, मृगचर्मका वस्त्र और सब प्रकारके परिग्रह और भोगोंका त्याग है, ऐसा वैराग्य किसको सुख नहीं पहुँचाता ? अतः सदा गोविन्दको भज॥ ६॥

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम्। भज०॥ ७ ॥
त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि सर्वसहिष्णुः।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम्। भज०॥ ८ ॥
प्राणायामं प्रत्याहारं नित्यानित्यविवेकविचारम्।
जाप्यसमेतसमाधिविधानं कुर्ववधानं महदवधानम्। भज०॥ ९ ॥
नलिनीदलगतसलिलं तरलं तद्वज्जीवितमतिशय चपलम्।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम्। भज०॥ १० ॥
का तेऽष्टादशदेशे चिन्ता वातुल तव किं नास्ति नियन्ता।
यस्त्वां हस्ते सुदृढनिबद्धं बोधयति प्रभवादिविरुद्धम्। भज०॥ ११ ॥

यदि तू शीघ्र विष्णुत्वकी प्राप्तिका अभिलाषी है तो शत्रु, मित्र, पुत्र और बन्धुओंसे मेल अथवा अनमेलका प्रयत्न मत कर और सर्वत्र समभाव रख तथा निरन्तर गोविन्दको भज॥ ७॥ तुझमें, मुझमें और अन्यत्र भी सबमें एक ही वासुदेव हैं, इसलिये कोप करना व्यर्थ है, सबको सहन करनेवाला हो, आत्माको ही सबमें देख, भेदरूपी अज्ञानको सर्वत्र त्याग दे और सर्वदा गोविन्दका भजन कर॥ ८॥ प्राणायाम, प्रत्याहार और नित्यानित्य वस्तुका विवेकपूर्वक विचार कर, विधिपूर्वक भगवन्नामस्मरणके सहित ध्यान करनेका निश्चय कर; क्योंकि यही महान् निश्चय है और सदा गोविन्दका भजन कर॥ ९॥ कमलपत्रपर पड़ी हुई बूँद जैसे स्थिर नहीं होती है वैसा ही अति चंचल यह जीवन है; इसे खूब समझ ले, व्याधि और अभिमानसे ग्रस्त हुआ यह सारा संसार अति शोकाकुल है, अतः तू सदा गोविन्दका भजन कर॥ १०॥ रे पागल जीव! तू अठारह जगहकी चिन्ता क्यों कर रहा है, क्या तुम्हारा कोई नियन्ता नहीं है? जो तुम्हारे दोनों हाथ खूब कसके बाँधकर तुम्हें जन्म-मरणादि विकारोंसे रहित आत्मतत्त्वका बोध करा दे; अरे मूढ! सर्वदा गोविन्दका भजन कर॥ ११॥

गुरुचरणाम्बुजनिर्भरभक्तः संसारादचिराद्भव मुक्तः।
सेन्द्रियमानसनियमादेवं द्रक्ष्यसि निजहृदयस्थं देवम्। भज०॥ १२॥
द्वादशपञ्जरिकामय एषः शिष्याणां कथितो ह्युपदेशः।
येषां चित्ते नैव विवेकस्ते पच्यन्ते नरकमनेकम्। भज०॥ १३॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

७९—गौरीशाष्टकम्

भज गौरीशं भज गौरीशं गौरीशं भज मन्दमते।
(ध्रुवपदम्)
जलभवदुस्तरजलधिसुतरणं ध्येयं चित्ते शिवहरचरणम्।
अन्योपायं न हि न हि सत्यं गेयं शङ्कर शङ्कर नित्यम्। भज०॥ १॥
दारापत्यं क्षेत्रं वित्तं देहं गेहं सर्वमनित्यम्।
इति परिभावय सर्वमसारं गर्भविकृत्या स्वप्नविचारम्। भज०॥ २॥

गुरुदेवके चरणकमलोंका अनन्य भक्त होकर संसारसे शीघ्र ही मुक्त हो जा, इस प्रकार इन्द्रियोंके सहित मनका संयम करनेसे तू शीघ्र ही अपने हृदयस्थ देवको देखेगा; अतः निरन्तर गोविन्दका भजन कर॥ १२॥ यह द्वादशपंजरिकास्तोत्र शिष्योंके उपदेशके लिये कहा गया है, जिनके हृदयमें विवेक नहीं है, वे दीर्घकालतक नरकयातना भोगते हैं; अतः हे मूढमते! तू निरन्तर गोविन्दका भजन कर॥ १३॥

हे मन्दबुद्धिवाले! तू सदा गौरीश (शंकरभगवान्) का भजन कर। संसाररूप दुस्तर सागरसे पार लगानेवाले, भगवान् शिवके ही चरणका ध्यान कर, संसारसे उद्धार पानेका दूसरा कोई उपाय ही नहीं है; यह सत्य जान; सदा शंकरके नामका ही गान किया कर। हे मन्दमते! सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज॥ १॥ स्त्री, सन्तान, क्षेत्र, धन, शरीर और गृह—ये सब अनित्य हैं, गर्भविकारके परिणामभूत इस संसारको सारहीन तथा स्वप्नवत् असत्य समझकर

मलवैचित्र्ये पुनरावृत्तिः पुनरपि जननीजठरोत्पत्तिः।
पुनरप्याशाकुलितं जठरं किं नहि मुञ्चसि कथयेश्चित्तम्। भज० ॥ ३ ॥
मायाकल्पितमैन्द्रं जालं न हि तत्सत्यं दृष्टिविकारम्।
ज्ञाते तत्त्वे सर्वमसारं मा कुरु मा कुरु विषयविचारम्। भज० ॥ ४ ॥
रज्जौ सर्पभ्रमणारोपस्तद्वद्ब्रह्मणि जगदारोपः।
मिथ्यामायामोहविकारं मनसि विचारय बारम्बारम्। भज० ॥ ५ ॥
अध्वरकोटीगङ्गागमनं कुरुते योगं चेन्द्रियदमनम्।
ज्ञानविहीनः सर्वमतेन न भवति मुक्तो जन्मशतेन। भज० ॥ ६ ॥
सोऽहं हंसो ब्रह्मैवाहं शुद्धानन्दस्तत्त्वपरोऽहम्।
अद्वैतोऽहं सङ्गविहीने चेन्द्रिय आत्मनि निखिले लीने। भज० ॥ ७ ॥

सबकी उपेक्षा कर दे; हे मन्दमते! सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज॥ २ ॥ मलभूत संसारके रूपपर मोहित होनेसे पुनः संसारमें लौटना पड़ता है, फिर माताके गर्भसे उत्पत्ति होती है, अतः पुनः आशासे व्याकुल हुए अपने चित्तसे तू कह दे कि रे चित्त! क्यों नहीं इस पेटकी चिन्ताको छोड़ता है ? और हे मन्दमते! तू सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज॥ ३ ॥ अरे, यह सारा प्रपंच मायासे कल्पित इन्द्रजाल है, इसका विकार प्रत्यक्ष देखा गया है, इसे कदापि सत्य न जान, तत्त्वज्ञान हो जानेपर सब कुछ असार ही ठहरता है, इसलिये विषयोपभोगका विचार कभी न कर; हे मन्दमते! सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज॥ ४ ॥ जैसे रज्जुमें भ्रमसे सर्पका आरोप होता है, उसी प्रकार शुद्ध ब्रह्ममें जगत्का आरोपमात्र है, यह माया-मोहका विकार असत्य है, इस बातको तू बारम्बार मनमें विचार। हे मन्दमते! सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज॥ ५ ॥ लोग करोड़ों यज्ञ करते हैं, स्नानार्थ गंगाजी जाते हैं, इन्द्रियोंको दमन करनेवाला योग करते हैं, परन्तु यह सबका सिद्धान्तमत है कि ज्ञानहीन जीव सैकड़ों जन्ममें भी मुक्त नहीं हो सकता; इसलिये हे मन्दमते! तू सदा गौरीपति भगवान् शिवका भजन कर॥ ६ ॥ जब सम्पूर्ण इन्द्रियाँ विषयोंसे निवृत्त होकर आत्मामें लीन हो जाती हैं उस

शङ्करकिङ्कर मा कुरु चिन्तां चिन्तामणिना विरचितमेतत्।
यः सद्भक्त्या पठति हि नित्यं
ब्रह्मणि लीनो भवति हि सत्यम्। भज०॥ ८॥

इति श्रीचिन्तामणिविरचितं गौरीशाष्टकं सम्पूर्णम्।

८०—सप्तश्लोकी गीता

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥ १॥
स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः॥ २॥

समय ऐसा भान होने लगता है कि मैं ही वह परमात्मा हूँ, मैं शुद्ध ब्रह्म ही हूँ तथा इन पंचभूतोंसे पृथक् शुद्ध अद्वैत आनन्दस्वरूप हूँ; हे मन्दमते! सदा गौरीपति भगवान् शिवका भजन कर॥ ७॥ हे शिवके सेवक! तू चिन्ता न कर, क्योंकि जो पुरुष चिन्तामणिद्वारा रचित इस गौरीशाष्टकस्तोत्रका शुद्ध भक्तिसे नित्य पाठ करता है, वह ब्रह्ममें लीन हो जाता है, यह सत्य बात है; इसलिये हे मन्दमते! तू सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज॥ ८॥

‘ओम्’ इस एक अक्षररूप ब्रह्मके नामका उच्चारण करता हुआ और ओंकारके अर्थस्वरूप मुझको स्मरण करता हुआ, जो मनुष्य शरीरको छोड़ता (मरता) है, वह परम गतिको प्राप्त हो जाता है॥ १॥ हे हृषीकेश! आपके

सर्वत:पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वत:श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ ३॥
कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥ ४॥
ऊर्ध्वमूलमध:शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥ ५॥

गुणोंके कीर्तनसे जो जगत् प्रसन्न और प्रेमान्वित हो रहा है, यह उचित ही है, ये राक्षसलोग भयभीत होकर सब दिशाओंमें भाग रहे हैं और सब सिद्धगण आपको नमस्कार कर रहे हैं यह भी युक्त ही है॥ २॥ 'वह' सब ओर रहनेवाले हाथों और चरणोंसे युक्त है तथा सब ओर रहनेवाले आँखों, सिरों और मुखोंसे युक्त है एवं सब ओर व्यापकरूपसे रहनेवाली श्रवणेन्द्रियोंसे भी युक्त है और समस्त जगत्को व्याप्त कर स्थित है॥ ३॥ जो सर्वज्ञ है और सबसे प्राचीन, जगत्का शासन करनेवाला सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है, सबका धाता (सब प्राणियोंको कर्मानुसार पृथक्-पृथक् फल देनेवाला) है, जिसके रूपका चिन्तन अशक्य है, जो सूर्यके समान प्रकाशमय वर्णवाला है और जो अज्ञानसे अतीत है, उसको जो स्मरण करता है [वह उस परमपुरुषको प्राप्त होता है]॥ ४॥ जिसका ऊर्ध्व (ब्रह्म[१]) ही मूल है और नीचे शाखाएँ (अहंकार[२] तन्मात्रा आदि रूपवाली) हैं, ऐसे इस संसाररूप अश्वत्थवृक्षको अव्यय[३] (अविनाशी) कहते हैं, ऋक्, यजु और सामवेद जिसके पत्र[४] हैं; जो संसारवृक्षको इस रूपसे जानता है, वह वेदोंके अर्थोंका जाननेवाला है॥ ५॥

---

१. कालसे भी सूक्ष्म, जगत्का कारण नित्य और महान् होनेसे ब्रह्मको ही ऊर्ध्व कहा गया है।
२. महत् अहंकार, तन्मात्रा आदि इसके शाखाके समान नीचे होनेसे शाखा हैं।
३. संसारवृक्ष अनादिकालसे चला आता है इससे अव्यय है।
४. वेदोंसे इस वृक्षकी रक्षा है अत: इन (वेदों) को पत्ररूपसे कहा गया।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥ ६॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ ७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सप्तश्लोकी गीता सम्पूर्णा।

८१—चतुःश्लोकी भागवतम्

श्रीभगवानुवाच

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया॥ १॥
यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥ २॥

मैं सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मा होकर उनके हृदयोंमें प्रविष्ट हूँ, उनके स्मृति, ज्ञान और इन दोनोंका लोप भी मुझसे ही हुआ करते हैं, सम्पूर्ण वेदोंसे मैं ही जाननेयोग्य हूँ और वेदान्तका कर्ता तथा वेदार्थको जाननेवाला भी मैं ही हूँ॥ ६॥ तू मेरेमें ही मन लगानेवाला, मेरा ही भक्त, मेरी ही पूजा करनेवाला हो और मुझको ही नमस्कार कर। इस प्रकार चित्तको मुझमें युक्त कर मत्परायण हुआ मुझे ही प्राप्त करेगा॥ ७॥

श्रीभगवान् बोले—[हे चतुरानन!] मेरा जो ज्ञान परम गोप्य है, विज्ञान (अनुभव) से युक्त है और भक्तिके सहित है उसको और उसके साधनको मैं कहता हूँ सुनो॥ १॥ मेरे जितने स्वरूप हैं, जिस प्रकार मेरी सत्ता है और जो मेरे रूप, गुण, कर्म हैं, मेरी कृपासे तुमको उसी प्रकार तत्त्वका विज्ञान हो॥ २॥

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥ ३॥
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥ ४॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥ ५॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा॥ ६॥
एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना।
भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्॥ ७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्वितीयस्कन्धे भगवद्ब्रह्मसंवादे चतुःश्लोकी भागवतं समाप्तम्।

सृष्टिके पूर्व केवल मैं ही था, मेरे अतिरिक्त जो स्थूल, सूक्ष्म या प्रकृति हैं—इनमेंसे कुछ भी न था, सृष्टिके पश्चात् भी मैं ही था, जो यह जगत् (दृश्यमान) है, यह भी मैं ही हूँ और प्रलयकालमें जो शेष रहता है वह मैं ही हूँ॥ ३॥ जिसके कारण आत्मामें वास्तविक अर्थके न रहते हुए भी उसकी प्रतीति हो और अर्थके रहते हुए भी उसकी प्रतीति न हो, उसीको मेरी माया जानो; जैसे आभास (एक चन्द्रमामें दो चन्द्रमाका भ्रमात्मक ज्ञान) और जैसे राहु (राहु जैसे ग्रहमण्डलोंमें स्थित होकर भी नहीं दीख पड़ता)॥ ४॥ जैसे पाँच महाभूत उच्चावच भौतिक पदार्थोंमें कार्य और कारणभावसे प्रविष्ट और अप्रविष्ट रहते हैं, उसी प्रकार मैं इन भौतिक पदार्थोंमें प्रविष्ट और अप्रविष्ट भी रहता हूँ। [इस प्रकार मेरी सत्ता है]॥ ५॥ आत्माके तत्त्व जिज्ञासुके लिये इतना ही जिज्ञास्य है, जो अन्वयव्यतिरेकसे सर्वत्र और सर्वदा रहे वही आत्मा है॥ ६॥ चित्तकी परम एकाग्रतासे इस मतका अनुष्ठान करें, कल्पकी विविध सृष्टियोंमें आपको कभी भी कर्तापनका अभिमान न होगा॥ ७॥

८२—श्रीमृत्युञ्जयस्तोत्रम्

रत्नसानुशरासनं रजताद्रिशृङ्गनिकेतनं
शिञ्जिनीकृतपन्नगेश्वरमच्युतानलसायकम्।
क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदशालयैरभिवन्दितं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ १॥

पञ्चपादपपुष्पगन्धिपदाम्बुजद्वयशोभितं
भाललोचनजातपावकदग्धमन्मथविग्रहम्।
भस्मदिग्धकलेवरं भवनाशिनं भवमव्ययं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ २॥

कैलासके शिखरपर जिनका निवासगृह है, जिन्होंने मेरुगिरिका धनुष, नागराज वासुकिकी प्रत्यंचा और भगवान् विष्णुको अग्निमय बाण बनाकर तत्काल ही दैत्योंके तीनों पुरोंको दग्ध कर डाला था, सम्पूर्ण देवता जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?॥ १॥ मन्दार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन—इन पाँच दिव्य वृक्षोंके पुष्पोंसे सुगन्धित युगल चरणकमल जिनकी शोभा बढ़ाते हैं, जिन्होंने अपने ललाटवर्ती नेत्रसे प्रकट हुई आगकी ज्वालामें कामदेवके शरीरको भस्म कर डाला था, जिनका श्रीविग्रह सदा भस्मसे विभूषित रहता है, जो भव—सबकी उत्पत्तिके कारण होते हुए भी भव-संसारके नाशक हैं तथा जिनका कभी विनाश नहीं होता, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?॥ २॥

मत्तवारणमुख्यचर्मकृतोत्तरीयमनोहरं
पङ्कजासनपद्मलोचनपूजिताङ्घ्रिसरोरुहम् ।
देवसिद्धतरङ्गिणीकरसिक्तशीतजटाधरं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ३ ॥

कुण्डलीकृतकुण्डलीश्वरकुण्डलं वृषवाहनं
नारदादिमुनीश्वरस्तुतवैभवं भुवनेश्वरम् ।
अन्धकान्तकमाश्रितामरपादपं शमनान्तकं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ४ ॥

यक्षराजसखं भगाक्षिहरं भुजङ्गविभूषणं
शैलराजसुतापरिष्कृतचारुवामकलेवरम् ।
क्ष्वेडनीलगलं परश्वधधारिणं मृगधारिणं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ५ ॥

जो मतवाले गजराजके मुख्य चर्मकी चादर ओढ़े परम मनोहर जान पड़ते हैं, ब्रह्मा और विष्णु भी जिनके चरण-कमलोंकी पूजा करते हैं तथा जो देवताओं और सिद्धोंकी नदी गंगाकी तरंगोंसे भीगी हुई शीतल जटा धारण करते हैं उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?॥ ३ ॥ गेडुल मारे हुए सर्पराज जिनके कानोंमें कुण्डलका काम देते हैं, जो वृषभपर सवारी करते हैं, नारद आदि मुनीश्वर जिनके वैभवकी स्तुति करते हैं, जो समस्त भुवनोंके स्वामी, अन्धकासुरका नाश करनेवाले, आश्रितजनोंके लिये कल्पवृक्षके समान और यमराजको भी शान्त करनेवाले हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?॥ ४ ॥ जो यक्षराज कुबेरके सखा, भग देवताकी आँख फोड़नेवाले और सर्पोंके

भेषजं भवरोगिणामखिलापदामपहारिणं
दक्षयज्ञविनाशिनं त्रिगुणात्मकं त्रिविलोचनम्।
भुक्तिमुक्तिफलप्रदं निखिलाघसंघनिबर्हणं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ६ ॥
भक्तवत्सलमर्चतां निधिमक्षयं हरिदम्बरं
सर्वभूतपतिं परात्परमप्रमेयमनूपमम्।
भूमिवारिनभोहुताशनसोमपालितस्वाकृतिं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ७ ॥
विश्वसृष्टिविधायिनं पुनरेव पालनतत्परं
संहरन्तमथ प्रपञ्चमशेषलोकनिवासिनम्।

आभूषण धारण करनेवाले हैं, जिनके श्रीविग्रहके सुन्दर वामभागको गिरिराजकिशोरी उमाने सुशोभित कर रखा है, कालकूट विष पीनेके कारण जिनका कण्ठभाग नीले रंगका दिखायी देता है, जो एक हाथमें फरसा और दूसरेमें मृग लिये रहते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?॥ ५ ॥ जो जन्म-मरणके रोगसे ग्रस्त पुरुषोंके लिये औषधरूप हैं, समस्त आपत्तियोंका निवारण और दक्ष-यज्ञका विनाश करनेवाले हैं, सत्त्व आदि तीनों गुण जिनके स्वरूप हैं, जो तीन नेत्र धारण करते, भोग और मोक्षरूपी फल देते तथा सम्पूर्ण पापराशिका संहार करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?॥ ६ ॥ जो भक्तोंपर दया करनेवाले हैं, अपनी पूजा करनेवाले मनुष्योंके लिये अक्षय निधि होते हुए भी जो स्वयं दिगम्बर रहते हैं, जो सब भूतोंके स्वामी, परात्पर, अप्रमेय और उपमारहित हैं, पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और चन्द्रमाके द्वारा जिनका श्रीविग्रह सुरक्षित है, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?॥ ७ ॥ जो ब्रह्मारूपसे सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करते, फिर

क्रीडयन्तमहर्निशं गणनाथयूथसमावृतं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ ८ ॥
रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं नीलकण्ठमुमापतिम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ ९ ॥
कालकण्ठं कलामूर्तिं कालाग्निं कालनाशनम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ १० ॥
नीलकण्ठं विरूपाक्षं निर्मलं निरुपद्रवम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ ११ ॥
वामदेवं महादेवं लोकनाथं जगद्गुरुम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ १२ ॥

विष्णुरूपसे सबके पालनमें संलग्न रहते और अन्तमें सारे प्रपंचका संहार करते हैं, सम्पूर्ण लोकोंमें जिनका निवास है तथा जो गणेशजीके पार्षदोंसे घिरकर दिन-रात भाँति-भाँतिके खेल किया करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?॥ ८ ॥ 'रु' अर्थात् दुःखको दूर करनेके कारण जिन्हें रुद्र कहते हैं, जो जीवरूपी पशुओंका पालन करनेसे पशुपति, स्थिर होनेसे स्थाणु, गलेमें नीला चिह्न धारण करनेसे नीलकण्ठ और भगवती उमाके स्वामी होनेसे उमापति नाम धारण करते हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?॥ ९ ॥ जिनके गलेमें काला दाग है, जो कलामूर्ति, कालाग्निस्वरूप और कालके नाशक हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?॥ १० ॥ जिनका कण्ठ नील और नेत्र विकराल होते हुए भी जो अत्यन्त निर्मल और उपद्रवरहित हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?॥ ११ ॥ जो वामदेव, महादेव, विश्वनाथ और जगद्गुरु नाम धारण करते हैं, उन

देवदेवं जगन्नाथं देवेशमृषभध्वजम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ १३॥
अनन्तमव्ययं शान्तमक्षमालाधरं हरम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ १४॥
आनन्दं परमं नित्यं कैवल्यपदकारणम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ १५॥
स्वर्गापवर्गदातारं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥ १६॥

इति श्रीपद्मपुराणान्तर्गत उत्तरखण्डे श्रीमृत्युञ्जयस्तोत्रं सम्पूर्णम्

(समाप्तेयं स्तोत्ररत्नावली)

भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी?॥ १२॥ जो देवताओंके भी आराध्यदेव, जगत्के स्वामी और देवताओंपर भी शासन करनेवाले हैं, जिनकी ध्वजापर वृषभका चिह्न बना हुआ है, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी?॥ १३॥ जो अनन्त, अविकारी, शान्त, रुद्राक्षमालाधारी और सबके दु:खोंका हरण करनेवाले हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?॥ १४॥ जो परमानन्दस्वरूप, नित्य एवं कैवल्यपद—मोक्षकी प्राप्तिके कारण हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?॥ १५॥ जो स्वर्ग और मोक्षके दाता तथा सृष्टि, पालन और संहारके कर्ता हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?॥ १६॥